हज़रत मुहम्मद

सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम

का पवित्र जीवन

लेखक

हज़रत मिर्ज़ा बशीरुद्दीन महमूद अहमद[रज़ि.]

जमाअत अहमदिया के द्वितीय ख़लीफ़ा

नाम किताब	हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का पवित्र जीवन
Name of Book	Hadhrat Muhammad S.A.W. Ka Pavitra Jeevan (LIFE OF MUHAMMAD)
लेखक	हज़रत मिर्ज़ा बशीरुद्दीन महमूद अहमद[रज़ि.] जमाअत अहमदिया के द्वितीय ख़लीफ़ा
Writer	Hazrat Mirza Bashiruddin Mahmood Ahmad Khalifatul-Masih-II Qadiani
अनुवादक	अन्सार अहमद, बी.ए.बी.एड, मौलवी फ़ाज़िल
Translator	Ansar Ahmad, B.A.B.Ed, Moulvi Fazil
प्रकाशन वर्ष	2015
Year	
संख्या	
Number of Copies	5000
मुद्रक	फ़ज़्ले उमर प्रिंटिंग प्रेस, क़ादियान
Printed at	Fazle-Umar Printing Press, Qadian Distt, Gurdaspur, Punjab.
प्रकाशक	नज़ारत नश्र-व-इशाअत, क़ादियान
Published by	Nazarat Nashr-o-Isha'at, Qadian Mohalla Ahmadiyya, Qadian Distt, Gurdaspur, Punjab, PIN:143516.
आई.एस.बी.एन.	
ISBN	81-7912-081-3

NOTE:- NO PART OF THIS BOOK MAY BE REPRODUCED IN ANY FROM WITHOUT PRIOR WRITTEN PERMISSION FROM THE PUBLISHER, EXCEPT FOR THE QUOTATION OF BRIEF PASSAGES IN CRITICISM.

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें

TOLL FREE - 180030102131

विषय सूची

001. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का जीवन चरित्र 1

002. मुहम्मद (स.अ.व.) के समय मूर्ति पूजा 4

003. मदिरापान और जुआ 6

004. व्यापार 6

005. अरब की अन्य परिस्थितियाँ तथा उनकी आदतें और स्वभाव 7

006. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का जन्म 10

007. हिल्फ़ुलफ़ुज़ूल समिति में आप की सदस्यता 11

008. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) से हज़रत ख़दीजा की विवाह 13

009. दासों की स्वतंत्रता और ज़ैद[रज़ि.] की चर्चा 14

010. ग़ार-ए-हिरा (अर्थात् हिरा की गुफ़ा) में उपासना करना 16

011. क़ुर्आन की प्रथम वह्यी (ईशवाणी).. 16

012. हज़रत अबूबकर का हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) पर ईमान लाना 19

013. मोमिनों की छोटी सी जमाअत 19

014. मक्का के सरदारों की ओर से विरोध.. 20

015. मोमिन-दासों पर मक्का के क़ाफ़िरों का अत्याचार और अन्याय.......... 22

016. आज़ाद मुसलमानों पर अत्याचार.. 26

017. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) पर अत्याचार 28

018. इस्लाम का सन्देश 30

019. अबूतालिब के पास मक्का के काफ़िरों की शिकायत और हज़रत मुहम्मद[स]. का दृढ़संकल्प.. 32

020. हबशा की ओर प्रवास.. 34

021. हज़रत उमर[रज़ि.] का इस्लाम स्वीकार करना..38
022. मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार 41
023. हज़रत ख़दीजा और अबू तालिब के मृत्योपरान्त प्रचार में बाधाएँ और
मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की तायफ़-यात्रा...................................43
024. मदीना वालों का इस्लाम स्वीकार करना..50
025. इसरा (रात की स्वप्निल यात्रा) 53
026. रूमियों की विजय की भविष्यवाणी...54
027. मक्का से मदीना की ओर हिजरत (पलायन)..60
028. मुहम्मद (स.अ.व.) को पकड़ने के लिए सुराक़ा द्वारा पीछा किया जाना तथा
उसके संबंध में आप[स.] की एक भविष्यवाणी...63
029. मुहम्मद (स.अ.व.) का मदीना में प्रवेश 67
030. हज़रत अबू अय्यूब[रज़ि.] अन्सारी के मकान पर ठहरना...................................70
031. हज़रत मुहम्मद[स.] के आचरण पर सेवक हज़रत अनस[रज़ि.] की साक्ष्य 71
032. मक्का से परिवार को बुलाना तथा मस्जिद-ए-नबवी[स.] की नींव रखना ..72
033. मदीना के द्वैतवादी क़बीलों का इस्लाम में प्रवेश 72
034. मक्का वालों की मुसलमानों को पुनः कष्ट देने की योजनाएं.........................74
035. अन्सार तथा मुहाजिरीन (प्रवासियों) में भ्रातृभाव का व्यवस्थापन........75
036. मुहाजिरों, अन्सार तथा यहूदियों के मध्य परस्पर समझौता.......................76
037. मक्का वालों की ओर से नए सिरे से उपद्रवों का प्रारम्भ 79
038. हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सुरक्षात्मक योजनाएं...........81
039. मदीना में इस्लामी शासन की नींव 82
040. क़ुरैश के व्यापारिक दल का आगमन तथा बदर का युद्ध..........................84
041. एक महान भविष्यवाणी का पूर्ण होना...91
042. बदर के क़ैदी 94

043. उहद का युद्ध 96

044. विजय : पराजय के आवरण में 98

045. उहद के युद्ध से वापसी तथा मदीना वासियों की त्याग-भावनाएं........ 106

046. मदिरापान के निषेध का आदेश और उसका प्रभाव........................ 110

047. उहद के युद्धोपरान्त काफ़िर कबीलों के जघन्य षड्यंत्र 112

048. क़ुर्आन के सत्तर हाफ़िज़ों (कंठस्थ कर्ताओं) के वध की नृशंस घटना.. 117

049. बनी मुस्तलिक़ का युद्ध 119

050. मदीना पर समस्त अरबों की चढ़ाई-ख़न्दक का युद्ध........................ 123

051. ख़न्दक के युद्ध के समय इस्लामी सेना की वास्तविक संख्या? 126

052. बनू क़ुरैज़ा के द्रोह 130

053. मुनाफिकों तथा मोमनों का स्वरूप 134

054. इस्लाम में शव का सम्मान.. 137

055. विरोधी सेनाओं के गठबंधन के मुसलमानों पर आक्रमण.................. 138

056. बनू क़ुरैज़ा की मुश्रिकों (द्वैतवादियों) से मिलकर आक्रमण की तैयारी तथा

उसमें असफलता.. 140

057. बनू क़ुरैज़ा को विश्वासघात का दण्ड 144

058. बनू क़ुरैज़ा के अपने नियुक्त किए गए मध्यस्थ सअद[रज़ि.] का निर्णय तौरात

के अनुकूल था.. 147

059. मुसलमानों की विजय का प्रारम्भ 151

060. युद्ध के बारे में यहूदी और ईसाई धर्म की शिक्षा 155

061. युद्ध के बारे में इस्लामी शिक्षा 157

062. ख़न्दक़ के युद्ध के पश्चात् काफ़िरों के मुसलमानों पर आक्रमण 172

063. मुहम्मद[स.] का पन्द्रह सौ सहाबा के साथ मक्का की ओर प्रस्थान........ 174

064. हुदैबिया की संधि की शर्तें.. 179

065. राजाओं के नाम पत्र 183
066. क़ैसर-ए-रूम हिरक़्ल के नाम पत्र 184
067. क़ैसर-ए-रूम का परिणाम निकालना कि मुहम्मद[स.] सच्चे नबी हैं।...... 187
068. हिरक़्ल के नाम हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के पत्र का लेख 189
069. फ़ारस के बादशाह के नाम पत्र.. 191
070. हबशा के बादशाह नज्जाशी के नाम पत्र 194
071. मिस्र के बादशाह मक़ूक़स के नाम पत्र 197
072. बहरैन के अमीर के नाम पत्र 200
073. ख़ैबर के क़िले पर विजय 201
074. तीन अद्‌भुत घटनाएँ.. 203
075. काबे का तवाफ़ (परिक्रमा) 207
076. मुहम्मद (स.अ.व.) के बहुविवाह पर आरोप का उत्तर........................ 209
077. ख़ालिद बिन वलीद और उमर बिन अलआस का इस्लाम स्वीकार करना....211
078. मौतः का युद्ध.. 211
079. मक्का-विजय 218
080. हुनैन का युद्ध.. 238
081. मक्का की विजय और हुनैन-युद्ध के पश्चात्.. 245
082. तबूक का युद्ध.. 248
083. हज्जतुल वदाअ तथा हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का ख़ुत्बा............. 253
084. हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का निधन 258
085. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के निधन पर सहाबा[रज़ि] की दशा 264
086. हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का चरित्रांकन 267
087. हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) की बाह्य और आंतरिक स्वच्छता 269
088. खान-पान में सादगी और संतुलन 271

089. वस्त्राभूषण में संयम और सरलता 276

090. बिस्तर में सादगी 277

091. मकान और रहन-सहन में सादगी........ 278

092. ईश्वर-प्रेम तथा उसकी उपासना 278

093. ख़ुदा पर भरोसा........ 284

094. मुहम्मद (स.अ.व.) का मानव जाति से व्यवहार........ 291

095. आदर्श चरित्र 292

096. सहनशीलता 294

097. न्याय 297

098. भावनाओं का आदर........ 299

099. निर्धनों से सहानुभूति तथा उनकी भावनाओं का आदर 299

100. निर्धनों की सम्पत्ति की सुरक्षा........ 304

101. दासों से सद्व्यवहार 305

102. मानव समाज की सेवा करने वालों का सम्मान........ 307

103. स्त्रियों से सद्व्यवहार........ 308

104. मृत्यु प्राप्त लोगों के संबंध में आपका आदर्शाचरण 312

105. पड़ोसियों से सद्व्यवहार 313

106. माता-पिता एवं अन्य परिजनों से सद्व्यवहार........ 314

107. सत्संग........ 318

108. लोगों के ईमान की सुरक्षा के प्रति आचरण 319

109. दूसरों के दोषों को छुपाना 320

110. धैर्य........ 324

111. परस्पर सहयोग........ 325

112. दोषों को अनदेखा करना 326

113. सत्य.. 326

114. दूसरों के दोष ढूंढते रहने की कुप्रवृत्ति का निषेध तथा सद्भावनाओं का आदेश.. 328

115. व्यापार में धोखेबाज़ी के प्रति घृणा 329

116. निराशा 330

117. पशुओं पर दया.. 330

118. धार्मिक सहिष्णुता.. 332

119. वीरता.. 332

120. अल्प बुद्धि लोगों से प्रेम-व्यवहार... 333

121. वचन का पालन.. 333

पुस्तक में प्रयोग संकेत

स. = सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम

(स.अ.व.) = सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम

रज़ि. = रज़ियल्लाह तआला अन्हो

अ. = अलैहिस्सलाम

प्रस्तावना

पुस्तक "हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का पवित्र जीवन" हज़रत मिर्ज़ा बशीरुद्दीन महमूद अहमद विश्वव्यापी जमाअत अहमदिया के दूसरे ख़लीफ़ा[रज़ि.] की महान् रचना "दीबाचः तफ़्सीरुल क़ुर्आन" अर्थात् 'क़ुर्आन की व्याख्या की भूमिका' का वह भाग है जिसमें हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के जन्म से मृत्यु तक की घटनाओं का संक्षेप से ऐसी सुन्दर सुललित तथा चित्ताकर्षक शैली में वर्णन किया गया है जो स्वयं में एक उदाहरण है। इस पुस्तक में जहाँ एक ओर हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ातमुन्नबिय्यीन (स.अ.व.) के पवित्र जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा गतिविधियों को क्रमानुगत रूप से प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी ओर आप के पवित्र जीवन-चरित्र पर निराधार आरोपों का भी अकाट्य तर्कों एवं प्रमाणों द्वारा निराकरण किया गया है। वर्तमान युग में जहाँ परमेश्वर की अलौकिक विभूति, इस पूर्ण मनुष्य को उपहास का निशाना बनाने का असफल प्रयास किया जा रहा है वहीं हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के वर्तमान युग के सच्चे प्रेमी एवं विश्वव्यापी मुस्लिम जमाअत अहमदिया के पाँचवें ख़लीफ़ा हज़रत मिर्ज़ा मसरूर अहमद साहिब ने हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के पवित्र जीवन-चरित्र से जन-साधारण को अवगत करने के निमित्त पुस्तक को उच्च स्तर पर प्रकाशित करने का आदेश दिया है।

मूल पुस्तक उर्दू में है। प्रस्तुत संस्करण उसका हिन्दी रूपान्तर है। इसमें इस्लामिक धार्मिक पारिभाषिक शब्दावली का अधिक प्रयोग हुआ है। परिणामस्वरूप यत्र-तत्र भाषा-प्रवाह में बाधा का आभास खटकता है। इसी प्रकार भाषा की प्रांजलता तथा बाह्य साज-सज्जा के दोषों पर गहरी दृष्टि जमाए रखने के स्थान पर हंसवृत्ति रखने वाले विज्ञ पाठकों से आशा की जाती है कि वे इसमें निहित सत् संदेश तथा महान उद्देश्य पर विशेष रूप से ध्यानस्थ होने की कृपा करेंगे।

परमेश्वर से प्रार्थना है कि इस प्रयास को प्रत्येक दृष्टिकोण से कल्याणकारी तथा लोगों के मार्गदर्शन का कारण बनाए तथा हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) की सच्चाई, महानता एवं सर्वोत्कृष्ट स्थान से संसार को परिचित कराए और हम सब को आप के उत्कृष्टतम आदर्श पर आचरण करते हुए परमेश्वर की प्रसन्नता तथा उसके प्रेम को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्रदान करे।

हे परमेश्वर ! तू ऐसा ही कर।

विनीत

हाफ़िज़ मख़दूम शरीफ़

नाज़िर नश्र-व-इशाअत

क़ादियान

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का जीवन चरित्र

ख़ुदा तआला और इस्लाम की सच्चाई का यह एक बहुत बड़ा निशान और महान प्रमाण है कि मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के जीवन की परिस्थितियां जितनी स्पष्ट हैं किसी अन्य नबी के जीवन की परिस्थितयां उतनी स्पष्ट नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन आरोपों के निवारण के पश्चात एक मनुष्य जिस शुद्ध हृदयता के साथ मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के अस्तित्व से प्रेम कर सकता है अन्य किसी मनुष्य के अस्तित्व से इतना प्रेम कदापि नहीं कर सकता, क्योंकि जिनके जीवन गुप्त होते हैं उनके प्रेम में विघ्न पड़ जाने की सदैव आशंका रहती है। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का जीवन तो एक खुली पुस्तक थी। शत्रु के आरोपों का समाधान हो जाने के पश्चात् कोई ऐसा पहलू नहीं रहता कि जिस पर दृष्टिपात करने पर हमारे समक्ष आप (स.अ.व.) के जीवन का कोई नया दृष्टिकोण आ सकता हो, न कोई रहस्य शेष रहता है जिसके प्रकट होने के पश्चात् किसी अन्य प्रकार की वास्तविकता हम पर प्रकट होती हो। ईश्वरीय ग्रन्थों को उचित अर्थों में लोगों के मस्तिष्कों में दृढ़तापूर्वक प्रविष्ट कराने के लिए अनिवार्य होता है कि उसके साथ उच्च आदर्श भी हो और सर्वोच्च आदर्श वही हो सकता है जिस पर वह किताब अवतरित हुई हो। यह रहस्य सूक्ष्म और दार्शनिकतापूर्ण है और अधिकांश धर्मों ने तो इस के मर्म को समझा ही नहीं। अस्तु, हिन्दू धर्म वेदों को प्रस्तुत करता है परन्तु वेदों को लाने वाले ऋषियों और मुनियों के इतिहास के

बारे में बिल्कुल मौन है। हिन्दू धर्माचार्य इसकी आवश्यकता को आज तक भी नहीं समझ सके, इसी प्रकार ईसाई और यहूदी विद्वान तथा पादरी बड़ी धृष्टता के साथ कह देते हैं कि बनी इस्राईल के अमुक नबी में अमुक दोष था, अमुक नबी में अमुक दोष था। वे यह बात नहीं समझ सकते कि ख़ुदा तआला ने अपनी वाणी के लिए जिस व्यक्ति का चयन किया, जब वह वाणी उसका सुधार नहीं कर सकती तो अन्य का क्या सुधार करेगी। यदि वह व्यक्ति ऐसा ही सुधार-योग्य न था तो ख़ुदा तआला ने उसे क्यों चुना? क्या कारण है कि किसी अन्य को नहीं चुना? ख़ुदा तआला के लिए कौन सी विवशता थी? कि वह 'ज़बूर' (एक धार्मिक ग्रन्थ) के लिए दाऊद को चुनता, वह बनी इस्राईल में से किसी अन्य व्यक्ति का चयन कर सकता था। अत: ये दोनों बातें अनुचित हैं। यह विचार कर लेना कि ख़ुदा तआला ने जिस पर कलाम (वाणी) अवतरित किया, वह वाणी उसका सुधार न कर सकी, यह विचार कर लेना कि ख़ुदा तआला ने एक ऐसे व्यक्ति को चुन लिया जो सुधार योग्य न था, ये दोनों बातें बुद्धि के बिल्कुल विपरीत हैं, परन्तु बहरहाल विभिन्न धर्मों में अपने मुख्य स्रोत से दूरी के कारण इस प्रकार की ग़लत धारणाएं उत्पन्न हो गई हैं या यों कहो कि मनुष्य के मानसिक विकास के पूर्ण न होने के कारण प्राचीन युग में उन वस्तुओं के महत्त्व को समझा ही नहीं गया, परन्तु इस्लाम में प्रारम्भ ही से इस बात के महत्त्व को समझा गया था। रसूले करीम (स.अ.व.) की पत्नी हज़रत आइशा[रज़ि.] का आप से तेरह-चौदह वर्ष की आयु में विवाह हुआ और लगभग सात वर्ष की अवधि तक आप के साथ रहीं। जब नबी करीम (स.अ.व.) का निधन हुआ तो उन की आयु 21 वर्ष थी, वह अनपढ़ थीं, परन्तु इसके बावजूद वह उन के जीवन-आदर्शों से भली-भांति परिचित थीं। एक बार किसी ने आप[रज़ि.] से प्रश्न किया कि रसूले करीम (स.अ.व.) के शिष्टाचारों के संबंध में कुछ तो बताइए तो आप[रज़ि.] ने फ़रमाया ①كَانَ خُلُقُهُ كُلُّهُ الْقُرْاٰن अर्थात् आप के शिष्टाचारों का क्या

①-बुख़ारी तथा अबूदाऊद बाब फ़ी सलातिल्लैल।

पूछते हो— आप जो कुछ कहा करते थे क़ुर्आन करीम में उन्हीं बातों का आदेश है तथा क़ुर्आन की सैद्धान्तिक शिक्षा आप के क्रियात्मक आचरण से पृथक नहीं है। प्रत्येक आचरण जिसका क़ुर्आन में वर्णन किया है उस पर आप का क्रियात्मक आचरण था और प्रत्येक क्रियात्मक आचरण जो आप करते थे उसी की क़ुर्आन करीम में शिक्षा है। यह कैसी उत्तम बात है। ज्ञात होता है कि रसूले करीम (स.अ.व.) के शिष्टाचार इतने विशाल और इतने उच्चकोटि के थे कि एक युवती जो शिक्षित भी नहीं थी उसके ध्यान को भी इस आचरण तक आकृष्ट करने में सफल हो गए। हिन्दू, ईसाई, यहूदी और मसीही दार्शनिक जिस बात के मर्म को न समझ सके, हज़रत आइशा[रज़ि.] उस बात के मर्म को समझ गईं तथा छोटे से वाक्य में आप ने यह सूक्ष्म तत्व स्पष्ट कर दिया कि यह कैसे हो सकता है कि एक सत्यनिष्ठ और सदात्मीय मनुष्य संसार को एक शिक्षा दे और फिर उस पर स्वयं आचरण न करे अथवा स्वयं उस शुभ कर्म पर आचरण करे और उसे संसार से गुप्त रखे। अतः तुम्हें मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के शिष्टाचार मालूम करने के लिए किसी इतिहास की आवश्यकता नहीं, वह एक सत्यनिष्ठ और सदाचारी मनुष्य थे, जो कहते थे वह करते थे और जो करते थे वह कहते थे। हमने उन्हें देखा और क़ुर्आन करीम को समझ लिया और तुम लोग जो बाद में आए हो क़ुर्आन पढ़ो और मुहम्मद रसूलुल्लाह को समझो।

اَللّٰهُمَّ صَلِّ عَلٰى مُحَمَّدٍ كَمَا صَلَّيْتَ عَلٰى اِبْرَاهِيْمَ وَ عَلٰى اٰلِ اِبْرَاهِيْمَ
وَ بَارِكْ وَسَلِّمْ اِنَّكَ حَمِيْدٌ مَّجِيْدٌ۔

मुहम्मद (स.अ.व.) **के आविर्भाव के समय अरब की परिस्थितियां "मूर्ति पूजा"**

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने जिस युग में जन्म लिया उस युग की अवस्थाओं को भी आप (स.अ.व.) के जीवन की गतिविधियों का एक भाग ही समझना चाहिए क्योंकि इसी पार्श्व में मनुष्य आप के जीवन की अवस्थाओं की वास्तविकता से भली-भांति परिचित हो सकता है। आप (स.अ.व.) ने मक्का में जन्म लिया तथा आप का जन्म अगस्त सन् 570 ई.[①] में बनता है। आप (स.अ.व.) के जन्म पर आप (स.अ.व.) का नाम मुहम्मद रखा गया, जिसका अर्थ 'प्रशंसा किया गया' है। जब आप (स.अ.व.) ने जन्म लिया उस समय सम्पूर्ण अरब कुछ अपवादों के अतिरिक्त द्वैतवादी था। ये लोग स्वयं को इब्राहीम के वंशज बताते थे और यह भी मान्यता रखते थे कि इब्राहीम द्वैतवादी नहीं थे, परन्तु इसके बावजूद द्वैतवाद में लिप्त थे और तर्क यह देते थे कि कुछ मनुष्य उन्नति करते-करते ख़ुदा तआला के इतने निकट हो गए हैं कि ख़ुदा तआला के दरबार में उनकी सिफ़ारिश अवश्य स्वीकार की जाती है। चूंकि ख़ुदा तआला का अस्तित्व नितान्त वैभवशाली है, उस तक पहुँचना प्रत्येक मनुष्य का कार्य नहीं, पूर्ण मानव ही उस तक पहुँच सकते हैं। इसलिए सामान्य मनुष्यों के लिए आवश्यक है कि वे कोई न कोई माध्यम बनाएं और उस माध्यम द्वारा ख़ुदा तआला की प्रसन्नता और सहायता प्राप्त करें। इस अद्भुत और अनोखी आस्थानुसार वे हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को एकेश्वरवादी मानते हुए अपने लिए द्वैतवाद का औचित्य भी पैदा कर लेते थे। इब्राहीम परम सदाचारी था, वह ख़ुदा के पास बिना माध्यम

①-लाइफ़ आफ़ मुहम्मद (स.अ.व.) लेखक विलियम म्योर, प्रकाशित 1857 ई.

के पहुँच सकता था परन्तु मक्का निवासी इस स्तर के नहीं थे, इसलिए उन्हें कुछ महान् हस्तियों को माध्यम बनाने की आवश्यकता थी। जिस उद्देश्यप्राप्ति के लिए वे उन हस्तियों की मूर्तियों की उपासना करते थे तथा इस प्रकार अपने विचार में उन्हें प्रसन्न करके ख़ुदा तआला के दरबार में अपना माध्यम बना लेते थे। इस आस्था में जो दोष और अनर्गल अंश हैं उनके समाधान की ओर उन का ध्यान कभी गया ही नहीं था, क्योंकि कोई एकेश्वरवादी शिक्षक नहीं मिला था। जब किसी जाति में द्वैतवाद प्रारम्भ हो जाता है तो फिर बढ़ता ही चला जाता है। एक से दो बनते हैं और दो से तीन। अतः मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के जन्म के समय का'बा में (जो अब मुसलमानों की पवित्र मस्जिद है और हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम का बनाया हुआ उपासना गृह है) इतिहासकारों के कथनानुसार उसमें तीन सौ साठ[①] मूर्तियों थीं। प्रतिदिन के लिए एक पृथक मूर्ति थी। इन मुर्तियों के अतिरिक्त आस-पास के क्षेत्रों की बड़ी-बड़ी बस्तियों में तथा बड़ी-बड़ी जातियों के केन्द्रों में मूर्तियाँ अलग- अलग से थीं। मानो अरब का प्रत्येक स्थान द्वैतवाद में लिप्त हो रहा था, अरब लोगों में भाषा की सभ्यता और सुधार का ध्यान बहुत अधिक था, उन्होंने अपनी भाषा को अत्यधिक समृद्ध बनाने का प्रयास किया परन्तु उनके निकट ज्ञान का इससे अतिरिक्त कोई अर्थ न था। इतिहास, भूगोल, गणित इत्यादि विद्याओं में से वे कोई एक विद्या भी न जानते थे। हां मरुस्थल निवासी होने तथा उसमें यात्रा करने के कारण खगोल विज्ञान के माहिर थे। सम्पूर्ण अरब में एक मदरसा भी न था। कहा जाता है कि मक्का में कुछ गिनती के लोग पढ़ना-लिखना जानते थे। नैतिकता की दृष्टि से अरब परस्पर विरोधाभासी विचारधारा रखने वाली एक विचित्र जाति थी। उनमें कुछ अत्यन्त भयानक और वीभत्स पाप पाए जाते थे और कुछ सद्गुण भी पाए जाते थे कि जो उनकी जाति की मान-मर्यादा को श्रेष्ठता और महानता प्रदान करते थे।

①-'बुख़ारी' किताबुल मग़ाज़ी, बाब फ़त्ह मक्का तथा 'ज़रक़ानी' जिल्द-2, पृष्ठ-334

मदिरापान और जुआ

अरब लोग मदिरा के बहुत रसिया थे तथा मदिरा के नशे में बेहोश हो जाना, अनर्गल बातें निकालना उनके निकट कोई दोष नहीं अपितु एक गुण था। एक सभ्य मनुष्य की सभ्यता के लक्षणों में से यह भी था कि वह अपने मित्रों और पड़ोसियों को ख़ूब मदिरापान कराए, प्रमुख लोगों के लिए दिन के पांच समयों में मदिरापान की सभाओं का आयोजन आवश्यक था जो उनका जातिगत खेल था परन्तु उसे उन्होंने एक कला बना लिया था। वे जुआ इसलिए खेलते थे कि अपने धन में बढ़ोतरी करें अपितु उन्होंने जुए को दानशीलता और प्रतिष्ठा का माध्यम बना रखा था। उदाहरणतया जुआरियों में परस्पर यह समझौता (Agreement) होता था कि जो जीते, वह जीते हुए माल से अपने मित्रों और अपनी जाति को भोज दे, युद्धों के अवसर पर जुए को ही धन एकत्र करने का साधन बनाया जाता था, युद्ध के दिनों में वर्तमान समय में भी लाटरी का प्रचलन बढ़ रहा है, परन्तु यूरोप और अमरीका के लाटरी पेशा लोगों को ज्ञात होना चाहिए कि इस अविष्कार का श्रेय अरबों को जाता है। जब कभी युद्ध होता था तो अरब के क़बीले परस्पर जुआ खेलते थे और जो जीतता था वह युद्ध के अधिकतर ख़र्चे वहन करता था। अत: अरबों ने संसार के आरामों तथा सांसारिक सुविधाओं से वंचित होने का बदला मदिरापान और जुए से लिया था।

व्यापार

अरब लोग व्यापारी थे तथा उनके व्यापारिक दल दूर-दूर तक जाते थे। वे एबीसीनिया से भी व्यापार करते थे तथा शाम और फ़लस्तीन से भी, हिन्दुस्तान से भी उनके व्यापारिक संबंध थे। उनके प्रमुख हिन्दुस्तान की

निर्मित तलवारों को बहुत महत्त्व देते थे, कपड़ा अधिकतर यमन और शाम से आता था। ये व्यापार अरब के नगरों के हाथ में थे। शेष अरब लोग यमन और कुछ उत्तरी क्षेत्रों के अतिरिक्त ख़ानाबदोशी का जीवन व्यतीत करते थे, न उनके कोई शहर थे, न उनके कोई गांव थे, केवल क़बीलों ने देश के क्षेत्र बांट लिए थे, उन क्षेत्रों में वे घूमते-फिरते थे। जहां का जल समाप्त हो जाता था वहां से निकल पड़ते थे और जहां जल प्राप्त हो जाता था वहाँ डेरे लगा देते थे। भेड़, बकरियां और ऊँट उनकी सम्पत्ति होती थी, उनके बालों और ऊन से कपड़े बनाते थे, उन की खालों से तम्बू तैयार करते तथा जो भाग शेष रह जाता उसे मंडियों में ले जा कर बेच देते थे।

अरब की अन्य परिस्थितियाँ तथा उनकी आदतें और स्वभाव

वे सोने-चांदी से अपरिचित तो न थे, परन्तु सोना और चांदी उनके लिए एक नितान्त दुर्लभ वस्तु थी, यहां तक कि उनके सामान्य लोगों तथा निर्धनों में आभूषण कौडियों और सुगंधित मसालों से बनाए जाते थे। लौंगों, ख़रबूज़ों और ककड़ियों आदि के बीजों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं से वे हार तैयार करते तथा उनकी स्त्रियां ये हार पहन कर आभूषणों से निस्पृह हो जाती थीं, दुष्कर्म और दुराचार की अधिकता थी, चोरी कम थी परन्तु लूट मार की बहुतात थी। परस्पर लूट लेना वे एक जातिगत अधिकार समझते थे, परन्तु इसके साथ ही जितनी वचन-बद्धता अरबों में मिलती है उतनी अन्य किसी जाति में नहीं मिलती। यदि कोई व्यक्ति किसी शक्तिशाली व्यक्ति अथवा शक्तिशाली जाति के पास आकर कह देता कि मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ तो उस व्यक्ति अथवा उस जाति के लिए अनिवार्य होता था कि वह उसे शरण दे। यदि वह जाति उसे शरण न दे तो वह सम्पूर्ण अरब में अपमानित हो जाती थी। कवि बहुत

प्रतिष्ठा रखते थे, वे जैसे जाति के नेता समझे जाते थे। नेताओं के लिए मंझी हुई सरल और सुन्दर भाषा शैली का ज्ञान और यथा-संभव तो कवि होना नितान्त आवश्यक था। अतिथि-सत्कार प्रथा तो चरम सीमा तक पहुँची हुई थी। जंगल में भूला-भटका यात्री यदि किसी क़बीले में पहुँच जाता और कहता कि मैं तुम्हारा अतिथि आया हूँ तो वे निःसंकोच बकरे, मेढ़े और ऊँट ज़िब्ह कर के उनका सत्कार करते थे। उनके लिए मेहमान के व्यक्तित्व में कोई रुचि न थी, मेहमान का आ जाना ही उनके निकट जाति के मान-सम्मान में वृद्धि का कारण था तथा जाति का कर्त्तव्य हो जाता था कि उसका सम्मान करके अपने सम्मान को बढ़ाए, उस जाति में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त न थे, कुछ क़बीलों में यह सम्मान की बात समझी जाती थी कि पिता अपनी पुत्री की हत्या कर दे। इतिहासकार यह बात ग़लत लिखते हैं कि सम्पूर्ण अरब में लड़कियों की हत्या करने की प्रथा थी यह प्रथा तो स्वाभाविक तौर पर सम्पूर्ण देश में नहीं हो सकती क्योंकि सम्पूर्ण देश में इस प्रथा का प्रचलन हो जाए तो फिर उस देश की नस्ल किस प्रकार शेष रह सकती है। मूल बात यह है कि अरब और हिन्दुस्तान तथा अन्य देशों में जहां-जहां भी यह प्रथा पाई जाती है उसका प्रारूप यह हुआ करता है कि कुछ ख़ानदान स्वयं को बड़ा समझकर या कुछ ख़ानदान स्वयं को ऐसी विवशताओं में ग्रसित देखकर कि उनकी लड़कियों के लिए उनकी प्रतिष्ठानुसार रिश्ते नहीं मिलेंगे लड़िकयों की हत्या कर दिया करते हैं। इस प्रथा की बुराई उसके अत्याचार में है न कि इस बात में कि समस्त जाति में लड़कियां मिटा दी जाती हैं। अरबों की कुछ जातियों में तो लड़कियां मारने का ढंग यों प्रचलित था कि वे लोग लड़की को जीवित दफ़्न कर देते थे और कुछ में इस प्रकार कि वे उसका गला घोंट देते थे तथा अन्य ढंगों से हत्या कर देते थे। वास्तविक मां के अतिरिक्त अन्य माताओं को अरब लोग माता नहीं समझते थे तथा

उन से विवाह करने में कुछ बुराई नहीं समझते थे। अतः पिता की मृत्यु के पश्चात् कई पुत्र अपनी सौतेली माताओं से विवाह कर लेते थे। अनेक विवाह करने की प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित थी, विवाहों की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती थी, एक से अधिक बहनों से भी एक व्यक्ति विवाह कर लेता था, लड़ाई में बहुत अत्याचार से काम लेते थे जहां अत्यधिक वैर होता था, घायलों के पेट फाड़ कर उनके कलेजे चबा लेते थे, नाक-कान काट देते थे, आँखें निकाल देते थे, दास प्रथा का सामान्य प्रचलन था, आस-पास के कमज़ोर कबीलों के लोगों को बलात् पकड़ कर ले आते थे और उन्हें दास बना लेते थे, दास को कोई अधिकार प्राप्त न थे। प्रत्येक स्वामी अपने दास से जो चाहता व्यवहार करता उसके विरुद्ध कोई पकड़ नहीं थी। यदि वह हत्या भी कर देता तो उस पर कोई आरोप न आता था। यदि किसी अन्य व्यक्ति के दास को मार देता तब भी वह मृत्यु-दण्ड से सुरक्षित समझा जाता था और स्वामी को क्षतिपूर्ति में कुछ धनराशि देकर मुक्त हो जाता था, दासियों को अपनी कामवासना संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाना स्वामी का क़ानूनी अधिकार समझा जाता था। दासियों की सन्तानें भी दास ही होती थीं और सन्तान वाली दासियां भी दासियां ही रहती थीं। अतः जहां तक ज्ञान और उन्नति का प्रश्न है अरब लोग बहुत पिछड़े हुए थे। जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय दया और सद्व्यवहार का प्रश्न है अरब लोग बहुत पीछे थे, जहां तक स्त्री जाति का प्रश्न है अरब लोग अन्य जातियों से बहुत पीछे थे, परन्तु उनमें कुछ व्यक्तिगत और वीरतापूर्ण आचरण अवश्य पाए जाते थे और उस सीमा तक पाए जाते थे कि कदाचित उस युग की अन्य जातियों में उसका उदाहरण नहीं पाया जाता।

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का जन्म

आप (स.अ.व.) का जन्म ऐसे ही वातावरण में हुआ। आप के जन्म से पूर्व ही आप के पिता जिनका नाम अब्दुल्लाह था का निधन हो चुका था तथा आप और आप की माता हज़रत आमिना को आप के दादा अब्दुलमुत्तलिब ने अपने संरक्षण में ले लिया था। अरब की प्रथानुसार आप (स.अ.व.) दूध पिलाने के लिए तायफ़ के पास रहने वाली एक स्त्री के सुपुर्द किए गए। अरब लोग अपने बच्चों को देहाती स्त्रियों के सुपुर्द कर दिया करते थे ताकि उनकी भाषा शुद्ध हो जाए और उनका स्वास्थ्य ठीक हो।

आप की आयु के छठे वर्ष आप की माता का भी मदीना से आते हुए जहां वह अपने ननिहाल वालों से मिलने गई थीं मदीना और मक्का के मध्य देहान्त हो गया तथा वहीं दफ़्न कर दी गईं और एक सेविका आप (स.अ.व.) को अपने साथ मक्का लाई और दादा के सुपुर्द कर दिया। आप आठवें वर्ष में थे कि आप के दादा जो आप के अभिभावक थे वह भी स्वर्गवासी हो गए तथा आप के चाचा अबू तालिब अपने पिता की वसीयत के अनुसार आपके अभिभावक हुए। आप को अरब से बाहर दो-तीन बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ, जिनमें से एक यात्रा आप ने बारह वर्ष की आयु में अपने चाचा अबूतालिब के साथ की जो व्यापार के उद्देश्य से शाम की ओर गए थे। आप की यह यात्रा कदाचित् शाम के दक्षिण-पूरब के व्यापारिक शहरों तक ही सीमित थी, क्योंकि इस यात्रा में बैतुल मुक़द्दस आदि स्थानों में से किसी की चर्चा नहीं आती। तत्पश्चात् आप ने युवावस्था तक मक्का में ही निवास किया।

हिल्फ़ुलफ़ुज़ूल समिति में आप की सदस्यता

आप वाल्यकाल से ही चिन्तन-मनन की प्रवृत्ति रखते थे तथा आप लोगों के लड़ाई झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं करते थे अपितु उन का निवारण कराने में भाग लेते थे। अतः मक्का और उस के आस-पास के क़बीलों की लड़ाइयों से तंग आकर जब मक्का के कुछ युवकों ने एक समिति का गठन किया जिसका उद्देश्य यह था कि वह पीड़ितों की सहायता किया करेगी तो रसूले करीम (स.अ.व.) बड़ी प्रसन्नता के साथ उस समिति में सम्मलित हो गए। इस समिति के सदस्यों ने इन शब्दों में शपथ ग्रहण की कि—

> "वे पीडितों की सहायता करेंगे तथा उनके अधिकार उन्हें लेकर देंगे, जब तक समुद्र में जल की एक बूंद शेष है। यदि वे ऐसा नहीं कर सकेंगे तो वे स्वयं अपने पास से पीड़ित का अधिकार पूरा कर देंगे। "

कदाचित इस शपथ को कार्यरूप में परिणित करने का अवसर आप के अतिरिक्त अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुआ। जब आप (स.अ.व.) ने नुबुव्वत का दावा किया तथा आप (स.अ.व.) के विरोध में मक्का के सरदार 'अबूजहल' ने सर्वाधिक भाग लिया और लोगों से यह कहना आरम्भ किया कि मुहम्मद (स.अ.व.) से कोई बात न करे, उनकी कोई बात न माने, हर संभव प्रयास से उनको अपमानित करे। उस समय एक व्यक्ति जिसे अबूजहल से अपना कुछ क़र्ज़ा वसूल करना था मक्का में आया और उसने अबूजहल से अपना क़र्ज़ा मांगा। अबूजहल ने उसका क़र्ज़ा अदा करने से इन्कार कर दिया। उसने मक्का के कुछ लोगों से इस बात की शिकायत की। कुछ युवकों ने शरारत की दृष्टि से उसे मुहम्मद

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का पता बताया कि उनके पास जाओ। वह इस बारे में तुम्हारी सहायता करेंगे। उन का आशय यह था कि या तो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) उस विरोध के कारण जो मक्का वालों की ओर से सामान्यतया और अबू जहल की ओर से विशेषतया हो रहा था इसकी सहायता करने से इन्कार कर देंगे और इस प्रकार "नऊज़ुबिल्लाह" अरबों में अपमानित हो जाएंगे और क़सम तोड़ने वाले कहलाएंगे या फिर आप उस की सहायता के लिए अबूजहल के पास जाएंगे और वह आप को अपमानित करके अपने घर से निकाल देगा। जब वह व्यक्ति मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास गया और उसने अबूजहल की शिकायत की तो आप निःसंकोच उठकर उसके साथ चल दिए तथा अबूजहल के द्वार पर जाकर द्वार खटखटाया। अबू जहल घर से बाहर निकला और देखा कि उस को क़र्ज़ा देने वाला व्यक्ति मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथ उसके द्वारा पर खड़ा है। आप (स.अ.व.) ने उसे तुरन्त ध्यान दिलाया कि तुमने इस व्यक्ति का अमुक-अमुक ऋण अदा करना है उसे अदा करो। अबू जहल ने बिना कुछ कहा सुनी किए उसका ऋण उसे अदा कर दिया। जब शहर के अन्य रईसों ने अबू जहल की भर्त्सना की कि तुम हम से तो यह कहा करते थे कि मुहम्मद (स.अ.व.) को अपमानित करो और उस से किसी प्रकार का संबंध न रखो, परन्तु तुम ने स्वयं उसकी बात स्वीकार की और उसका मान-सम्मान किया, तो अबू जहल ने कहा— ख़ुदा की सौगंध यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो तुम भी यही करते। मैंने देखा कि मुहम्मद (स.अ.व.) के दाएँ और बाएँ दो मस्त ऊँट खड़े हैं जो मेरी गर्दन मरोड़ कर मुझे मारना चाहते हैं[①]। अल्लाह तआला ही उचित जानता है कि इस की रिवायत में कोई सत्य है या नहीं या उसे वास्तव में अल्लाह तआला ने कोई चमत्कार दिखाया था अथवा उस पर सत्य का

①-इब्ने हिशाम जिल्द-1, पृष्ठ-1301

रोब छा गया था और उसने यह देख कर कि समस्त मक्का के कोप का भाजन एवं निन्दित मनुष्य एक पीड़ित की सहायता करने के आवेग में अकेला बिना किसी अन्य सहायक के मक्का के सरदार के द्वार पर खड़ा हो कर कहता है कि तुम्हें इस व्यक्ति का ऋण वापस करना है वह ऋण अदा कर दो तो सत्य के भय ने उसकी उद्दण्डता की भावना को कुचल दिया और उसे सत्य के समक्ष झुकना पड़ा।

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) से हज़रत ख़दीजा का विवाह

जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पच्चीस वर्ष के हुए तो आप के सदाचार, संयम तथा शुभ कर्मों की ख्याति प्रायः फैल चुकी थी और लोग आप की ओर संकेत करते और कहते कि यह सत्यवादी और अमानतदार व्यक्ति जा रहा है। ये सूचनाएं मक्का की एक धनाढ्य विधवा को भी पहुँची। उसने आप (स.अ.व.) के चाचा अबू तालिब से इच्छा प्रकट की कि वह अपने भतीजे मुहम्मद (स.अ.व.) से कहें कि उस का व्यापार संबंधी सामान शाम के व्यापारी दल के साथ जा रहा है वह उसका प्रबन्ध अपने हाथ में ले । अबू तालिब ने आप से चर्चा की और आपने इस बात को स्वीकार कर लिया। इस यात्रा में आपको बड़ी सफलता प्राप्त हुई तथा आप आशा से बढ़कर लाभ के साथ लौटे। ख़दीजा ने महसूस किया कि लाभ केवल मंडियों की परिस्थितियों के कारण नहीं अपितु क़ाफ़िले के सरदार की नेकी और ईमानदारी के कारण है। उसने अपने दास मैसरह से जो आपके साथ था आप के आचरण के बारे में पूछा। उसने भी उसके विचार का समर्थन किया और बताया कि आपने यात्रा में जिस ईमानदारी और लगन से कर्त्तव्य निभाया, वह केवल आप ही का कार्य था। हज़रत ख़दीजा की तबियत पर इस बात का विशेष प्रभाव पड़ा। इसके बावजूद कि वह इस समय चालीस वर्ष की थीं और दो बार विधवा हो चुकी थीं,

उन्होंने अपनी एक सहेली को रसूले करीम (स.अ.व.) के पास भिजवाया ताकि मालूम करे कि क्या आप उन से विवाह करने पर सहमत होंगे। वह सहेली आप के पास आई और उसने आप से पूछा कि आप विवाह क्यों नहीं करते ? आप ने कहा मेरे पास कोई धन नहीं है जिस के द्वारा मैं विवाह करूँ। उस सहेली ने कहा— यदि इस कठिनाई का समाधान हो जाए तथा एक सुशील और अमीर स्त्री से आप का विवाह हो जाए तो फिर ? आप ने कहा— वह स्त्री कौन है ? उस ने कहा ख़दीजा[रज़ि.]। आप ने कहा कि मैं उस तक किस प्रकार पहुँच सकता हूँ ? इस पर उस सहेली ने कहा कि यह मेरा ज़िम्मा रहा। आप ने फ़रमाया मुझे स्वीकार है। तब ख़दीजा[रज़ि.] ने आप के चाचा के माध्यम से विवाह का दृढ़तापूर्वक निर्णय किया और आप का विवाह हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] से हुआ। एक निर्धन और अनाथ युवक के लिए धन-दौलत का यह प्रथम द्वारा खुला, परन्तु उसने इस दौलत का जिस प्रकार उपयोग किया वह समस्त संसार के लिए एक शिक्षाप्रद घटना है।

दासों की स्वतंत्रता और ज़ैद[रज़ि.] की चर्चा

आप (स.अ.व.) के विवाहोपरान्त जब हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] ने महसूस किया कि आप का संवेदनशील हृदय ऐसे जीवन में कोई विशेष आनन्द नहीं पाएगा कि आप (स.अ.व.) की पत्नी धनवान हो और आप उसके मुहताज हों। अतः उन्होंने रसूले करीम (स.अ.व.) से कहा कि मैं अपना धन और दास आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहती हूँ। आप (स.अ.व.) ने कहा— ख़दीजा[रज़ि.] क्या वास्तव में ? जब उन्होंने पुनः इक़रार किया तो आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया— मेरा प्रथम कार्य यह होगा कि मैं दासों को आज़ाद करूँ। अतः आप ने उसी समय ख़दीजा[रज़ि.] के दासों को बुलाया और कहा कि तुम सब लोग आज से आज़ाद हो और माल का अधिकांश

भाग ग़रीबों में बांट दिया। आप ने जिन दासों को आज़ाद किया उनमें एक ज़ैद नामक दास भी था। वह अन्य दासों से अधिक निपुण और होशियार था क्योंकि वह एक सभ्य और सम्मानित ख़ानदान का लड़का था, जिसे बचपन में डाकू चुरा कर ले गए थे और वह बिकता-बिकता मक्का में पहुँचा था। उस युवक ने अपनी निपुणता और होशियारी से इस बात को समझ लिया कि आज़ादी की तुलना में इस व्यक्ति की दासता अधिक श्रेयस्कर है। जब आप[रज़ि.] ने दासों को आज़ाद किया जिस में ज़ैद भी था तो ज़ैद ने कहा— आप तो मुझे आज़ाद करते हैं परन्तु मैं आज़ाद नहीं होता, मैं आप के साथ ही रहना चाहता हूँ। अतः वह आप के साथ रहा और आप (स.अ.व.) के प्रेम में दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला गया। चूंकि वह एक धनाढ्य ख़ानदान का लड़का था, उसके पिता और चाचा डाकुओं के पीछे-पीछे अपने बच्चे को ढूंढते हुए निकले अन्ततः उन्हें मालूम हुआ कि उनका लड़का मक्का में है। अतः वह मक्का में आए और पता लगाते हुए मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सभा में पहुँचे और आप से विनती की कि आप (स.अ.व.) हमारे बच्चे को आज़ाद कर दें और जितना धन चाहें ले लें। आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया— ज़ैद को तो मैं आज़ाद कर चुका हूँ और वह बड़ी प्रसन्नता से आप के साथ जा सकता है। फिर आप ने ज़ैद को बुला कर उनके पिता और चाचा से भेंट करा दी और जब दोनों लोग मिल चुके और आँसुओं से अपने हृदय के भार को हल्का कर चुके तो ज़ैद के पिता ने उस से कहा कि इस सुशील व्यक्ति ने तुम्हें आज़ाद कर दिया है, तुम्हारी माता तुम्हारी याद में तड़प रही है अब तुम शीघ्र चलो और उसके लिए चैन और आराम का कारण बनो। ज़ैद ने कहा— माता-पिता किसे प्रिय नहीं होते ! मेरा हृदय भी उस प्रेम से ख़ाली नहीं है, परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह का प्रेम मेरे हृदय में इतना अधिक समा चुका है कि उसके पश्चात् मैं आप से पृथक नहीं हो सकता। मुझे प्रसन्नता है

कि मैं आप लोगों से मिल लिया, परन्तु मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) से पृथक होना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। ज़ैद के पिता और चाचा ने बहुत ज़ोर दिया, परन्तु ज़ैद ने उनके साथ जाना स्वीकार न किया। ज़ैद के इस प्रेम को देखकर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) खड़े हुए। फ़रमाया— ज़ैद आज़ाद तो पहले ही था, परन्तु आज से यह मेरा बेटा है। इस नई परिस्थिति को देखकर ज़ैद के पिता और चाचा वापस चले गए और ज़ैद सदैव के लिए मक्का के हो गए।

ग़ार-ए-हिरा (अर्थात् हिरा की गुफा) **में उपासना करना**

रसूले करीम (स.अ.व.) की आयु जब तीस वर्ष से अधिक हुई तो आप के हृदय में ख़ुदा तआला की उपासना की प्रेरणा पहले से अधिक प्रबल होने लगी। अन्ततः आप शहर के लोगों के उपद्रवों, दुराचारों और दुष्कर्मों से घृणा करते हुए मक्का से दो तीन मील की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर एक पत्थरों से बनी हुई छोटी सी गुफा में ख़ुदा तआला की उपासना करने लग गए। हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] कुछ दिन का भोजन आप के लिए तैयार कर देतीं आप वह लेकर हिरा नामक गुफा में चले जाते थे और उन दो-तीन पत्थरों के अन्दर बैठ कर ख़ुदा तआला की उपासना में रात-दिन व्यस्त रहते थे।

क़ुर्आन की प्रथम वह्यी (ईशवाणी)

जब आप (स.अ.व.) की आयु चालीस वर्ष की हुई तो एक दिन आप[स.] ने उसी गुफा में एक कश्फ़ी दृश्य देखा कि एक व्यक्ति आप को सम्बोधित करके कहता है कि "पढ़िए" आप[स.] ने फ़रमाया मैं तो पढ़ना नहीं जानता। इस पर उसने पुनः और फिर तीसरी बार कहा और अन्ततः उसने आप[स.] से पांच वाक्य कहलवाए—

اِقۡرَاۡ بِاسۡمِ رَبِّکَ الَّذِیۡ خَلَقَ ۚ﴿۱﴾ خَلَقَ الۡاِنۡسَانَ مِنۡ عَلَقٍ ۚ﴿۲﴾ اِقۡرَاۡ وَ رَبُّکَ

الۡاَکۡرَمُ ۙ﴿۳﴾ الَّذِیۡ عَلَّمَ بِالۡقَلَمِ ۙ﴿۴﴾ عَلَّمَ الۡاِنۡسَانَ مَا لَمۡ یَعۡلَمۡ ؕ﴿۵﴾ ①

यह वह क़ुर्आनी प्रारम्भिक ईशवाणी है जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर अवतरित हुई। इस का अर्थ यह है कि— समस्त संसार को अपने प्रतिपालक के नाम पर जिसने तुझे और समस्त सृष्टि को उत्पन्न किया है पढ़कर ख़ुदा का सन्देश दे। वह ख़ुदा जिसने मनुष्य को इस प्रकार पैदा किया है कि उसके हृदय में ख़ुदा तआला और उसकी सृष्टि के प्रेम का बीज पाया जाता है। हां समस्त संसार को यह सन्देश सुना दे कि तेरा रब्ब— जो सब से अधिक सम्मान वाला है— तेरे साथ होगा, वह जिसने संसार को विद्याएं सिखाने के लिए क़लम बनाया है और मनुष्य को वह कुछ सिखाने के लिए तत्पर हुआ है जो इस से पूर्व मनुष्य नहीं जानता था। यह कुछ शब्द क़ुर्आन करीम की उन समस्त शिक्षाओं पर आधारित हैं जो भविष्य में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर अवतरित होने वाली थीं और संसार-सुधार का एक महत्त्वपूर्ण बीज इनके अन्दर पाया जाता था। इनकी व्याख्या तो क़ुर्आन करीम में यथास्थान आएगी। इस अवसर पर इन आयतों का वर्णन इसलिए कर दिया गया है कि रसूले करीम (स.अ.व.) के जीवन की यह प्रमुख घटना है और क़ुर्आन करीम के लिए ये आयतें एक नींव के पत्थर की हैसियत रखती हैं। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर जब यह वाणी अवतरित हुई तो आप के हृदय में यह भय उत्पन्न हुआ कि क्या मैं ख़ुदा तआला की ओर से सुपुर्द किया हुआ इतना बड़ा दायित्त्व निबाह सकूँगा ? कोई और होता तो अभिमान और अहंकार से उसका मस्तिष्क फिर जाता कि सामर्थ्यवान ख़ुदा ने एक कार्य मेरे सुपुर्द किया है परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) काम करना जानते

---

①-अलअलक़-1-4

थे ; काम पर अहंकार करना नहीं जानते थे। आप इस इल्हाम (ईशवाणी) के पश्चात् हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] के पास आए। आप का चेहरा उतरा हुआ था तथा घबराहट के लक्षण प्रकट थे। हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] ने पूछा— आख़िर हुआ क्या ? आप ने सारी घटना सुनाई और फ़रमाया— मुझ जैसा कमज़ोर व्यक्ति इस भार (दायित्त्व) को किस प्रकार उठा सकेगा ? हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] ने कहा—

كَلَّا وَاللّٰهِ مَايُخْزِيْکَ اللّٰهُ اَبَدًا اِنَّکَ لَتَصِلُ الرِّحْمَ وَ تَحْمِلُ الْكَلَّ
وَ تَكْسِبُ الْمَعدوم و تقری الضَّيْفَ وَ تُعِيْنُ عَلٰى نَوَائِبِ الْحَقِّ①

ख़ुदा की क़सम यह वाणी ख़ुदा तआला ने आप पर इसलिए अवतरित नहीं की कि आप असफल और निराश हों और ख़ुदा आप का साथ छोड़ दे, ख़ुदा तआला ऐसा कब कर सकता है ? आप तो वह हैं कि परिजनों के साथ सद्व्यवहार करते हैं, असहाय और अनाथ लोगों का बोझ उठाते हैं, वे शिष्टाचार जो देश से मिट चुके थे वे आप के अस्तित्व के द्वारा पुन: स्थापित हो रहे हैं, मेहमानों का सत्कार करते हैं और वास्तविक संकटों पर लोगों की सहायता करते हैं। क्या ऐसे मनुष्य को ख़ुदा तआला विपत्ति में डाल सकता है।

अत: वह आपको अपने चचेरे भाई वर्क़ा बिन-नौफ़िल के पास ले गईं जो ईसाई हो चुके थे उन्होंने जब यह घटना सुनीं तो सहसा बोल उठे। आप पर वही फ़रिश्ता उतरा है जो मूसा पर उतरा था② यह इस्तिस्ना, अध्याय-18 आयत-18 वाली भविष्यवाणी की ओर संकेत था। इस बात की सूचना आप के आज़ाद किए हुए ज़ैद को जो उस समय लगभग पच्चीस-तीस वर्ष के थे और अली[रज़ि.] आप के चाचा के बेटे को जिस की आयु उस समय ग्यारह वर्ष की थी पहुँची तो दोनों आप पर तुरन्त ईमान ले आए।

---

①-बुख़ारी बाब बदउल वह्यी।   ②-बुख़ारी बाब बदउल वह्यी।

हज़रत अबूबकर का हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) पर ईमान लाना

आप के बचपन के मित्र हज़रत अबू बकर[रज़ि.] जो शहर से बाहर गए हुए थे जब शहर में वापस प्रवेश किया तो सहसा उनके कानों में ये आवाज़ें पड़ीं, तुम्हारा मित्र पागल हो गया है। वह कहता है कि आकाश से फ़रिश्ते उतर कर मुझ से बातें करते हैं। अबू बकर सीधे आप[स.] के द्वार पर आए और द्वार खटखटाया, जब आप ने द्वार खोला तो उन्होंने आप[स.] से उक्त वस्तु स्थिति के संबंध में प्रश्न किया। रसूले करीम (स.अ.व.) ने अपने बचपन के मित्र को ठोकर से बचाने के लिए वस्तु स्थिति का कुछ स्पष्टीकरण करना चाहा अबू बकर ने रोका और कहा कि मुझे केवल इतना उत्तर दीजिए कि क्या आपने यह घोषणा की है कि ख़ुदा के फ़रिश्ते आप के पास आए और उन्होंने आप से बातें कीं ? आप[स.] ने फिर बात को स्पष्ट करना चाहा। अबू बकर[रज़ि.] ने क़सम देकर कहा कि केवल मेरे इस प्रश्न का उत्तर दीजिए और कुछ न कहिए। जब आपने सकारात्मक उत्तर दिया तो अबू बकर[रज़ि.] ने कहा साक्षी रहिए मैं आप पर ईमान लाता हूँ और फिर कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप तो तर्क देकर मेरे ईमान को कमज़ोर करने लगे थे, जिसने आपके जीवन को देखा हो क्या उसे आपकी सच्चाई के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता हो सकती है ?

मोमिनों की छोटी सी जमाअत

यह एक छोटी सी जमाअत थी जिससे इस्लाम की नींव पड़ी। एक स्त्री जो वृद्धावस्था की आयु को पहुँच रही थी, एक ग्यारह वर्षीय बालक, एक आज़ाद किया हुआ दास मातृ भूमि से दूर और दूसरों में रहने वाला

जिसके पीछे कोई न था, एक युवा मित्र और एक ख़ुदा की वाणी का दावेदार, यह वह छोटा सा दल था जो संसार में प्रकाश फैलाने के लिए कुफ़्र और पथ-भ्रष्टता के मैदान की ओर निकला। लोगों ने जब बातें सुनीं तो उन्होंने उपहास किया और परस्पर आँखों से अन्यन्य संकेत किए और संकेतों में एक-दूसरे को जताया कि ये लोग पागल हो गए हैं इनकी बातों पर चिन्तित न हो अपितु सुनो और आनन्द उठाओ परन्तु सत्य अपने पूर्ण वेग और वैभव के साथ प्रकट होना आरम्भ हुआ और यसइयाह नबी की भविष्यवाणी के अनुसार "आदेश पर आदेश— आदेश पर आदेश, क़ानून पर क़ानून, क़ानून पर क़ानून" (अध्याय-28, आयत-13) होता गया। "थोड़ा यहाँ, थोड़ा वहाँ" और एक अनजान भाषा से जिस से अरब सर्वथा अपरिचित थे, ख़ुदा ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के द्वारा अरबों से बातें करना प्रारम्भ किया, युवकों के हृदय उद्वेलित हो उठे, सत्य प्रिय लोगों के शरीरों में कम्पन पैदा हुआ, उनके उपहासजन्य अट्टहासों में भक्तिभाव की रुचि जन्म लेने लगी तथा उनके स्वरों में शनैः शनैः प्रशंसा के जयघोषों का आरम्भ होने लगा तथा दोसों, युवकों और अत्याचारों से पीड़ित स्त्रियों का एक समूह आप के पास एकत्र होने लगा क्योंकि आपकी आवाज़ में स्त्रियां अपने अधिकारों की सुरक्षा देख रही थीं, दास अपनी आज़ादी की घोषणा सुन रहे थे तथा युवक बड़ी-बड़ी आशाओं और उन्नतियों के मार्ग खुलते हुए महसूस कर रहे थे।

मक्का के सरदारों की ओर से विरोध

जब अट्टहास और उपहास की आवाज़ों में से प्रशंसा और तारीफ़ के स्वर भी गूंजने लगे तो मक्का के सरदार घबरा गए, शासकों में भय पैदा होने लगा, वे एकत्र हुए, उन्होंने परामर्श किए, योजनाएं बनाईं, उपहास के स्थान पर अन्याय, अत्याचार, कठोरता और सामाजिक संबंध तोड़ने

के प्रस्ताव पारित किए और उन पर यथार्थ रूप से आचरण भी होने लगा। अब मक्का इस्लाम के साथ टकराव के निर्णय पर पूर्ण रूप से गंभीर हो चुका था। अब उनके निकट पागलपन से भरा दिखाई देने वाला वह दावा यथार्थ रूप से एक प्रगतिशील आन्दोलन दिखाई दे रहा था। मक्का की राजनीति के लिए ख़तरा, मक्का के धर्म के लिए ख़तरा, मक्का के परस्पर रहन सहन के लिए ख़तरा तथा मक्का के रीति-रिवाजों के लिए ख़तरा दिखाई दे रहा था। इस्लाम एक नया आसमान और नई ज़मीन बनाता हुआ दिखाई देता था, जिस नए आकाश और नई पृथ्वी के होते हुए अरब का पुराना आकाश और पुरानी पृथ्वी का अस्तित्व शेष नहीं रह सकता था। अब यह प्रश्न मक्का वालों के लिए उपहास का प्रश्न नहीं रहा था, अब वह जीवन और मरण का प्रश्न था। उन्होंने इस्लाम की चुनौती को स्वीकार किया और उसी भावना के साथ स्वीकार किया जिस भावना के साथ नबियों के विरोधी नबियों की चुनौती को स्वीकार करते चले आए थे। वे तर्क का उत्तर तर्क से नहीं अपितु तीर और तलवार से देने पर तत्पर हो गए। इस्लाम की भलाई का उत्तर उसी प्रकार से उच्च शिष्टाचार से नहीं अपितु उन्होंने गाली-गलौज और अपशब्दों द्वारा देने का निर्णय कर लिया। संसार में एक बार फिर धर्म और अधर्म का महासंग्राम छिड़ गया, एक बार फिर शैतानी सेनाओं ने फ़रिश्तों पर धावा बोल दिया। भला उन मुट्ठी भर लोगों की शक्ति ही क्या थी कि मक्का वालों के सामने ठहर सकें, स्त्रियों का नितान्त निर्लज्जतापूर्वक वध किया गया, पुरुषों को टांगे चीर-चीर कर बड़ी वीभत्सता के साथ मृत्यु के घाट उतारा गया, दासों को गर्म रेत और खुरदरे पत्थरों पर उस सीमा तक घसीटा गया कि शरीर की खाल पशुओं की खाल के समरूप हो गई। एक दीर्घ अवधि के पश्चात्, इस्लाम की विजय के युग में जब इस्लाम की विजय-पताका सुदूर पूर्व-पश्चिम में लहरा रही थी, एक बार एक प्रारम्भिक नव दीक्षित मुस्लिम दास

ख़ुबाब[रज़ि.] की पीठ नंगी हुई तो उनके साथियों ने देखा कि उनकी पीठ पर खाल मनुष्यों जैसी नहीं, जानवरों जैसी है, वे घबरा गए और उन से पूछा कि आप को कौन सा रोग है ? वह हंसे और कहा कि यह रोग नहीं यह स्मृति (यादगार) है उस समय की जब हम नए मुसलमान दासों को अरब के लोग मक्का की गलियों में खुरदरे कठोर पत्थरों पर घसीटा करते थे और हम पर निरन्तर यह अत्याचार जारी रखते थे, उसी के परिणाम स्वरूप हमारे शरीर की खाल का यह विकृत रूप आप देख रहे हैं।

मोमिन-दासों पर मक्का के क़ाफ़िरों का अत्याचार और अन्याय

वे दास जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर ईमान लाए, विभिन्न जातियों के थे, उनमें हबशी भी थे जैसे बिलाल[रज़ि.], रूमी भी थे जैसे सुहैब[रज़ि.]। फिर उनमें ईसाई भी थे जैसे जुबैर और सुहैब[रज़ि.] और मुश्रिक (द्वैतवादी) भी थे। जैसे बिलाल[रज़ि.], अम्मार[रज़ि.]। बिलाल[रज़ि.] को उसके स्वामी गर्म और तपती रेत में लिटा कर ऊपर या तो पत्थर रख देते या युवकों को सीने पर कूदने के लिए नियुक्त कर देते। हबशी नस्ल के बिलाल[रज़ि.], उमय्या बिन ख़ल्फ़ नामक एक मक्का के रईस के दास थे। उमय्या उन्हें दोपहर के समय ग्रीष्म ऋतु में मक्का से बाहर ले जा कर तपती रेत पर नंगा करके लिटा देता था और बड़े-बड़े गर्म पत्थर उन के सीने पर रख कर कहता की 'लात' और 'उज़्ज़ा' का ईश्वरत्व स्वीकार करो और मुहम्मद (स.अ.व.) से अलग हो जाओ। इसके उत्तर में बिलाल[रज़ि.] कहते 'अहद' 'अहद' अर्थात् अल्लाह एक ही है, अल्लाह एक ही है। उमय्या को आप का बार-बार यह उत्तर सुन कर और अधिक क्रोध आ जाता और वह आप के गले में रस्सा डाल कर उद्दण्ड लड़कों के सुपुर्द कर देता और कहता कि इसको मक्का की गलियों में पत्थरों के ऊपर घसीटते हुए ले जाओ

जिसके कारण उनका शरीर रक्त से लहू-लुहान हो जाता परन्तु वह फिर भी 'अहद' 'अहद' कहते चले जाते अर्थात् "ख़ुदा एक है" "ख़ुदा एक है"। एक अन्तराल के पश्चात् जब ख़ुदा तआला ने मुसलमानों को मदीना में शान्ति प्रदान की और जब वे स्वतंत्रतापूर्वक इबादत करने योग्य हो गए तो रसूले करीम (स.अ.व.) ने बिलाल[रज़ि.] को अज़ान देने के लिए नियुक्त किया। यह हबशी दास जब आज़ान में اَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ अश्हदो अन् ला इलाहा इल्लल्लाह के स्थान पर اَسْهَدُ اَنْ لَّااِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ अस्हदो अन् ला इलाहा इल्लल्लाह कहता तो मदीना के लोग जो उसकी परिस्थितियों से परिचित न थे हँसने लग जाते। एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) ने लोगों को बिलाल[रज़ि.] की अज़ान पर हँसते देखा तो आप ने लोगों की ओर देखा और फ़रमाया — तुम बिलाल[रज़ि.] की अज़ान पर हंसते हो, परन्तु ख़ुदा तआला अर्श पर उसकी अज़ान को सुनकर प्रसन्न होता है। आप[स.] का संकेत इसी ओर था कि तुम्हें तो यह दिखाई देता है कि यह 'श' नहीं बोल सकता, परन्तु 'श' और 'स' में क्या रखा है। ख़ुदा तआला जानता है कि जब गर्म रेत पर नंगी पीठ के साथ इसे लिटा दिया जाता था और इसके सीने पर अत्याचारी अपने जूतों सहित कूदा करते थे तथा पूछते थे कि अब भी 'नसीहत' मिली या नहीं। तो यह अपनी टूटी-फूटी भाषा में 'अहद' 'अहद' कह कर ख़ुदा तआला के एक होने की घोषणा करता रहता था और अपनी वफ़ादारी, अपनी एकेश्वरवाद की आस्था और अपने हृदय की दृढ़ता का प्रमाण देता था। अतः उसका اَسْهَدُ (अस्हदो) बहुत से लोगों के اَشْهَدُ (अश्हदो) से अधिक मूल्यवान था।

हज़रत अबू बकर[रज़ि.] ने जब उन पर ये अत्याचार देखे तो उनके स्वामी को उनका मूल्य अदा करके उन्हें आज़ाद करा दिया। इसी प्रकार अन्य बहुत से दासों को हज़रत अबूबकर[रज़ि.] ने अपने धन से आज़ाद कराया। उन दासों में से सुहैब[रज़ि.] एक धनवान व्यक्ति थे। यह व्यापार करते

थे तथा मक्का के बड़े लोगों में समझे जाते थे, परन्तु इसके बावजूद कि वह धनवान भी थे और आज़ाद भी हो चुके थे, क़ुरैश उन्हें मार-मार कर बेहोश कर देते थे। जब रसूले करीम (स.अ.व.) मदीने की ओर हिजरत (प्रवास) कर गए तो आप के पश्चात् सुहैब[रज़ि.] ने भी चाहा कि वह भी प्रवास करके मदीना चले जाएं, परन्तु मक्का के लोगों ने उन्हें रोका और कहा कि जो दौलत तुम ने मक्का में कमाई है तुम उसे मक्का से बाहर किस प्रकार ले जा सकते हो। हम तुम्हें मक्का से नहीं जाने देंगे। सुहैब[रज़ि] ने कहा यदि मैं यह समस्त दौलत छोड़ दूँ तो क्या फिर तुम मुझे जाने दोगे। वे इस बात पर सहमत हो गए और आप अपनी सारी दौलत मक्का वालों के सुपुर्द कर के ख़ाली हाथ मदीने चले गए और रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हो गए। आप[स.] ने फ़रमाया — सुहैब[रज़ि.] तुम्हारा यह सौदा पहले समस्त सौदों से अधिक लाभप्रद रहा, अर्थात् पहले सामान के बदले में तुम रुपया प्राप्त किया करते थे परन्तु अब रुपए के बदले में तुम ने ईमान प्राप्त किया है।

इन दासों में से अधिकांश प्रकट और अप्रकट दोनों रूपों में दृढ़संकल्प रहे, परन्तु कुछ से प्रत्यक्ष रूप में कुछ दुर्बलताएं भी प्रकट हुईं। अतः एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) अम्मार[रज़ि.] नामक दास के पास से गुज़रे तो देखा कि वह सिसकियां ले रहे थे तथा आंखें पोंछ रहे थे। आप (स.अ.व.) ने पूछा अम्मार[रज़ि.] क्या मामला है ? अम्मार[रज़ि.] ने कहा हे अल्लाह के रसूल! बहुत ही बुरा हाल है। वे मुझे मारते गए, कष्ट देते गए और उस समय तक नहीं छोड़ा जब तक मेरे मुख से आप[स.] के विरुद्ध तथा देवी-देवताओं के समर्थन में वाक्य नहीं निकलवा लिए। रसूले करीम (स.अ.व.) ने पूछा परन्तु तुम अपने हृदय में क्या महसूस करते थे ? अम्मार[रज़ि.] ने कहा हृदय में तो एक अडिग ईमान महसूस करता था। आप ने फ़रमाया— यदि हृदय ईमान पर सन्तुष्ट था तो ख़ुदा तआला तुम्हारी

कमज़ोरी को क्षमा कर देगा। आपके पिता यासिर[रज़ि.] और आपकी मां सुमैया[रज़ि.] को भी मक्का के काफ़िर बहुत कष्ट देते थे। अत: एक बार जबकि उन दोनों को कष्ट दिया जा रहा था, रसूले करीम (स.अ.व.) उनके पास से गुज़रे। आप[स.] ने उन दोनों के कष्टों को देखा और आप का हृदय दर्द से भर आया। आप[स.] उन से सम्बोधित हुए और बोले — صبرًا اٰل يَاسر فَاِنَّ مَوْعِدَكُمُ الْجَنَّة[1] हे यासिर के परिजनो ! धैर्य से काम लो, ख़ुदा ने तुम्हारे लिए स्वर्ग तैयार कर रखा है। यह भविष्यवाणी थोड़े ही दिनों में पूर्ण हो गई क्योंकि यासिर[रज़ि.] मार खाते-खाते स्वर्ग सिधार गए, परन्तु इस पर भी काफ़िरों को धैर्य न आया और उन्होंने उनकी वृद्ध पत्नी सुमैया[रज़ि.] पर अत्याचार जारी रखे। अत: अबूजहल ने एक दिन क्रोध में उनकी जांघ पर भाला मारा जो जांघ को चीरता हुआ उनके पेट में घुस गया और तड़पते हुए उन्होंने प्राण त्याग दिए।

नबीरा[रज़ि.] एक दासी थी। उन्हें अबू जहल ने इतना मारा कि उनकी आँखें नष्ट हो गईं। अबू फ़कीह[रज़ि.] सफ़्वान बिन उमैया के दास थे उन्हें उनका स्वामी और उसका ख़ानदान तपती हुई गर्म पृथ्वी पर लिटा देता था और बड़े-बड़े गर्म पत्थर उनके सीने पर रख देता, यहां तक कि उनकी जीभ बाहर निकल आती। यही हाल शेष दासों का भी था।

नि:संदेह ये अत्याचार अमानवीय और असहनीय थे, परन्तु जिन लोगों पर ये अत्याचार किए जा रहे थे। वे प्रकट रूप में मनुष्य थे परन्तु अप्रकटित रूप में फ़रिश्ते थे। क़ुर्आन केवल मुहम्मद (स.अ.व.) के हृदय और उनके कानों पर ही अवतरित नहीं हो रहा था अपितु ख़ुदा उन लोगों के हृदयों में भी बोल रहा था। कभी किसी धर्म की स्थापना नहीं हो सकती जब तक उसके प्रारम्भिक मानने वालों के हृदयों में से ख़ुदा का स्वर बुलन्द न हो। जब मनुष्यों ने उन्हें त्याग दिया, जब परिजनों ने उन से मुख

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-110

फेर लिया तो ख़ुदा तआला उनके हृदयों में कहता था— मैं तुम्हारे साथ हूँ, मैं तुम्हारे साथ हूँ तब ये समस्त अत्याचार उनके लिए आराम हो जाते थे, गालियां दुआएं बन कर लगती थीं, पत्थर मरहम का कार्य करते थे, विरोध बढ़ते गए परन्तु ईमान भी साथ-साथ उन्नति करता गया, अत्याचार अपनी चरम सीमा को पहुँच गया परन्तु निष्कपटता भी पहली समस्त सीमाओं को पार कर गई।

आज़ाद मुसलमानों पर अत्याचार

आज़ाद मुसलमानों पर भी कुछ कम अत्याचार नहीं होते थे। उनके बुज़ुर्ग और ख़ानदान के बड़े लोगों को भी नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते थे। हज़रत उसमान[रज़ि.] चालीस वर्ष के लगभग थे तथा धनाढ्य पुरुष थे, परन्तु इस के बवाजूद जब क़ुरैश ने उन पर अत्याचार करने का निर्णय किया तो उनके चाचा हकम ने उन्हें रस्सियों से बांध कर ख़ूब पीटा। ज़ुबैर[रज़ि.] बिन अलअवाम एक बहुत बड़े वीर युवक थे। इस्लामी विजयों के युग में वह एक शक्तिशाली कमाण्डर सिद्ध हुए। उनका चाचा भी उन्हें बहुत कष्ट देता था, चटाई में लपेट देता और नीचे से धुआँ देता था ताकि उन की साँस रुक जाए और फिर कहता था कि अब भी इस्लाम छोड़ेगा या नहीं ? परन्तु वह उन कष्टों को सहन करते तथा उत्तर में यही कहते कि सत्य को पहचान कर उस से इन्कार नहीं कर सकता।

हज़रत अबूज़र[रज़ि.] ग़फ़्फ़ार क़बीले के एक सदस्य थे वहां उन्होंने सुना कि मक्का में किसी व्यक्ति ने ख़ुदा की ओर से (नबी) होने का दावा किया है। वह जांच-पड़ताल के लिए मक्का आए तो मक्का वालों ने उन्हें बहकाया और कहा कि मुहम्मद (स.अ.व.) तो हमारा संबंधी है। हम जानते हैं कि उसने एक दूकान खोली है, परन्तु अबूज़र[रज़ि.] अपने इरादे से न रुके और कई उपाय करके अन्ततः रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास

जा पहुँचे। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इस्लाम की शिक्षा बताई और आप ईमान ले आए। आप ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से आज्ञा ली कि यदि मैं कुछ समय तक अपनी जाति को अपने इस्लाम की सूचना न दूँ तो कुछ हानि तो नहीं ? आप[स.] ने फ़रमाया कि यदि कुछ दिन चुप रहें तो कोई हानि नहीं। इस आज्ञा के साथ वह अपने क़बीले की ओर वापस चले और हृदय में निर्णय कर लिया कि कुछ समय तक परिस्थितियों को ठीक कर लूँगा तब अपने इस्लाम को प्रकट करूँगा। जब वह मक्का की गलियों में से गुज़र रहे थे तो उन्होंने देखा कि मक्का के सरदार इस्लाम के विरुद्ध गाली-गलौज कर रहे हैं। कुछ दिनों के लिए अपनी आस्था को गुप्त रखने का विचार उनके हृदय से उसी समय जाता रहा और उन्होंने सहसा उस समूह के समक्ष यह घोषणा की

اَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِیْکَ لَهٗ وَاَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ۔

अर्थात् मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह एक है उसका कोई भागीदार नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (स.अ.व.) उसके बन्दे और रसूल हैं।

विरोधियों की इस सभा में इस आवाज़ का उठना था कि सारे लोग उन्हें मारने के लिए उठ खड़े हुए और इतना मारा कि वह बेहोश होकर गिर पड़े, परन्तु अत्याचारियों ने फिर भी अपने हाथ न रोके और मारते ही चले गए। इतने में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चाचा अब्बास[रज़ि.] जो उस समय तक मुसलमान नहीं हुए थे वहाँ आ गए और उन्होंने उन लोगों को समझाया कि अबूज़र के क़बीले में से हो कर तुम्हारे अनाज लाने वाले क़ाफ़िले आते हैं। यदि इसकी जाति को क्रोध आ गया तो मक्का भूखा मर जाएगा। इस पर उन लोगों ने उन्हें छोड़ा। अबू ज़र[रज़ि.] ने एक दिन आराम किया और दूसरे दिन फिर उस सभा में जा पहुँचे। वहाँ तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के विरुद्ध बातें करना उनका नित्यकर्म था। जब यह काबे

में गए तो फिर वही चर्चा जारी थी। इन्होंने फिर खड़े होकर अपनी एक ख़ुदा की आस्था की घोषणा की और फिर उन लोगों ने इन्हें मारना-पीटना आरम्भ किया। इसी प्रकार तीन दिन होता रहा, तत्पश्चात् यह अपने कबीले की ओर चले गए।

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) पर अत्याचार

स्वयं रसूले करीम (स.अ.व.) का अस्तित्व भी सुरक्षित न था। आपको नाना प्रकार से कष्ट दिया जाता। एक बार आप इबादत कर रहे थे कि लोगों ने आप के गले में कपड़ा डाल कर खींचना आरम्भ किया यहां तक कि आपकी आँखें बाहर निकल आईं। इतने में हज़रत अबू बक़र[रज़ि.] वहां आ गए और उन्होंने आपको यह कहते हुए छुड़ाया कि हे लोगो ! क्या तुम एक मनुष्य की इस अपराध में हत्या करते हो कि वह कहता है कि ख़ुदा मेरा स्वामी है।①

एक बार आप नमाज़ पढ़ रहे थे कि आप की पीठ पर ऊँट की ओझड़ी लाकर रख दी, उसके बोझ से आप[स.] उस समय तक सर न उठा सके जब तक कि कुछ लोगों ने पहुँच कर उस ओझड़ी को आप की पीठ से हटाया नहीं।②

एक बार आप बाज़ार से गुज़र रहे थे कि मक्का के आवारा लोगों का एक समूह आप के चारों ओर हो गया और रास्ते भर आपकी गर्दन पर थप्पड़ मारता चला गया कि लोगो ! यह वह व्यक्ति है जो कहता है कि मैं नबी हूँ।

आप के घर में आस-पास के घरों से निरन्तर पत्थर फेंके जाते थे। रसोई घर में गन्दी वस्तुएँ फेंकी जाती थीं, जिनमें बकरों और ऊँटों की आंतें

---

①-बुख़ारी जिल्द-1, पृष्ठ-544 अब्वाब बुनियानुलका'बा, मत्बूआ मुजतिबाई

②- बुख़ारी किताबुलस्सलात बाब अलमुज़ात ततरहो मिनल मुसल्ली शैयन मिनल अज़ा।

भी सम्मिलित होती थीं। जब आप नमाज़ पढ़ते तो आप के ऊपर मिट्टी और धूल डाली जाती, यहां तक विवश हो कर आप को चट्टान में निकले हुए एक पत्थर के नीचे छुप कर नमाज़ पढ़ना पड़ती थी, परन्तु ये अत्याचार और ज़ुल्म व्यर्थ नहीं जा रहे। सुशील स्वभाव के लोग इनको देखते तथा उनके हृदय इस्लाम की ओर खिंचे चले जाते थे। एक दिन रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का'बा के निकट 'सफ़ा' पहाड़ी पर बैठे हुए थे कि वहां से आप का सब से बड़ा शत्रु और मक्का का सरदार अबूजहल गुज़रा तो उसने आपको गालियां देना आरम्भ किया। आप उसकी गालियां सुनते रहे और कोई उत्तर न दिया और ख़ामोशी से उठकर अपने घर चले गए। आप के परिवार की एक दासी इस घटना को देख रही थी। सायंकाल के समय आप के चाचा हम्ज़ा[रज़ि.] ने जो एक नितान्त निर्भीक और बहादुर व्यक्ति थे, जिनकी बहादुरी के कारण शहर के लोग उन से भयभीत थे, शिकार खेल कर जंगल से वापस आए तथा कंधे के साथ धनुष लटकाए हुए अकड़ और अभिमान के साथ घर में प्रवेश किया। दासी का हृदय प्रातः के दृश्य से नितान्त दुखी था वह हम्ज़ा[रज़ि.] को इस रूप में देख कर सहन न कर सकी और उन पर व्यंग करते हुए कहा कि तुम बड़े बहादुर बने फिरते हो, हर समय शस्त्र धारण किए रहते हो, परन्तु क्या तुम्हें ज्ञात है कि प्रातः अबू जहल ने तुम्हारे भतीजे से क्या किया। हम्ज़ा[रज़ि.] ने पूछा क्या किया ? उसने वह पूर्ण घटना हम्ज़ा[रज़ि.] के सामने वर्णन कर दी। हम्ज़ा[रज़ि.] यद्यपि मुसलमान न थे परन्तु हृदय में शालीनता थी। इस्लाम की बातें तो सुनी हुई थीं और निश्चित ही उन के हृदय पर उनका प्रभाव भी हो चुका था परन्तु अपने स्वतंत्र जीवन के कारण गंभीरता के साथ उन पर विचार करने का उन्हें अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु इस घटना को सुन कर उनका स्वाभिमान उत्तेजित हो उठा। आँखों से अज्ञानता का पर्दा दूर हो गया और उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि एक बहुमूल्य वस्तु हाथों से निकली जा रही

है। उसी समय घर से बाहर आए और का'बे की ओर गए जो सरदारों की सभा का विशेष स्थान था, अपना धनुष कंधे से उतारा और ज़ोर से अबूजहल के मारा और कहा— सुनो मैं भी मुहम्मद (स.अ.व.) का धर्म स्वीकार करता हूँ। तुम ने प्रातः उसे अकारण गालियां दीं। इसीलिए कि वह आगे से उत्तर नहीं देता। यदि बहादुर हो तो अब मेरी मार का उत्तर दो। यह घटना इतनी अप्रत्याशित थी कि अबू जहल भी घबरा गया, उस के साथी हम्ज़ा से लड़ने को उठे परन्तु हम्ज़ा की बहादुरी का विचार और उन के शक्तिशाली शरीर पर दृष्टि डाल कर अबू जहल ने विचार किया कि यदि लड़ाई आरम्भ हो गई तो इसका परिणाम भयानक निकलेगा। अतः नीति से काम लेते हुए अपने साथियों को यह कह कर रोक दिया कि चलो जाने दो। मैंने वास्तव में इस के भतीजे को बहुत बुरी तरह से गालियां दी थीं।[1]

इस्लाम का सन्देश

जब विरोध ने विकराल रूप धारण कर लिया और इधर रसूले करीम (स.अ.व.) और आप के सहाबा[रज़ि.] (साथियों) ने हर हाल में मक्का वालों को ख़ुदा तआला का यह सन्देश पहुँचाना आरम्भ किया संसार का स्रष्टा (ख़ुदा) एक है उस के अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं। जितने नबी गुज़रे हैं सब एकेश्वरवाद की आस्था रखते थे और अपनी जाति के लोगों को भी इसी शिक्षा पर आचरण करने का आदेश देते थे और उन्हें कहते थे कि तुम एक ख़ुदा पर ईमान लाओ, इन पत्थर की मूर्तियों को छोड़ दो कि यह बिल्कुल व्यर्थ हैं, इनमें कोई शक्ति नहीं। हे मक्का वालो ! क्या तुम देखते नहीं कि इनके सामने जो भेंट और उपहार रखे जाते हैं यदि उन पर मक्खियों का झुण्ड आ बैठे तो वे मूर्तियां उन मक्खियों को उड़ाने की भी

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-99 तथा तिबरी जिल्द-तृतीय, पृष्ठ-1187, लन्दन से प्रकाशित।

शक्ति नहीं रखतीं, यदि कोई उन पर प्रहार करे तो वे अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं, यदि कोई उन से प्रश्न करे तो वे कोई उत्तर नहीं दे सकतीं, यदि कोई उनसे सहायता मांगे तो वे उसकी सहायता नहीं कर सकतीं, परन्तु एक ख़ुदा तो मांगने वालों की आवश्यकता की पूर्ति करता है, प्रश्न करने वालों को उत्तर देता है, सहायता मांगने वालों की सहायता करता है और अपने शत्रुओं को परास्त करता है तथा अपने उपासकों को उच्चस्तरीय उन्नति प्रदान करता है, उससे ज्ञान का प्रकाश आता है जो उसके उपासकों के हृदयों को प्रकाशित कर देता है फिर तुम क्यों ऐसे ख़ुदा को छोड़ कर निष्प्राण मूर्तियों के आगे नतमस्तक होते हो तथा अपनी आयु नष्ट कर रहे हो? तुम देखते नहीं कि ख़ुदा तआला के एकेश्वरवाद को त्याग कर तुम्हारे विचार और तुम्हारे हृदय भी अपवित्र हो गए हैं। तुम भांति-भांति की भ्रामक शिक्षाओं में ग्रस्त हो, वैध और अवैध (हलाल और हराम) में अन्तर करने का विवेक नहीं रहा, अच्छे और बुरे के भेद को पहचान नहीं सकते, अपनी माताओं का अपमान करते हो, अपनी बहनों और बेटियों पर अत्याचार करते हो, उन के अधिकारों का हनन करते हो, अपनी पत्नियों से तुम्हारा व्यवहार सर्वथा अनुचित है, अनाथों का अधिकार छीनते हो, विधवाओं से दुर्व्यवहार करते हो, ग़रीबों और असहायों पर अन्याय करते हो, दूसरों का अधिकार छीन कर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हो, झूठ और छल-कपट से तुम्हें लज्जा नहीं, चोरी और लूटमार से तुम्हें घृणा नहीं, जुआ और मदिरा तुम्हारा धंधा है, ज्ञान-प्राप्ति और जन-सेवा की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं। एक ख़ुदा की ओर से कब तक विमुख रहोगे? आओ ! और अपना सुधार करो तथा अत्याचार त्याग दो, प्रत्येक हक़दार को उसका हक़ दो। ख़ुदा ने यदि माल दिया है तो देश और जाति की सेवा तथा असहायों और ग़रीबों के उत्थान के लिए उसे ख़र्च करो, स्त्रियों का सम्मान करो तथा उनके अधिकारों को अदा करो, अनाथों को

ख़ुदा तआला की अमानत समझो तथा उनकी देखभाल को महान कल्याण समझो, विधवाओं का आश्रय बनो, शुभकर्मों और संयम को जीवन का आभूषण बनाओ न्याय और इन्साफ ही नहीं अपितु दया और उपकार को अपना आचरण बनाओ। तुम्हारा इस संसार में आना व्यर्थ नहीं जाना चाहिए, अपने पीछे अच्छे आदर्श छोड़ो ताकि शाश्वत नेकी का बीजारोपण हो, अधिकार प्राप्ति, प्राप्ति में नहीं अपितु तप-त्याग और अपरिग्रह में वास्तविक सम्मान है।

अतः तुम क़ुर्बानी करो, ख़ुदा की निकटता प्राप्त करो, परहिताय त्याग का आदर्श प्रस्तुत करो ताकि ख़ुदा तआला के यहाँ तुम्हारे स्वत्व की रक्षा हो। निःसंदेह हम दुर्बल हैं, परन्तु हमारी दुर्बलता को न देखो। ख़ुदा के दरबार में सत्य के राज्य की स्थापना का निर्णय हो चुका है। अब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के द्वारा इन्साफ़ का तराज़ू रखा जाएगा तथा न्याय और दया के शासन की स्थापना की जाएगी। जिसमें किसी पर अन्याय न होगा, धर्म के संबंध में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, स्त्रियों और दासों पर जो अत्याचार होते रहे हैं वे मिटा दिए जाएँगे तथा शैतानी शासन के स्थान पर एक ख़ुदा का शासन होगा।

अबूतालिब के पास मक्का के काफ़िरों की शिकायत और हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) का दृढ़संकल्प

मक्का वालों को जब ये शिक्षाएँ बार-बार सुनाई जाने लगीं तो एक दिन मक्का के सरदार लोग एकत्र होकर आप के चाचा अबूतालिब के पास आए और उन से कहा कि आप हमारे सरदार हैं तथा आपके कारण हमने आपके भतीजे मुहम्मद (स.अ.व.) को कुछ नहीं कहा। अब समय आ गया है कि आप के साथ हम अन्तिम निर्णय करें। या तो आप उसे समझाएँ और उस से पूछें कि वास्तव में वह हम से चाहता क्या है। यदि

उसकी इच्छा सम्मान प्राप्त करने की है तो हम उसे अपना सरदार बनाने के लिए तैयार हैं, यदि वह धन का इच्छुक है तो हम में प्रत्येक व्यक्ति अपने धन का कुछ भाग उसे देने के लिए तैयार है, यदि उसे विवाह की अभिलाषा है तो मक्का की प्रत्येक लड़की जो उसे पसन्द हो उसका नाम ले हम उस से उस का विवाह कराने के लिए तैयार है। हम उसके बदले में उस से कुछ नहीं चाहते और न ही किसी अन्य बात से रोकते हैं। हम केवल इतना चाहते हैं कि वह हमारी मूर्तियों को बुरा कहना छोड़ दे। वह निःसंदेह कहे कि ख़ुदा एक है, परन्तु यह न कहे कि हमारी मूर्तियाँ बुरी हैं। यदि वह इतनी बात स्वीकार कर ले तो हमारी उसकी मैत्री हो जाएगी। आप उसे समझाएं तथा हमारे प्रस्ताव के स्वीकार करने पर तैयार करें अन्यथा फिर दो बातों में से एक होगी— या आप को अपना भतीजा छोड़ना पड़ेगा या आपकी जाति आप की सरदारी से इन्कार करके आप को छोड़ देगी। अबू तालिब को यह बात नितान्त असहनीय थी। अरबों के पास रुपया-पैसा तो थोड़ा ही होता था, उनकी समस्त प्रसन्नता उनकी सरदारी में होती थी। सरदार जाति के लिए जीवित रहते थे और जाति सरदारों के लिए जीवित रहती थी। अबू तालिब यह बात सुनकर व्याकुल हो गए। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को बुलवाया और कहा— हे मेरे भतीजे ! मेरी जाति के लोग मेरे पास आए हैं और उन्होंने मुझे यह सन्देश दिया है और साथ ही उन्होंने मुझे यह भी कह दिया है कि यदि तुम्हारा भतीजा इन बातों में से किसी एक बात पर भी सहमत न हो जबकि हमारी ओर से हर प्रकार के प्रस्ताव रखे जा चुके हैं, यदि वह इस पर भी अपने मार्ग से नहीं हटता तो आप का काम है कि उसे छोड़ दें और यदि आप उसे छोड़ने के लिए तैयार न हों तो फिर हम लोग आपकी सरदारी से इन्कार करके आपको छोड़ देंगे। जब अबू तालिब ने यह बात की तो उनकी आँखों में आँसू आ गए, उनके आँसुओं को देखकर रसूल करीम

(स.अ.व.) की आँखों में भी आँसू आ गए तथा आप ने फ़रमाया— हे मेरे चाचा ! मैं यह नहीं कहता कि आप अपनी जाति को छोड़ दें और मेरा साथ दें आप निःसंदेह मेरा साथ छोड़ दें और अपनी जाति के साथ मिल जाएँ परन्तु मुझे उस एक ख़ुदा की सौगन्ध है कि यदि सूर्य को मेरे दाएँ और चन्द्रमा को मेरे बाएँ लाकर खड़ा कर दें तब भी मैं अपने ख़ुदा के एकेश्वरवाद का उपदेश देने से रुक नहीं सकता। मैं अपने कार्य में कार्यरत रहूँगा जब तक कि ख़ुदा मुझे मृत्यु न दे दे। आप अपना हित स्वयं देख लें। यह ईमान और निष्कपटता से परिपूर्ण उत्तर अबू तालिब के नेत्र खोलने के लिए पर्याप्त था। उन्होंने समझ लिया कि यद्यपि मुझे ईमान लाने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उस ईमान का दृश्य देखने का सामर्थ्य प्राप्त होना सब दौलतों से बड़ी दौलत है। आपने कहा— हे मेरे भतीजे ! जा और अपना कर्त्तव्य पालन करता रह। यदि मेरी जाति मुझे छोड़ना चाहती है तो निःसंदेह छोड़ दे। मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।①

हबशा की ओर प्रवास (हिजरत)

जब मक्का वालों का अत्याचार चरम सीमा को पहुँच गया तो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने एक दिन अपने साथियों को बुलाया और फ़रमाया— पश्चिम की ओर समुद्र पार एक देश है जहाँ ख़ुदा की उपासना के कारण अन्याय नहीं किया जाता, धर्म परिवर्तन के कारण लोगों का वध नहीं किया जाता। वहाँ एक न्यायप्रिय राजा है। तुम लोग प्रवास करके वहाँ चले जाओ कदाचित तुम्हारे लिए सुगमता का मार्ग निकल आए। कुछ मुसलमान पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे आपके आदेश पर एबीसीनिया की ओर चले गए। इन लोगों का मक्का से निकलना कोई साधारण बात न थी। मक्का के लोग स्वयं को का'बा का न्यासी (TRUSTEE) समझते थे तथा

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-88 तथा तिबरी

उनके लिए मक्का से बाहर चला जाना एक असहनीय आघात था। यह बात वही व्यक्ति कह सकता था जिसके लिए संसार में अन्य कोई ठिकाना शेष न रहे। अतः इन लोगों के लिए निकलना नितान्त हृदय विदारक घटना थी। फिर इन लोगों का निकलना भी गुप्त रूप से हुआ, क्योंकि वे जानते थे कि यदि मक्का वालों को मालूम हो गया तो वे हमें निकलने नहीं देंगे। इस कारण वे अपने परिजनों और प्रियजनों की अन्तिम भेंट से भी वंचित हो कर जा रहे थे, उनके हृदयों की जो दशा थी वह तो थी ही, उनको देखने वाले भी उनकी पीड़ा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। अतः जिस समय यह काफ़िला निकल रहा था, हज़रत उमर[रज़ि.] जो उस समय एक काफ़िर तथा इस्लाम के कट्टर शत्रु थे और मुसलमानों को कष्ट पहुँचाने वालों में से सर्वप्रमुख व्यक्ति थे। संयोगवश उस क़ाफ़िले के कुछ लोगों को मिल गए। उनमें एक सहाबिया उम्मे अब्दुल्लाह नामक भी थीं। बंधे हुए सामान और तैयार सवारियों को जब आप ने देखा तो आप समझ गए कि ये लोग मक्का छोड़ कर जा रहे हैं। आपने कहा उम्मे अब्दुल्लाह ये तो प्रवास के सामान दिखाई दे रहे हैं। उम्मे अब्दुल्लाह कहती हैं— मैंने उत्तर में कहा— हाँ ख़ुदा की सौगन्ध हम किसी अन्य देश में चले जाएँगे, क्योंकि तुम ने हमें बहुत दुःख दिए हैं और बहुत अत्याचार किए हैं। हम उस समय तक अपने देश में नहीं लौटेंगे जब तक ख़ुदा तआला हमारे लिए कोई साधन पैदा न कर दे। उम्मे अब्दुल्लाह वर्णन करती हैं कि उमर[रज़ि.] ने कहा— अच्छा ख़ुदा तुम्हारे साथ हो और मैंने उनके स्वर में हृदय की आर्द्रता महसूस की जो इससे पहले मैंने कभी महसूस नहीं की थी, फिर वह बड़ी शीघ्रता से मुख फेर कर चले गए। मैंने महसूस किया कि इस दृश्य से उनकी तबियत नितान्त संतप्त हो गई है। जब इन लोगों के प्रवास की सूचना मक्का वालों को मिली तो उन्होंने इनका पीछा किया और समुद्र तक इन के पीछे गए, परन्तु लोगों के समुद्र तक पहुँचने से पूर्व ही वह

क़ाफ़िला हबशा की ओर कूच कर चुका था, परन्तु जब मक्का वालों को यह मालूम हुआ तो उन्होंने निर्णय किया कि एक प्रतिनिधि मंडल हबशा के राजा के पास भेजा जाए जो उसे मुसलमानों के विरुद्ध भड़काए और उसे प्रेरित करे कि वह मुसलमानों को मक्का वालों के सुपुर्द कर दे। ताकि वे उन्हें उनकी इस धृष्टता का दण्ड दें। इस प्रतिनिधिमंडल में उमर बिन अलआस भी थे जो बाद में मुसलमान हो गए थे तथा मिस्र उन्हीं के द्वारा विजय हुआ था। यह प्रतिनिधिमंडल हबशा गया और राजा से मिला, सरदारों और साहित्कारों को इन्होंने ख़ूब उकसाया, परन्तु अल्लाह तआला ने हबशा के राजा के हृदय को दृढ़निश्चयी बना दिया था। उसने इन लोगों के तथा दरबारियों के आग्रह के बावजूद मुसलमानों को काफ़िरों के सुपुर्द करने से इन्कार कर दिया। जब वह प्रतिनिधिमंडल असफल वापस आया तो मक्का वालों ने इन मुसलमानों को बुलाने के लिए एक अन्य उपाय सोचा और वह यह कि हबशा जाने वाले कुछ क़ाफ़िलों में एक समाचार फैला दिया कि मक्का के सब लोग मुसलमान हो गए हैं। जब यह समाचार हबशा पहुँचा तो अधिकांश मुसलमान प्रसन्नता से मक्का की ओर वापस लौटे, परन्तु उन्हें मक्का पहुँच कर ज्ञात हुआ कि यह समाचार मात्र हानि पहुँचाने की भावना से फैलाया गया था तथा इसमें कोई वास्तविकता न थी। इस पर कुछ लोग तो वापस हबशा चले गए और कुछ मक्का में ठहर गए। इन मक्का में ठहरने वालों में उसमान बिन मज़ऊन भी थे जो मक्का के एक बहुत बड़े सरदार के बेटे थे। इस बार उन के पिता के एक मित्र वलीद बिन मुग़ीरह ने उन्हें शरण दी और वह अमन से मक्का में रहने लगे, परन्तु इस अवधि में उन्होंने देखा कि कुछ अन्य मुसलमानों को दुःख दिए जाते हैं तथा उन्हें कठोर यातनाएँ दी जाती हैं। चूंकि वह स्वाभिमानी नौजवान थे वलीद के पास गए और उसे कह दिया कि मैं आप की शरण को वापस करता हूँ; क्योंकि मुझ से नहीं देखा जाता कि दूसरे मुसलमान

यातनाएँ सहन करें और मैं आराम से रहूँ। अतः वलीद ने घोषणा कर दी कि उस्मान अब मेरी शरण में नहीं। इसके पश्चात् एक दिन लबीद अरब का प्रसिद्ध कवि मक्का के सरदारों में बैठा अपने शे'र सुना रहा था कि उस ने शे'र का एक भाग पढ़ा —

كُلُّ نَعِيْمٍ لَا مَحَالَةَ زَائِلٌ

जिसका अर्थ यह है कि प्रत्येक ने'मत अन्ततः नष्ट हो जाने वाली है। उसमान[रज़ि.] ने कहा— यह ग़लत है स्वर्ग की ने'मतें हमेशा स्थिर रहेंगी। लबीद एक बड़ा आदमी था, यह उत्तर सुनकर आक्रोश में आ गया तथा उसने कहा— हे क़ुरैश के लोगो ! तुम्हारे अतिथि को तो पहले इस प्रकार अपमानित नहीं किया जा सकता था अब यह नई रीति कब से प्रारम्भ हुई है। इस पर एक व्यक्ति ने कहा कि यह एक मूर्ख व्यक्ति है इसकी बात की परवाह न करें। हज़रत उसमान ने अपनी बात पर आग्रह किया और कहा कि मूर्खता की क्या बात है, मैंने जो बात कही है वह सत्य है। इस पर उस व्यक्ति ने उठ कर आप के मुख पर इतने ज़ोर से घूँसा मारा कि आप की एक आँख बाहर निकल गई। वलीद उस समय उस सभा में बैठा हुआ था। उसमान के पिता के साथ उस की घनिष्ठ मित्रता थी। अपने स्वर्गीय मित्र के बेटे की यह दशा उस से देखी न गई, परन्तु मक्का की प्रथा के अनुसार जब उसमान उसकी शरण में नहीं थे तो वह उनकी सहायता भी नहीं कर सकता था। अतः और कुछ तो न कर सका, नितान्त दुःख से उसमान ही को सम्बोधित करके बोला हे मेरे भाई के बेटे! ख़ुदा की सौगन्ध तेरी यह आँख इस आघात से सुरक्षित रह सकती थी जब कि तू एक शक्तिशाली सुरक्षा में था (अर्थात् मेरी शरण में था) परन्तु तूने स्वयं ही उस शरण को छोड़ दिया और यह दिन देखा। उसमान ने उत्तर में कहा मेरे साथ जो कुछ हुआ है मैं स्वयं उसका अभिलाषी था। तुम मेरी फूटी हुई आँख पर शोक कर रहे हो, हालांकि मेरी स्वस्थ आँख इस बात के लिए तड़प रही है

कि जो मेरी बहन के साथ हुआ है वही मेरे साथ क्यों नहीं होता। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का आदर्श मेरे लिए पर्याप्त है। यदि वह कष्ट उठा रहे हैं तो मैं क्यों न उठाऊँ। मेरे लिए ख़ुदा की सहायता पर्याप्त है।

हज़रत उमर[रज़ि.] का इस्लाम स्वीकार करना

उसी युग में मक्का में एक घटना हुई जिसने मक्का में सनसनी फैला दी और वह घटना इस प्रकार हुई कि उमर जो बाद में इस्लाम के दूसरे ख़लीफ़ा हुए और जो इस्लाम के प्रारम्भिक युग में कट्टर शत्रुओं में से थे। एक दिन बैठे-बैठे उनके हृदय में यह विचार पैदा हुआ कि इस समय तक इस्लाम को मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न किए गए हैं परन्तु सफलता नहीं मिली। क्यों न इस्लाम के प्रवर्तक का ही काम तमाम करके इस झंझट का ही हमेशा के लिए अन्त कर दिया जाए!! यह विचार आते ही तलवार उठाई और घर से निकल पड़े और आंहज़रत (स.अ.व.) को खोजने लगे। मार्ग में उनका मित्र मिला और उन्हें इस अवस्था में देखकर कुछ आश्चर्यचकित हुआ और आप से प्रश्न किया कि उमर कहाँ जा रहे हो? उमर ने कहा— मैं मुहम्मद (स.अ.व.) को मारने के लिए जा रहा हूँ। उसने कहा तुम मुहम्मद (स.अ.व.) का वध करके मुहम्मद (स.अ.व.) के क़बीले से सुरक्षित रह सकोगे ? पहले अपने घर की तो ख़बर लो। तुम्हारी बहन और बहनोई दोनों मुसलमान हो चुके हैं। यह समाचार हज़रत उमर के सर पर बिजली की भांति गिरा। उन्होंने सोचा मैं जो इस्लाम का कट्टर शत्रु हूँ, मैं जो मुहम्मद (स.अ.व.) को मारने के लिए जा रहा हूँ और मेरी ही बहन और मेरा ही बहनोई इस्लाम स्वीकार कर चुके हैं। यदि ऐसा है तो पहले मुझे अपनी बहन और बहनोई से निपटना चाहिए। यह सोचते हुए वह अपनी बहन के घर की ओर चल पड़े। जब वह द्वार पर पहुँचे तो उन्हें अन्दर से सुरीली आवाज़ में किसी पवित्र वाणी के पढ़ने की आवाज़ें आईं।

यह पढ़ने वाले ख़ुबाब[रज़ि.] थे जो उनकी बहन और बहनोई को क़ुर्आन करीम सिखा रहे थे। उमर ने तेज़ी से घर में प्रवेश किया। उनके पैरों की आहट सुन कर ख़ुबाब[रज़ि.] तो किसी कोने में छुप गए तथा उनकी बहन ने जिनका नाम फ़ातिमा था क़ुर्आन करीम के वे पन्ने जो उस समय पढ़े जा रहे थे छुपा दिए। हज़रत उमर ने जब कमरे में प्रवेश किया तो क्रोध से पूछा। मैंने सुना है कि तुम अपने धर्म से विमुख हो गए हो और यह कह कर अपने बहनोई पर जो उनके चाचा के बेटे भी थे आक्रमण कर बैठे। फ़ातिमा[रज़ि.] ने जब देखा कि उनके भाई उमर[रज़ि.] उनके पति पर आक्रमण करने लगे हैं तो वह दौड़कर अपने पति के आगे खड़ी हो गईं। उमर[रज़ि.] हाथ उठा चुके थे उनका हाथ ज़ोर से उनके बहनोई के मुख की ओर जा रहा था और अब उस हाथ को रोकना उनकी शक्ति से बाहर था। परन्तु अब उनके हाथ के सामने उनके बहनोई की बजाए उनकी बहन का चेहरा था। उमर[रज़ि.] का हाथ ज़ोर से फ़ातिमा[रज़ि.] के चेहरे पर पड़ा और फ़ातिमा[रज़ि.] की नाक से रक्त की धारा बहने लगी। फ़ातिमा[रज़ि.] ने मार तो सहन कर ली परन्तु निडरतापूर्वक कहा— उमर ! यह सत्य है कि हम मुसलमान हो चुके हैं और याद रखिए कि हम अपने उस धर्म को नहीं छोड़ सकते। आप से जो कुछ हो सकता है कर लें। उमर[रज़ि.] एक बहादुर व्यक्ति थे। अत्याचार ने उनकी बहादुरी को मिटा नहीं दिया था। एक स्त्री और फिर अपनी बहन को अपने ही हाथ से घायल देखा तो लज्जा और शर्म से घड़ों पानी पड़ गया, बहन के चेहरे से रक्त बह रहा था और अब उमर[रज़ि.] के हृदय से उन का क्रोध दूर हो चुका था, अपनी बहन से क्षमा माँगने की इच्छा प्रबल होती जा रही थी अन्य तो कोई बहाना न सूझा, बहन से बोले अच्छा ! लाओ मुझे वह वाणी तो सुनाओं जो तुम लोग अभी पढ़ रहे थे। फ़ातिमा[रज़ि.] ने कहा मैं नहीं दिखाऊँगी क्योंकि आप उन पन्नों को नष्ट कर देंगे। उमर[रज़ि.] ने कहा नहीं बहन मैं ऐसा नहीं करूँगा। फ़ातिमा[रज़ि.] ने कहा

आप तो अपवित्र हैं। पहले स्नान करें।

फिर दिखाऊँगी। उमर[रज़ि.] अतीव लज्जा के कारण सब कुछ करने के लिए तैयार थे, वह स्नान करने पर भी सहमत हो गए। जब स्नान करके वापस आए तो फ़ातिमा ने उनके हाथ में क़ुर्आन करीम के पन्ने दे दिए। ये क़ुर्आन करीम के पन्ने सूरह 'ताहा' की कुछ आयतें थीं। जब वह उसे पढ़ते हुए इस आयत पर पहुँचे —

اِنَّنِیۡۤ اَنَا اللّٰہُ لَاۤ اِلٰہَ اِلَّاۤ اَنَا فَاعۡبُدۡنِیۡ ۙ وَ اَقِمِ الصَّلٰوۃَ لِذِکۡرِیۡ اِنَّ السَّاعَۃَ اٰتِیَۃٌ

اَکَادُ اُخۡفِیۡہَا لِتُجۡزٰی کُلُّ نَفۡسٍۭ بِمَا تَسۡعٰی

(सूरह — ताहा 15-16)

निश्चय ही मैं अल्लाह हूँ, मेरे सिवा अन्य कोई उपास्य नहीं। अत: हे सम्बोध्य ! मेरी उपासना कर और नमाज़ पढ़ और अपने दूसरे साथियों के साथ मिलकर मेरी उपासना को शाश्वत स्थिर रूप दे। परम्परागत ही उपासना नहीं अपितु मेरी बड़ाई को संसार में स्थापित करने वाली उपासना। स्मरण रख कि इस वाणी को स्थापित करने वाली घड़ी आ रही है। मैं उसे प्रकट करने के साधन पैदा कर रहा हूँ जिनका परिणाम यह होगा कि प्रत्येक प्राण को जैसे-जैसे वह कार्य करता है उसके अनुसार बदला मिल जाएगा।

हज़रत उमर[रज़ि.] जब इस आयत पर पहुँचे तो सहसा उनके मुख से निकल गया कि यह कैसा अद्‌भुत और पवित्र कलाम है। ख़ुबाब[रज़ि.] ने जब ये शब्द सुने तो वह उस स्थान से जहाँ वह छुपे हुए थे बाहर निकल आए और कहा कि रसूले करीम (स.अ.व.) की दुआ का ही परिणाम है। मुझे ख़ुदा की सौगन्ध मैंने कल ही आप को यह दुआ करते सुना था कि हे मेरे ख़ुदा ! उमर बिन खत्ताब या उमर बिन-हिशाम में से किसी एक का इस्लाम की ओर अवश्य मार्ग-दर्शन कर। उमर[रज़ि.] खड़े हो गए और कहा

मुझे बताओ कि मुहम्मद (स.अ.व.) कहाँ हैं। जब आप को बताया गया कि आप 'दारे अरक़म' में रहते हैं तो आप उसी प्रकार नंगी तलवार लिए हुए वहाँ पहुँचे और द्वार खटखटाया। सहाबा ने द्वार की दराड़ों में से देखा तो उन्हें उमर नंगी तलवार लिए खड़े दिखाई दिए। वे डरे कि कहीं ऐसा न हो कि द्वार खोल दें तो उमर अन्दर आकर कोई उत्पात करें, परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— हुआ क्या? द्वार खोल दो। उमर ने उसी प्रकर तलवार लिए अन्दर प्रवेश किया। रसूले करीम (स.अ.व.) आगे बढ़े और फ़रमाया— उमर ! किस इरादे से आए हो ? उमर ने कहा हे अल्लाह के रसूल ! मैं मुसलमान होने आया हूँ। रसूले करीम (स.अ.व.) ने यह सुन कर ऊँचे स्वर में कहा अल्लाहो अकबर अर्थात् अल्लाह सब से महान है और आप के सब साथियों ने भी यही शब्द ज़ोर से दोहराए, यहाँ तक कि मक्का की पहाड़ियाँ गूंज उठीं और थोड़ी देर में यह ख़बर मक्का में दवानल की भांति फैल गई। तदुपरान्त उमर[रज़ि.] से भी वही कठोरता का व्यवहार आरम्भ हो गया जो पहले अन्य सहाबा[रज़ि.] से होता था, परन्तु वही उमर[रज़ि.] जो पहले मारने और वध करने में आनन्द लेते थे अब मार खाने और पीटे जाने में आनन्द प्राप्त करने लगे। अतः स्वयं उमर[रज़ि.] का बयान है कि ईमान लाने के पश्चात् मक्का की गलियों में मारें ही खाता रहता था।

मुसलमानों का सामाजिक बहिष्कार

निष्कर्ष यह कि अत्याचार अब सीमा से बाहर होते जा रहे थे। कुछ लोग मक्का से पलायन कर चुके थे और जो शेष थे वे पहले से भी अधिक अत्याचारों का शिकार होने लगे थे, परन्तु अत्याचारियों के हृदय अभी शान्त न हुए थे। जब उन्होंने देखा कि हमारे पहले अत्याचारों से मुसलमानों के हृदय नहीं टूटे, उनके ईमानों में डगमगाहट पैदा नहीं हुई अपितु वे एक ख़ुदा की उपासना में और भी अधिक बढ़ गए और बढ़ते चले जा रहे हैं

तथा मूर्तियों से उनकी घृणा उन्नति करती जा रही है तो उन्होंने एक परामर्श समिति का गठन किया और यह निर्णय कर दिया कि मुसलमानों का पूर्णतया बहिष्कार किया जाए। कोई व्यक्ति उनके किसी प्रकार के सौदे का क्रय-विक्रय न करे और न ही किसी प्रकार के लेन-देन का संबंध रखे। उस समय मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) कुछ अनुयायियों और उनके परिवार के लोगों सहित और कुछ ऐसे परिजनों के साथ जो मुसलमान न होने के बावजूद आप[स.] का साथ छोड़ने के लिए तैयार न थे, एक पृथक स्थान में जो अबू तालिब के अधिकार में था शरण लेने पर विवश हुए①। उन लोगों के पास जीवन-यापन की सामग्री का कोई भण्डार अथवा धन-दौलत कुछ भी न था जिसके सहारे वे जीवित रहते। वे इस दरिद्रता के समय में जिन परिस्थितियों से गुज़रे होंगे अन्य मनुष्य के लिए उनका अनुमान लगाना संभव नहीं। लगभग तीन वर्ष तक ये परिस्थितियां यथावत् रहीं और मक्का के कथित बहिष्कार के निर्णय में कोई ढील न दी गई। लगभग तीन वर्ष के पश्चात मक्का के पाँच सभ्य लोगों के हृदय में इस अत्याचार के विरुद्ध भावना पैदा हुई। वे शा'ब अबी तालिब के द्वार पर गए और उन घेराबन्द लोगों को आवाज़ देकर कहा कि वे बाहर निकलें और यह कि वे इस प्रतिज्ञा-पत्र को भंग करने के लिए बिल्कुल तैयार हैं। अबू तालिब जो इस लम्बी घेराबन्दी और निराहार रहने के कारण बहुत कमज़ोर हो रहे थे बाहर आए और अपनी जाति को सम्बोधित करके भर्त्सना की कि उनकी यह लम्बी घेराबन्दी किस प्रकार उचित हो सकती है। उन पाँच सभ्य लोगों का द्रोह तुरन्त बिजली की भांति नगर में फैल गया। मानवता ने फिर सर उठाना आरम्भ किया, नेकी की भावना ने पुनः एक बार साँस ली और मक्का के लोग इस शैतानी निर्णय को भंग करने पर विवश हो गए। निर्णय तो समाप्त हो गया, परन्तु तीन वर्षीय निराहार रहने ने अपना

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-130 तथा ज़रक़ानी जिल्द-द्वितीय, पृष्ठ-279

प्रभाव दिखाना आरम्भ किया। थोड़े ही दिनों में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की वफ़ादार पत्नी हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] का इन बहिष्कार के दिनों में कष्टों के परिणामस्वरूप स्वर्गवास हो गया और उसके एक माह पश्चात् अबू तालिब भी इस संसार से परलोक सिधार गए।

हज़रत ख़दीजा और अबू तालिब के मृत्योपरान्त प्रचार में बाधाएँ और मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की तायफ़-यात्रा

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और आप के सहाबा अब अबूतालिब के परस्पर मेल-मिलाप रखने वाले प्रभाव से वंचित हो गए तथा मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की पारिवारिक जीवन-संगिनी हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] भी आप को वियोगग्रस्त छोड़ गईं। इन दोनों के निधन से उन लोगों की सहानुभूति भी आप और आपके सहाबा[रज़ि.] से स्वाभाविक तौर पर कम हो गई जो उन के संबंधों के कारण अत्याचारियों को अत्याचार से रोकते रहते थे। अबू-तालिब के निधन के ताज़ा आघात के कारण, अबूतालिब की वसीयत के अनुसार आप के कट्टर शत्रु अबू तालिब के छोटे भाई अबूलहब ने कुछ दिन आपका साथ दिया परन्तु जब मक्का वालों ने उसकी भावनाओं को यह कहकर उत्तेजित किया कि मुहम्मद (स.अ.व.) तो उन समस्त लोगों को जो एकेश्वरवाद को स्वीकार नहीं करते अपराधी और दण्डनीय समझता है। अत: अपने पूर्वजों के लिए स्वाभिमान के जोश में अबू लहब ने आपका साथ छोड़ दिया और प्रण किया कि वह भविष्य में पहले से भी बढ़कर आप का विरोध करने पर कटिबद्ध रहेगा। घेराबन्दी में जीवन गुज़ारने के कारण चूंकि तीन वर्ष तक लोग अपने परिजनों से पृथक रहे थे इस लिए संबंधों में शिथिलता आ गई थी। मक्का वाले

मुसलमानों से बोलचाल समाप्त करने के अभ्यस्त हो चुके थे, इसलिए प्रचार का मैदान सीमित हो गया था। रसूले करीम (स.अ.व.) ने जब यह दशा देखी तो आप ने निर्णय किया कि वे मक्का के स्थान पर तायफ़ के लोगों के पास जाकर उन्हें इस्लाम का निमन्त्रण दें। आप[स.] यह विचार ही कर रहे थे कि मक्का वालों के विरोध ने इस इरादे को और भी दृढ़ कर दिया। प्रथम तो मक्का वाले बात सुनते ही नहीं थे दूसरे अब उन्होंने यह दिनचर्या बना ली कि मुहम्मद (स.अ.व.) को गलियों में चलने ही न दें। जब आप बाहर निकलते, आप के सर पर मिट्टी फेंकी जाती ताकि आप लोगों से मिल ही न सकें। एक बार इसी अवस्था में वापस लौटे तो आपकी एक बेटी आपके सर से मिट्टी झाड़ते हुए रोने लगी। आप (स.अ.व.) ने फ़रमाया— हे मेरी बेटी ! मत रो, क्योंकि ख़ुदा निःसंदेह तुम्हारे पिता के साथ है[1]। आप कष्टों से नहीं घबराते थे परन्तु कठिनाई यह थी कि लोग बात सुनने के लिए तैयार न थे। जहाँ तक कष्टों का प्रश्न है आप उन्हें आवश्यक समझते थे अपितु आप के लिए सर्वाधिक कष्ट का दिन तो वह होता था जब कोई व्यक्ति आप को कष्ट नहीं देता था। लिखा है कि एक दिन मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मक्का की गलियों में प्रचार के लिए निकले, परन्तु उस दिन किसी योजनानुसार किसी एक व्यक्ति ने भी आप से बात न की और न आप को किसी प्रकार का कोई कष्ट दिया, न किसी दास ने न किसी आज़ाद ने। अतः नबी करीम (स.अ.व.) इस आघात और मनस्ताप से ख़ामोशी के साथ लेट गए, यहाँ तक कि ख़ुदा तआला ने आपको सांत्वना दी और फ़रमाया— जाओ और अपनी जाति को पुनः, पुनः और पुनः सावधान करो तथा उनकी लापरवाही पर ध्यान न दो। अतः रसूले करीम (स.अ.व.) को यह बात बुरी नहीं लगती थी कि लोग आपको कष्ट देते थे, परन्तु ख़ुदा का नबी जो संसार का मार्ग-दर्शन करने के लिए

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-145

भेजा गया था। वह इस बात को कब सहन कर सकता था कि लोग उस से बात ही न करें तथा उसकी बात सुनने के लिए तैयार ही न हों। ऐसा निरर्थक जीवन उसके लिए सर्वाधिक कष्टप्रद था। अतः आपस॰ ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब आप तायफ़ की ओर जाएँगे और तायफ़ के लोगों को ख़ुदा तआला का सन्देश पहुँचाएँगे तथा ख़ुदा तआला के नबियों के लिए यही अभीष्ट होता है कि वे इधर से उधर भिन्न-भिन्न जातियों को सम्बोधित करते फिरें। हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम के साथ भी ऐसा ही हुआ। कभी वह फिरऔन की जाति को सम्बोधन करते तो कभी इस्हाक़ की जाति को और कभी मदयन के लोगों को। हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम को भी प्रचार की रुचि में कभी जलील के लोगों को सम्बोधित करना पड़ता और कभी यरदुन पार के लोगों को, कभी यरुश्लम के लोगों और कभी अन्य लोगों को सम्बोधित करना पड़ा। जब मक्का के लोगों ने बातें सुनने से ही इन्कार कर दिया और यह निर्णय कर लिया कि मारो-पीटो परन्तु बात बिल्कुल न सुनो तो आप ने तायफ़ की ओर ध्यान दिया। तायफ़ मक्का से लगभग साठ मील की दूरी पर दक्षिण-पूरब में एक नगर है, जो अपने फलों और अपनी खेती के कारण प्रसिद्ध है। यह शहर मूर्ति-पूजा में मक्का वालों से कुछ कम न था। का'बा में रखी मूर्तियों के अतिरिक्त 'लात' नामक एक प्रसिद्ध मूर्ति तायफ़ की ख्याति का कारण थी। जिसके दर्शनार्थ अरब के लोग दूर-दूर से आते थे। तायफ़ के लोगों की मक्का में बहुत सी रिश्तेदारियाँ भी थीं तथा तायफ़ और मक्का के मध्य कई हरे-भरे स्थानों में मक्का वालों की सम्पत्तियाँ (जायदादें) भी थीं। जब आप तायफ़ पहुँचे तो वहाँ के सरदार आप से मिलने के लिए आने लगे, परन्तु कोई व्यक्ति सत्य को स्वीकार करने कि लिए तैयार न हुआ। जनसाधारण ने भी अपने सरदारों का अनुसरण किया तथा ख़ुदा के सन्देश को तिरस्कार की दृष्टि से देखा भौतिक वादियों की दृष्टि से देखा। भौतिक वादियों की दृष्टि

में साधन तथा निस्सहाय नबी तिरस्कृत ही हुआ करते हैं। वे सांसारिक लोग तो शस्त्रों और सेनाओं की आवाज़ को ही सुनना जानते हैं। आप के संबंध में बातें तो पहुँच ही चुकी थीं। जब आप तायफ़ पहुँचे और वहाँ के लोगों ने देखा कि आप के साथ कोई सेना या दल होता ! इसके स्थान पर आप (स.अ.व.) केवल ज़ैद के साथ तायफ़ के प्रसिद्ध क्षेत्रों में प्रचार करते फिरते हैं तो हृदय के अन्धों ने अपने सामने ख़ुदा का नबी नहीं अपितु एक तिरस्कृत और हीन व्यक्ति पाया और समझे कि कदाचित् इसे सताना और कष्ट पहुँचाना जाति के सरदारों की दृष्टि में हमें सम्मानित कर देगा। वे एक दिन एकत्र हुए और अपने साथ कुत्ते लिए, लड़कों को उकसाया तथा अपनी झोलियाँ पत्थरों से भर लीं और बड़ी निर्दयता से रसूले करीम (स.अ.व.) पर पथराव आरम्भ किया, वे रसूले करीम (स.अ.व.) को शहर से ढकेलते हुए बाहर ले गए। आप के पैर लहू-लुहान हो गए तथा ज़ैद आप को बचाते-बचाते बहुत घायल हो गए, परन्तु अत्याचारियों का हृदय शान्त न हुआ, वे आप के पीछे चलते गए, चलते गए यहाँ तक कि आप शहर से कई मील दूर की पहाड़ियों तक पहुँच गए। उन्होंने आप का पीछा न छोड़ा। जब ये लोग आप का पीछा कर रहे थे तो आप इस भय से कि ख़ुदा का आक्रोश उन पर न भड़क उठे आकाश की ओर दृष्टि उठा कर देखते और नितान्त आर्द्रतापूर्वक दुआ करते। हे मेरे ख़ुदा ! इन लोगों को क्षमा कर कि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। घायल, थके हुए तथा लोगों की ओर से तिरस्कृत आप ने एक अंगूरिस्तान की छाया में शरण ली यह अंगूरिस्तान मक्का के दो सरदारों का था। यह सरदार उस समय अंगूरिस्तान में थे जो पुराने और कट्टर शत्रु जिन्होंने दस वर्ष तक आप के विरोध में अपना जीवन व्यतीत किया था, कदाचित् उस समय इस बात से प्रभावित हो गए कि एक मक्का के व्यक्ति को तायफ़ के लोगों ने घायल किया है या शायद वे क्षण ऐसे क्षण थे जब उनके हृदयों में नेकी की भावना

जाग उठी थी, उन्होंने अंगूरों का एक थाल भरा और अपने दास 'अदास' को कहा कि जाओ उन यात्रियों को दो। 'अदास' नैनवा का रहने वाला एक ईसाई था। जब उसने यह अंगूर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के सामने प्रस्तुत किए और आप ने उन अंगूरों को यह कहते हुए लिया कि ख़ुदा के नाम पर जो नितान्त कृपा करने वाला और बारम्बार दया करने वाला है मैं यह लेता हूँ तो उसके हृदय में ईसाइयत की याद पुनः ताज़ा हो गई। उसने महसूस किया कि उसके सामने ख़ुदा का एक नबी बैठा है जो इस्राईली नबियों की सी भाषा में बातें करता है। उससे रसूले करीम (स.अ.व.) ने पूछा— तुम कहाँ के रहने वाले हो? जब उसने कहा नैनवा का। तो आपने फ़रमाया— वह नेक मनुष्य यूनुस[अ.] जो मती का पुत्र था और नैनवा का निवासी, वह मेरी तरह ख़ुदा का नबी था। फिर आप ने उसे अपने धर्म के बारे में समझाया। अदास की हैरानी कुछ ही क्षणों में आश्चर्य में परिवर्तित हो गई। आश्चर्य ईमान में परिवर्तित हो गया और कुछ ही क्षणों में वह अजनबी दास आँसुओं से भरी आँखों के साथ मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से लिपट गया तथा आपके हाथों और चरणों को चूमने लगा। अदास की बातों से निवृत हो कर आप[स.] ने अल्लाह तआला की ओर ध्यानमग्न होकर ख़ुदा से यह दुआ मांगी —

اَللّٰهُمَّ اِلَيْکَ اَشْكُوْ ضُعْفَ قُوَّتِيْ وَقِلَّةَ حِيْلَتِيْ وَهَوَانِيْ عَلَى النَّاسِ يَا اَرْحَمَ الرَّاحِمِيْنَ اَنْتَ رَبُّ الْمُسْتَضْعَفِيْنَ وَاَنْتَ رَبِّيْ اِلٰى مَنْ تَكِلُنِيْ اِلٰى بَعِيْدٍ يَتَجَهَّمُنِيْ اَمْ اِلٰى عَدُوٍّ مَلَّكْتَهٗ اَمْرِيْ اِنْ لَمْ يَكُنْ بِکَ عَلَيَّ غَضَبٌ فَلَا اُبَالِيْ وَلٰكِنْ عَافِيَتُکَ هِيَ اَوْسَعُ لِيْ اَعُوْذُبِنُوْرِ وَجْهِکَ الَّذِيْ اَشْرَقَتْ لَهُ الظُّلُمَاتُ وَصَلَحَ عَلَيْهِ اَمْرُ الدُّنْيَا وَبِالْاٰخِرَةِ مِنْ اَنْ تُنَزِّلَ بِيْ غَضَبَکَ اَوْ يَحُلَّ عَلَيَّ سَخَطُکَ لَکَ الْعُقْبٰى حَتّٰى تَرْضٰى وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ اِلَّا بِکَ۔[1]

अर्थात् हे मेरे अल्लाह! मैं अपने साधनों की कमी, लोगों द्वारा

①-सीरत इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-147

तिरस्कृत होने, निरुपाय की दयनीय अवस्था की गुहार तुझ से ही करता हूँ। तू असहायों और दुर्बलों का सहायक है। तू मेरा भी रब्ब है। तू मुझे किस प्रकार के हाथों में छोड़ देगा! क्या अजनबी लोगों के हाथों में जो मुझे इधर-उधर ढ़केलते फिरेंगे अथवा उस शत्रु के हाथ में जो मेरे देश पर क़ब्ज़ा कर चुका है। यदि तू मुझ से कुपित नहीं तो मुझे इन शत्रुओं की तनिक भी परवाह नहीं। जो मुझ पर तेरी दया दृष्टि है, वह मेरे लिए सर्वोत्कृष्ट सुरक्षा-कवच है। मैं तेरी शरण चाहता हूँ। सामने के अन्धकार को ज्योति में और अशान्ति को शान्ति में बदल दे, अपने भड़के हुए स्वाभिमान के आक्रोश से हमें सुरक्षित रख। तू यदि कभी कुपित भी होता है तो इसलिए कि फिर (अपने भक्तों पर) प्रसन्नता प्रकट करे। तेरे अतिरिक्त न कोई दूसरी वास्तविक सहायक शक्ति है न शरण का स्थान।

यह दुआ मांग कर आप मक्का की ओर चल पड़े परन्तु मध्य में नख़्ला नामक स्थान पर रुक गए। वहाँ कुछ दिन आराम करके फिर आप मक्का की ओर रवाना हुए, परन्तु अरब के नियमानुसार लड़ाई के कारण मक्का छोड़ देने के पश्चात् आप मक्का-निवासी नहीं रहे थे। अब मक्का वालों का अधिकार था कि वे आप को मक्का में आने देते या न आने देते। इसलिए आप ने मक्का के एक सरदार मुतअम बिन अदी को सन्देश भेजा कि मैं मक्का में प्रवेश करना चाहता हूँ। क्या तुम अरब के नियमानुसार मुझे आने की अनुमति देते हो? मुतअम कट्टर शत्रु होने के बावजूद एक सुशील स्वभाव व्यक्ति था। उसने उसी समय अपने पुत्रों और परिजनों को साथ लिया और सशस्त्र हो कर का'बा के परिसर में जा खड़ा हुआ और आप को सन्देश भेजा कि वह आप को मक्का में आने की अनुमति देता है। आप ने मक्का में प्रवेश किया, का'बा का तवाफ़ (परिक्रमा) किया और मुतअम अपनी सन्तान और परिजनों के साथ, नंगी तलवारें लिए हुए आप को आप के घर तक पहुँचाने आया। यह शरण नहीं थी क्योंकि इस

के पश्चात् मुहम्मद रसूलुल्लाह पर निरन्तर अत्याचार होते रहे तथा मुतअम ने आप की कोई सुरक्षा नहीं की अपितु यह केवल मक्का में प्रवेश करने की नियमानुसार अनुमति थी।

आप[स.] की इस यात्रा के संबंध में शत्रुओं को भी यह स्वीकार करना पड़ा है कि इस यात्रा में आप ने अद्वितीय बलिदान और धैर्य का आदर्श प्रदर्शित किया है। सर विलियम म्योर अपनी पुस्तक "मुहम्मद" में लिखते हैं —

> "मुहम्मद (स.अ.व.) की तायफ़-यात्रा में एक उत्कृष्ट वीरता का रंग पाया जाता है। अकेला व्यक्ति जिस की अपनी जाति ने उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा और उसे बहिष्कृत कर दिया। ख़ुदा के नाम पर ख़ुदाई मिशन को प्रसारित करने के लिए वीरता के साथ नैनवा के यूनाह नबी की भांति एक मूर्तिपूजक शहर से क्षमा मांगी। यह बात उसके उस ईमान पर कि वह स्वयं को पूर्णतया ख़ुदा की ओर से समझता था, एक प्रखर प्रकाश डालती है।" ①

मक्का ने पुनः पीड़ित करने और उपहासों के द्वार खोल दिए, ख़ुदा के नबी के लिए उस की मातृभूमि पुनः नर्क का नमूना बनने लगी, परन्तु इस के बावजूद मुहम्मद (स.अ.व.) निर्भीकतापूर्वक लोगों को ख़ुदा की शिक्षा पहुँचाते रहे। मक्का के गली-कूचों में "ख़ुदा एक है, खुदा एक है" के स्वर गूंजते रहे। प्रेम से, प्यार से, भलाई से आप मक्का वालों को मूर्तिपूजा के विरुद्ध धर्मोपदेश देते रहे। लोग भागते थे तो आप उनके पीछे जाते थे; लोग मुख फेरते थे तो आप फिर भी बातें सुनाए चले जाते थे। सच्चाई शनैः शनैः हृदयों में घर कर रही थी। वे थोड़े से मुसलमान जो हबशा के प्रवास से बचे हुए मक्का में रह गए थे, वे अन्दर ही अन्दर अपने परिजनों, मित्रों,

---

①- The life of Mohammad पृष्ठ-117

साथियों में प्रचार कर रहे थे। कुछ के हृदय ईमान के प्रकाश से प्रकाशित हो जाते तो अपने इस्लाम की सार्वजनिक तौर पर घोषणा कर देते, परन्तु बहुत थे जिन्होंने प्रकाश को तो देख लिया परन्तु उन्हें उसे स्वीकार करने का सामर्थ्य प्राप्त नहीं हुआ था। वे उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे जब ख़ुदा की बादशाहत पृथ्वी पर आए और वे उसमें प्रवेश करें।

मदीना वालों का इस्लाम स्वीकार करना

इसी अवधि में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को ख़ुदा तआला की ओर से बार-बार सूचना दी जा रही थी कि तुम्हारे प्रवास का समय आ रहा है तथा आप पर यह भी स्पष्ट हो चुका था कि आप के प्रवास (हिजरत) का स्थान एक ऐसा शहर है जिसमें कुएँ भी हैं और खजूरों के बाग़ भी पाए जाते हैं। आप ने पहले यमामा के संबंध में समझा कि कदाचित् वह हिजरत (प्रवास) का स्थान होगा,[1] परन्तु आपके हृदय से शीघ्र ही यह विचार निकाल दिया गया और आप[स.] इस प्रतीक्षा में लग गए कि ख़ुदा तआला की भविष्यवाणी के अनुसार जो शहर भी निश्चित है वह स्वयं को इस्लाम का केन्द्र बनाने के लिए प्रस्तुत करेगा। इसी बीच हज का समय आ गया। अरब के चारों ओर से लोग मक्का में हज करने के लिए एकत्र होने लगे। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अपने स्वभाव के अनुसार जहाँ कुछ लोगों को खड़ा देखते थे उनके पास जा कर उन्हें एकेश्वरवाद का उपदेश देने लग जाते थे तथा ख़ुदा की बादशाहत का शुभ संदेश देते थे तथा अत्याचार, दुराचार, उपद्रव और शरारत से बचने का प्रवचन भी करते थे। कुछ लोग आप की बात सुनते और आश्चर्य प्रकट करते हुए अलग हो जाते। कुछ लोग बातें सुन रहे होते तो मक्का वाले उन्हें वहाँ से हटा देते। कुछ लोग जो पहले से मक्का वालों की बातें सुन चुके होते वे हँसी

---

① -बुख़ारी बाब हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो वसल्लम

उड़ाकर आप से पृथक हो जाते। इसी अवस्था में आप[स.] मिना की घाटी में विचर रहे थे कि छः सात लोग जो मदीना निवासी थे आप को दिखाई दिए। आप ने उन से कहा— आप लोग किस क़बीले से संबंध रखते हो? उन्होंने कहा— 'ख़ज़रज' क़बीले के साथ। आप ने कहा— वही क़बीला जो यहूदियों का हलीफ़ (दो सदस्य जिन्होंने परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा की हो) है? उन्होंने कहा हाँ। आप ने फ़रमाया— क्या आप लोग कुछ देर बैठ कर मेरी बातें सुनेंगे? उन लोगों ने चूंकि आप के बारे में सुना हुआ था और हृदय में आप के दावे से एक सीमा तक रुचि थी, उन्होंने आप की बात स्वीकार कर ली और आप के साथ बैठ कर आप[स.] की बातें सुनने लगे। आप ने उन्हें बताया कि ख़ुदा की बादशाहत निकट आ रही है, मूर्तियाँ अब संसार से मिटा दी जाएँगी, संसार में एकेश्वरवाद की स्थापना कर दी जाएगी, नेकी और सदाचार का एक बार फिर संसार में बोल बाला होगा। क्या मदीना के लोग इस महान ने'मत को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं? उन्होंने आप की बातें सुनीं और प्रभावित हुए और कहा— आप की शिक्षा को तो हम स्वीकार करते हैं, शेष रहा यह कि मदीना इस्लाम को शरण देने के लिए तैयार है या नहीं, इसके लिए हम मदीना जाकर अपनी जाति से बात करेंगे, फिर हम अगले वर्ष अपनी जाति का निर्णय आप को बताएँगे[1]। ये लोग वापस गए और उन्होंने अपने परिजनों और मित्रों को आप[स.] की शिक्षा से अवगत कराया उस समय मदीना में दो अरब क़बीले 'औस' और ख़ज़रज रहते थे और तीन यहूदी क़बीले अर्थात् बनू क़ुरैज़ा, बनूनज़ीर और बनू क़ैनक़ाअ। औस और ख़ज़रज में आपस में मनमुटाव था। बनू-क़रैज़ा और बनू नज़ीर औस के साथ और बनू क़ैनक़ाअ खज़रज के साथ मिले हुए थे। दीर्घ समयों से चले आ रहे मन-मुटाव के पश्चात् उनमें यह अहसास पैदा हो रहा था कि हमें परस्पर मैत्री कर लेना चाहिए।

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ 150-156

अन्ततः परस्पर विचार विमर्श के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि अब्दुल्लाह बिन उब्य्य बिन सुलूल जो ख़ज़रज का सरदार था उसे सम्पूर्ण मदीना अपना बादशाह स्वीकार करे। यहूदियों के साथ संबंधों के कारण औस और ख़ज़रज बाइबल की भविष्यवाणी सुनते रहते थे। जब यहूदी अपने संकटों और कष्टों का वृत्तान्त सुनाते तो उसके अन्त में यह भी कह दिया करते थे कि एक नबी जो मूसा का स्वरूप होगा प्रकट होने वाला है, उसका समय निकट आ रहा है। जब वह आएगा तो हम पुनः एक बार संसार पर विजय प्राप्त करेंगे, यहूदियों के शत्रुओं का विनाश कर दिया जाएगा। जब उन हाजियों से मदीना वालों ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के दावे को सुना तो आप[स.] की सच्चाई उनके हृदयों में घर कर गई और उन्होंने कहा — यह तो वही नबी मालूम होता है जिसकी यहूदी हमें ख़बर दिया करते थे। अतः बहुत से युवक नबी करीम (स.अ.व.) की शिक्षा की सच्चाई से प्रभावित हुए और यहूदियों से सुनी हुई भविष्यवाणियाँ उनके ईमान लाने में सहायक हुईं। अतः अगले वर्ष हज के अवसर पर मदीना के लोग पुनः आए। इस बार मदीना से बारह लोग इस इरादे के साथ चले कि वह मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के धर्म में सम्मिलित हो जाएँगे। उनमें से दस 'ख़ज़रज' क़बीले के थे और दो 'औस' के। वे आप[स.] से मिना में मिले और उन्होंने आप के हाथ पर इस बात का प्रण किया कि वे ख़ुदा के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना नहीं करेंगे, वे चोरी नहीं करेंगे, वे व्यभिचार नहीं करेंगे, वे अपनी लड़कियों की हत्या नहीं करेंगे, वे एक दूसरे पर झूठे आरोप नहीं लगाएँगे, न वे ख़ुदा के नबी की अन्य शुभ शिक्षाओं की अवज्ञा करेंगे। ये लोग वापस गए तो उन्होंने अपनी जाति में और भी जोश के साथ प्रचार आरम्भ कर दिया[①]। मदीना के घरों से मूर्तियाँ निकाल कर बाहर फेंकी जाने लगीं, मूर्तियों के आगे नतमस्तक होने वाले

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ 150-156

लोग अब ख़ुदा के अतिरिक्त किसी के सामने झुकने के लिए तैयार न थे और इस पर वे गर्व अनुभव कर रहे थे कि सदियों की मित्रता और सदियों के प्रचार से जो परिवर्तन वे न कर सके, इस्लाम ने वह परिवर्तन कुछ ही दिनों में कर दिया। एकेश्वरवाद का उपदेश मदीना-निवासियों के हृदयों में घर करता जाता था। एक के बाद एक लोग आते और मुसलमानों से कहते, हमें अपने धर्म की शिक्षा दो, परन्तु मदीने के नवदीक्षित मुस्लिम न तो स्वयं इस्लामी शिक्षा से पूर्णतया परिचित थे और न उनकी संख्या इतनी थी कि वे सैकड़ों और हज़ारों लोगों को इस्लाम के संबंध में विस्तारपूर्वक बता सकें। इसलिए उन्होंने मक्का में एक व्यक्ति भेज कर प्रचारक भेजने का निवेदन किया। रसूले करीम (स.अ.व.) ने मुसअब[रज़ि.] नामक एक सहाबी को जो हबशा के प्रवास से वापस आए थे मदीना में प्रचार के लिए भिजवाया। मुसअब[रज़ि.] मक्का के बाहर पहले इस्लामी प्रचारक थे।

इसरा (रात की स्वप्निल यात्रा)

इन्हीं दिनों ख़ुदा तआला ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को आने वाले समय के संबंध में एक अन्य भविष्यवाणी का महान शुभ सन्देश सुनाया। आप को एक कश्फ़ (अर्ध निद्रावस्था) में दिखाया गया कि आप यरुश्लम गए हैं और नबियों ने आपकी अगवाई में नमाज़ पढ़ी है[1]। यरुश्लम की व्याख्या मदीना थी जो भविष्य के लिए एक ख़ुदा की उपासना का केन्द्र बनने वाला था और आपके पीछे नबियों के नमाज़ पढ़ने की व्याख्या यह थी कि भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग आप के धर्म में सम्मिलित होंगे और आप का धर्म सार्वभौमिक हो जाएगा। यह समय मक्का के मुसलमानों के लिए नितान्त कठिन था और कष्ट चरम सीमा को पहुँच चुके थे। इस कश्फ़ का सुनाना मक्का वालों के लिए हँसी और

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ 138 तथा ज़रक़ानी जिल्द-प्रथम पृष्ठ 306

उपहास का एक नया कारण बन गया तथा उन्होंने प्रत्येक सभा में आप[स.] के इस कश्फ़ पर उपहास करना आरम्भ किया परन्तु कौन जानता था कि नवीन यरुश्लम का निर्माण आरम्भ था। पूरब और पश्चिम की जातियां कान लगाए ख़ुदा के अन्तिम नबी की आवाज़ सुनने के लिए तत्पर खड़ी थीं।

रूमियों की विजय की भविष्यवाणी

इन्हीं दिनों में क़ैसर और किसरा के मध्य एक भीषण युद्ध हुआ और किसरा को विजय प्राप्त हुई। शाम में ईरानी सेनाएं फैल गईं, यरुश्लम नष्ट कर दिया गया, यहाँ तक कि ईरानी सेनाएं यूनान और एशियाई कोचक तक पहुँच गईं तथा ईरानी सेनापतियों ने बासफ़ोरस के आरम्भ में क़ुस्तुनतुनिया से दस मील की दूरी पर अपने तम्बू लगा दिए। इस घटना पर मक्का के लोगों ने ख़ुशियाँ मनाना आरम्भ किया और कहा कि ख़ुदा का निर्णय प्रकट हो गया है। मूर्तिपूजक ईरानियों ने ईसाइयों को पराजित किया। उस समय ख़ुदा तआला की ओर से आप[स.] को सूचना दी गई कि —

غُلِبَتِ الرُّوۡمُ ۙ فِیۡۤ اَدۡنَی الۡاَرۡضِ وَ ہُمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ غَلَبِہِمۡ سَیَغۡلِبُوۡنَ ۙ فِیۡ
بِضۡعِ سِنِیۡنَ ۬ؕ لِلّٰہِ الۡاَمۡرُ مِنۡ قَبۡلُ وَ مِنۡۢ بَعۡدُ ؕ وَ یَوۡمَئِذٍ یَّفۡرَحُ الۡمُؤۡمِنُوۡنَ ۙ
بِنَصۡرِ اللّٰہِ ؕ یَنۡصُرُ مَنۡ یَّشَآءُ ؕ وَ ہُوَ الۡعَزِیۡزُ الرَّحِیۡمُ ۙ وَعۡدَ اللّٰہِ ؕ لَا یُخۡلِفُ
اللّٰہُ وَعۡدَہٗ وَ لٰکِنَّ اَکۡثَرَ النَّاسِ لَا یَعۡلَمُوۡنَ ۝ (सूरह रूम 3 से 5)

अर्थात् रूमी सेनाएं अरब के निकटवर्ती देशों में पराजित हो गई हैं परन्तु अपनी पराजय के पश्चात् उन्हें विजय प्राप्त होगी कुछ वर्षों के अन्दर-अन्दर। ख़ुदा का ही शासन संसार में पहले भी प्रचलित था और भविष्य में भी चलता रहेगा। जब वह विजय की घड़ी आएगी उस समय मोमिनों को भी ख़ुदा की कृपा से प्रसन्नता प्राप्त होगी। ख़ुदा जिन्हें चुन लेता

है उनकी सहायता करता है। वह बड़ा ही तेजस्वी और दयालु है। यह उस ख़ुदा का वादा है जो अपने वादों में फेरबदल नहीं करता, परन्तु अधिकांश लोग ख़ुदा की शक्तियों से अनभिज्ञ हैं।

ख़ुदा ने कुछ ही वर्षों के पश्चात यह भविष्यवाणी पूरी कर दी। एक ओर रूमियों ने ईरानियों को पराजित करके अपने देश को स्वतंत्र करा लिया तथा दूसरी ओर जैसा कि कहा गया था, उन्हीं दिनों में मुसलमानों का मक्का के लोगों के विरुद्ध विजयों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ, जब कि मक्का के लोग यह समझ रहे थे कि उन्होंने लोगों को मुसलमानों की बातें सुनने से रोक कर और मुसलमानों पर अत्याचार करने पर उत्तेजित करके इस्लाम का अन्त कर दिया है। ख़ुदा की वाणी निरन्तर इस्लाम की विजयों की सूचनाएं दे रही थी और बता रही थी कि मक्का वालों के विनाश का समय निकट से निकटतर आ रहा है। अतः उन्हीं दिनों में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने बड़े सशक्त शब्दों में ख़ुदा तआला की इस वह्यी (ईशवाणी) की घोषणा की कि —

وَقَالُوا لَوْلَا يَأْتِينَا بِآيَةٍ مِّن رَّبِّهِ ۚ أَوَلَمْ تَأْتِهِم بَيِّنَةُ مَا فِي الصُّحُفِ
الْأُولَىٰ ○ وَلَوْ أَنَّا أَهْلَكْنَاهُم بِعَذَابٍ مِّن قَبْلِهِ لَقَالُوا رَبَّنَا لَوْلَا أَرْسَلْتَ إِلَيْنَا
رَسُولًا فَنَتَّبِعَ آيَاتِكَ مِن قَبْلِ أَن نَّذِلَّ وَنَخْزَىٰ ○ قُلْ كُلٌّ مُّتَرَبِّصٌ
فَتَرَبَّصُوا ۖ فَسَتَعْلَمُونَ مَنْ أَصْحَابُ الصِّرَاطِ السَّوِيِّ وَمَنِ اهْتَدَىٰ ○

(ता हा 134-136)

अर्थात् मक्का वाले कहते हैं कि क्यों मुहम्मद (स.अ.व.) अपने रब्ब के पास से कोई निशान हमारे लिए नहीं लाता। क्या पहले नबियों की भविष्यवाणी जो उसके पक्ष में हैं वे उन के लिए पर्याप्त निशान नहीं है। यदि हम अपने सन्देश से पूर्ण रूप से अवगत किए बिना मक्का वालों को तबाह कर देते तो मक्का वाले कह सकते थे कि हे हमारे रब्ब ! तूने क्यों

हमारी ओर रसूल न भेजा कि हम अपने मान-सम्मान छीने जाने पर तिरस्कृत होने से पूर्व तेरे आदेशों का पालन करते। तू कह दे ! प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक समय निश्चित है जिसकी उसे प्रतीक्षा करना पड़ती है। अतः तुम भी उस समय की प्रतीक्षा करो जब समझाने का प्रयास चरम सीमा को पहुँच जाएगा तब तुम निश्चय ही जान लो कि ख़ुदा तआला के दर्शाए सीधे मार्ग पर कौन चल रहा है।

ख़ुदा तआला की प्रतिदिन नई वाणी आ रही थी जो इस्लाम की उन्नति और काफ़िरों के विनाश की ख़बरें दे रही थी। एक ओर मक्का वाले अपनी शक्ति और वैभव को देखते थे और दूसरी ओर मुहम्मद (स.अ.व.) और उनके साथियों की कमज़ोरी को देखते थे और फिर मुहम्मद (स.अ.व.) की वह्यी में ख़ुदा तआला की सहायता और मुसलमानों की सफलताओं की ख़बरें पढ़ते थे तो आश्चर्य चकित होकर सोचते थे कि क्या वे पागल हो गए हैं या मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) पागल हो गया है। मक्का वाले तो ये आशाएं लगाए बैठे थे कि हमारे अत्याचारों और हमारी अन्यायपूर्ण धृष्टता के कारण अब मुसलमानों को हताश हो कर हमारी ओर आ जाना चाहिए तथा मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) को स्वयं भी और उनके साथियों को भी उनके दावे में सन्देह पैदा हो जाने चाहिएं जब कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) यह घोषणा कर रहे थे —

فَلَاۤ اُقۡسِمُ بِمَا تُبۡصِرُوۡنَ ۙ۝ وَمَا لَا تُبۡصِرُوۡنَ ۙ۝ اِنَّهٗ لَقَوۡلُ رَسُوۡلٍ كَرِيۡمٍ ۚۙ۝ وَّمَا
هُوَ بِقَوۡلِ شَاعِرٍ ؕ قَلِيۡلًا مَّا تُؤۡمِنُوۡنَ ۙ۝ وَلَا بِقَوۡلِ كَاهِنٍ ؕ قَلِيۡلًا مَّا تَذَكَّرُوۡنَ ۝
تَنۡزِيۡلٌ مِّنۡ رَّبِّ الۡعٰلَمِيۡنَ ۝ وَلَوۡ تَقَوَّلَ عَلَيۡنَا بَعۡضَ الۡاَقَاوِيۡلِ ۙ۝ لَاَخَذۡنَا مِنۡهُ
بِالۡيَمِيۡنِ ۙ۝ ثُمَّ لَقَطَعۡنَا مِنۡهُ الۡوَتِيۡنَ ۖ۝ فَمَا مِنۡكُمۡ مِّنۡ اَحَدٍ عَنۡهُ حٰجِزِيۡنَ ۝ وَ
اِنَّهٗ لَتَذۡكِرَةٌ لِّلۡمُتَّقِيۡنَ ۝ وَاِنَّا لَنَعۡلَمُ اَنَّ مِنۡكُمۡ مُّكَذِّبِيۡنَ ۝ وَاِنَّهٗ لَحَسۡرَةٌ
عَلَى الۡكٰفِرِيۡنَ ۝ وَاِنَّهٗ لَحَقُّ الۡيَقِيۡنِ ۝ فَسَبِّحۡ بِاسۡمِ رَبِّكَ الۡعَظِيۡمِ ۝

(सूरह हाक्क़ह 41 से 53)

हे मक्का वालो ! जिन विचारों में तुम पड़े हो वह उचित नहीं। मैं शपथ खा कर कहता हूँ उन वस्तुओं की जो तुम्हें दिखाई दे रही हैं और उनकी भी जो अभी तुम्हारी निगाहों से ओझल हैं कि यह क़ुर्आन एक आदरणीय नबी के मुख से तुम्हें सुनाया जा रहा है, यह किसी कवि की वाणी नहीं परन्तु तुम्हारे हृदय में ईमान कम ही पैदा होता है। यह किसी ज्योतिषी की तुकबन्दी नहीं है। परन्तु खेद तुम कम ही नसीहत प्राप्त करते हो। यह समस्त लोकों के स्रष्टा ख़ुदा की ओर से उतारा गया है और हम जो समस्त लोकों के प्रतिपालक हैं तुम से कहते हैं कि यदि यह एक आयत भी झूठी बना कर हम से सम्बद्ध करता तो हम उसे दाहिने हाथ से पकड़ लेते और फिर उसकी कंठ-धमनी (शाह रग) काट देते और यदि तुम सब इकट्ठे होकर भी उसे बचाना चाहते तो न बचा सकते, परन्तु यह क़ुर्आन तो ख़ुदा से डरने वालों के लिए एक नसीहत है और हम जानते हैं कि तुम में इस क़ुर्आन के झुठलाने वाले भी मौजूद हैं, परन्तु हम यह भी जानते हैं कि उसकी शिक्षा उसके इन्कार करने वालों के हृदयों में ईर्ष्या को जन्म दे रही है और वे कह रहे हैं कि काश यह शिक्षा हमारे पास होती ! हम यह भी जानते हैं कि जो बातें इस क़ुर्आन में बताई गई हैं वे अक्षरशः पूरी होकर रहेंगी। अतः हे मुहम्मद (स.अ.व.) इन लोगों के विरोधों की परवाह न कर तथा अपने महानतम रब्ब के नाम की महिमा का गान करता चला जा।

अन्ततः तीसरा हज भी आ पहुँचा तथा मदीना के हाजियों का जत्था मुसलमानों की एक बड़ी संख्या पर आधारित मक्का में आया। मक्का वालों के विरोध के कारण मदीना के लोगों ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से पृथक रूप से मिलने की इच्छा प्रकट की। अब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को भी इस बात का आभास हो चुका था कि शायद हिजरत (प्रवास) मदीना की ओर ही विधि-लिखित है। आप ने अपने विश्वस्त परिजनों के सामने अपने विचार रखे और उन्होंने आप[स.] को समझाना

आरम्भ किया कि आप ऐसा न करें। मक्का वाले शत्रु ही सही फिर भी उस में आप के परिजनों में से बड़े-बड़े प्रभावशाली लोग मौजूद हैं। न मालूम मदीना में क्या हो और वहाँ आप के परिजन आप की सहायता कर सकें या न कर सकें परन्तु चूंकि आप समझ चुके थे कि ख़ुदा का निर्णय यही है। आप ने अपने परिजनों की बातों को अस्वीकार कर दिया और मदीना जाने का निर्णय कर लिया।

अर्ध रात्रि के पश्चात् अक़्वा घाटी में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और मदीना के मुसलमान एकत्र हुए। अब आप के साथ आपके चाचा अब्बास भी थे। इस बार मदीना के मुसलमानों की संख्या तिहत्तर① थी। उनमें से बासठ 'ख़ज़रज' क़बीले के थे और ग्यारह 'औस' के थे इस दल में दो स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं जिन में से एक बनी नज्जार क़बीले की उम्मे अम्मार:[रज़ि.] भी थीं। चूंकि मुसअब[रज़ि.] के द्वारा उन लोगों तक इस्लाम की विस्तृत शिक्षा पहुँच चुकी थी, ये लोग ईमान और विश्वास से परिपूर्ण थे। बाद की घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि ये लोग भविष्य में इस्लाम के स्तम्भ सिद्ध होने वाले थे। उम्मे अम्मार:[रज़ि.] जो उस दिन सम्मिलित हुईं, उन्होंने अपनी सन्तान में इस्लाम प्रेम की भावना इस सीमा तक भर दी थी कि उनका बेटा हबीब[रज़ि.] जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के स्वर्गवास के पश्चात् मुसैलिमा कज़्ज़ाब की सेना के द्वारा क़ैद किया गया तो मुसैलिमा ने उसे बुला कर पूछा कि क्या तू गवाही देता है कि मुहम्मद (स.अ.व.) अल्लाह के रसूल है? हबीब[रज़ि.] ने कहा हाँ ! फिर मुसैलिमा ने कहा— क्या तू गवाही देता है कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ? हबीब[रज़ि.] ने कहा— नहीं। इस पर मुसैलिमा ने आदेश दिया कि उनका एक अंग काट दिया जाए। तब मुसैलिमा ने पुनः उस से पूछा— क्या तू गवाही देता है कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं? हबीब[रज़ि.] ने कहा हाँ ! फिर उसने

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ 154

कहा— क्या तू गवाही देता है कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ? हबीब[रज़ि.] ने कहा— नहीं ! फिर उसने आप[रज़ि.] का एक दूसरा अंग काटने का आदेश दिया। प्रत्येक अंग काटने के पश्चात् वह प्रश्न करता जाता था कि क्या तू गवाही देता है कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ और हबीब[रज़ि.] कहता था कि नहीं। इस प्रकार उसके समस्त अंग काटे गए तथा अन्त में इसी प्रकार टुकड़े-टुकड़े होकर अपने ईमान की घोषणा करते हुए वह ख़ुदा से जा मिला। उम्मे अम्मार:[रज़ि.] स्वयं रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथ बहुत से युद्धों में सम्मिलित हुईं। अत: यह एक शुद्ध ईमान वाला दल था जिस के सदस्य मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से धन-दौलत माँगने नहीं आए थे अपितु केवल ईमान माँगने आए थे। अब्बास[रज़ि.] ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा— हे ख़ज़रज क़बीले के लोगो ! यह मेरा प्रियजन अपनी जाति में प्रतिष्ठावान है, उसकी जाति के लोग चाहे वे मुसलमान हैं अथवा नहीं उसकी रक्षा करते हैं, परन्तु अब उसने निर्णय किया है कि वह तुम्हारे पास जाए। हे 'ख़ज़रज' के लोगो ! यदि यह तुम्हारे पास गया तो सम्पूर्ण अरब तुम्हारा विरोधी हो जाएगा। यदि तुम अपने दायित्व को समझते तथा उन ख़तरों को पहचानते हुए जो तुम्हें उस के धर्म की सुरक्षा में तुम्हारे सामने आने वाले हैं उसे ले जाना चाहते हो तो ख़ुशी से लो जाओ अन्यथा इस इरादे से हट जाओ। इस दल के सरदार 'अलबरा' थे। उन्होंने कहा— हम ने आप की बातें सुन लीं। हम अपने संकल्प में दृढ़ हैं, हमारे प्राण ख़ुदा के नबी के चरणों पर न्योछावर हैं। अब उसका जो भी निर्णय है हम उसका प्रत्येक निर्णय स्वीकार करेंगे। इस पर रसूले करीम (स.अ.व.) ने उन्हें इस्लामी शिक्षा के संबंध में समझाना आरम्भ किया तथा ख़ुदा तआला के एक होने की आस्था हृदय में बिठाने का उपदेश दिया और उन्हें कहा कि यदि वे इस्लाम की सुरक्षा अपनी पत्नियों तथा अपनी सन्तान की तरह करने का प्रण करते हैं तो वह आप के साथ जाने के लिए तैयार हैं। अभी

आप अपनी बात समाप्त नहीं कर पाए थे कि मदीना के बहत्तर सरफ़रोश (प्राणों की बाज़ी लगाने वाले लोग) सहमत होकर एक स्वर में चिल्लाए हाँ! हाँ!! उस समय भावावेग में उन्हें मक्का वालों के उत्पातों का ध्यान न रहा तथा उन की आवाज़ें वातावरण में गूँज गईं। अब्बास[रज़ि.] ने उन्हें सतर्क किया और कहा— ख़ामोश ! ऐसा न हो कि मक्का के लोगों को इस घटना का पता लग जाए!! परन्तु वे ईमान प्राप्त कर चुके थे, अब मृत्यु उनकी दृष्टि में तुच्छ हो चुकी थी। अब्बास[रज़ि.] की बात सुनकर उनका एक सरदार बोला— हे अल्लाह के रसूल ! हम डरते नहीं, आप आज्ञा दीजिए हम अभी मक्का वालों से लड़कर उन के द्वारा आप[स.] पर किए गए अत्याचारों का बदला लेने के लिए तैयार हैं। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— अभी अल्लाह तआला ने मुझे उन के मुकाबले पर खड़ा होने का आदेश नहीं दिया। तत्पश्चात् मदीना के लोगों ने आप की बैअत की (अर्थात् दीक्षित हुए) और सभा स्थगित हुई।

मक्का के लोगों को इस घटना की उड़ती ख़बर पहुँच गई तथा वे मदीने के सरदारों के पास शिकायत लेकर पहुँच गए परन्तु चूंकि अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल मदीने के जत्थे का सरदार था तथा उसे स्वयं इस घटना का ज्ञान नहीं था। इसलिए उसने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि उन्होंने यों ही कोई झूठी निराधार बात सुन ली है। ऐसी कोई घटना नहीं घटी क्योंकि मदीना के लोग मुझ से परामर्श किए बिना कोई कार्य नहीं कर सकते। परन्तु वह क्या समझता था कि अब मदीना के लोगों के हृदयों में शैतान के स्थान पर ख़ुदा तआला की बादशाहत स्थापित हो चुकी थी !!! तत्पश्चात् मदीना का जत्था वापस चला गया।

मक्का से मदीना की ओर हिजरत (पलायन)

रसूले करीम (स.अ.व.) और आपके साथियों ने हिजरत की तैयारी

आरम्भ कर दी। एक के बाद एक ख़ानदान मक्का से लुप्त होने आरम्भ हुए और अब वे लोग भी जो ख़ुदा तआला की बाशाहत की प्रतीक्षा कर रहे थे निडर हो गए। कई बार एक ही रात में मक्का की एक पूरी गली के मकानों को ताले लग जाते थे और प्रात: काल जब शहर के लोग गली को सुनसान पाते तो पूछने पर मालूम होता था कि इस गली के समस्त लोग मदीना की ओर हिजरत कर गए हैं तथा इस्लाम के इस अद्‌भुत प्रभाव को देख कर जो मक्का वालों में अन्दर ही अन्दर फैल रहा था वे स्तब्ध रह जाते थे।

अन्ततः मक्का मुसलमानों से ख़ाली हो गया, केवल कुछ दास, स्वयं रसूलुल्लाह (स.अ.व.), हज़रत अबू बकर[रज़ि.] और हज़रत अली[रज़ि.] मक्का में रह गए। जब मक्का के लोगों ने देखा कि अब शिकार हमारे हाथ से निकला जा रहा है तो सरदार पुनः एकत्र हुए तथा परामर्श करने के पश्चात उन्होंने यह निर्णय किया कि अब मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) का वध कर देना ही उचित है। ख़ुदा तआला के विशेष चमत्कार से आप का वध करने की तिथि आप की हिजरत की तिथि के अनुकूल पड़ी। जब मक्का के लोग आपके घर के सामने आप का वध करने के लिए एकत्र हो रहे थे, आप[स.] रात के अंधेरे में हिजरत के इरादे से अपने घर से बाहर निकल रहे थे। मक्का के लोग अवश्य सन्देह करते होंगे कि उनके इरादे की सूचना मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को भी मिल चुकी होगी, परन्तु फिर भी जब आप उनके सामने से गुज़रे तो उन्होंने यही समझा कि यह कोई अन्य व्यक्ति है और आप पर आक्रमण करने के स्थान पर सिमट-सिमट कर आप[स.] से छुपने लग गए ताकि उनके इरादों की सूचना मुहम्मद (स.अ.व.) को न पहुँच जाए। उस रात से एक दिन पूर्व ही अबू बकर[रज़ि.] को भी आप के साथ हिजरत करने की सूचना दे दी गई थी अतः वह भी आप[स.] को मिल गए। दोनों मिलकर थोड़ी देर में मक्का से रवाना हो गए तथा

मक्का से तीन-चार मील पर 'सौर' नामक पहाड़ी के एक सिरे पर एक गुफ़ा में शरण ली①। जब मक्का के लोगों को मालूम हुआ कि मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) मक्का से चले गए हैं तो उन्होंने एक सेना एकत्र की तथा आप का पीछा किया। उन्होंने एक खोजी अपने साथ लिया जो आप की खोज लगाते हुए 'सौर' पर्वत पर पहुँचा। उसने वहाँ उस गुफ़ा के पास पहुँच कर जहाँ आप[स.] अबू बकर[रज़ि.] के साथ छुपे हुए थे, पूर्ण विश्वास के साथ कहा कि या तो मुहम्मद (स.अ.व.) इस गुफ़ा में है या आकाश पर चढ़ गया है। उस की इस घोषणा को सुन कर अबू बक़र[रज़ि.] का हृदय बैठने लगा और उन्होंने धीमे स्वर में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से कहा— शत्रु सर पर आ पहुँचा है और अब कुछ ही क्षणों में गुफ़ा में प्रवेश करने वाला है। आप[स.] ने फ़रमाया— ②لَا تَحْزَنْ اِنَّ اللّٰهَ مَعَنَا अबू बकर डरो नहीं ख़ुदा हम दोनों के साथ है। अबू बकर[रज़ि.] ने उत्तर में कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं अपने प्राणों के लिए नहीं डरता क्योंकि मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ, मारा गया तो एक व्यक्ति ही मारा जाएगा। हे अल्लाह के रसूल ! मुझे तो केवल यह भय है कि यदि आप के प्राण को कोई आघात पहुँचा तो संसार से आध्यात्मिकता और धर्म का नाम मिट जाएगा। आप[स.] ने फ़रमाया— कोई परवाह नहीं, यहाँ हम दो ही नहीं तीसरा ख़ुदा भी हमारे साथ है। चूंकि अब समय आ पहुँचा था कि ख़ुदा तआला इस्लाम को बढ़ाए और उन्नति दे। मक्का वालों के लिए छूट का समय समाप्त हो चुका था। ख़ुदा तआला ने मक्का वालों की आँखों पर पर्दा डाल दिया तथा उन्होंने खोजी से उपहास आरम्भ कर दिया और कहा— क्या उन्होंने इस खुले स्थान पर शरण लेना थी, यह कोई शरण का स्थान नहीं है फिर यहाँ साँप बिच्छुओं की बहुतात है, यहाँ कौन समझदार व्यक्ति शरण ले

①-बुख़ारी बाब हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ②- बुख़ारी बाब मनाक़िबुल मुहाजिरीन।

सकता है तथा गुफ़ा में झांके बिना ही खोजी की खिल्ली उड़ाते हुए वापस लौटे। दो दिन उसी गुफ़ा में प्रतीक्षा करने के पश्चात् पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार रात्रि के समय गुफ़ा के पास सवारियां पहुँचाई गईं तथा दो तीव्रगामी ऊँटनियों पर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और आप के साथी रवाना हुए। एक ऊँटनी पर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और आप को मार्ग दिखाने वाला व्यक्ति सवार हुआ और दूसरी ऊँटनी पर हज़रत अबू बक़र[रज़ि.] और उन के नौकर आमिर बिन फ़ुहैरा सवार हुए।

मदीना की ओर प्रस्थान करने से पूर्व रसूले करीम (स.अ.व.) ने अपना मुख मक्का की ओर किया, उस पवित्र शहर में जिसमें आपने जन्म लिया जिसमें आप का अवतरण हुआ और जिसमें हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम के युग से आपके पूर्वज रहते चले आए थे, आप ने अन्तिम दृष्टि डाली और बड़े दुःख के साथ शहर को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया— हे मक्का की बस्ती ! तू मुझे सब स्थानों से अधिक प्रिय है परन्तु तेरे लोग मुझे यहाँ रहने नहीं देते। उस समय हज़रत अबू बकर[रज़ि.] ने भी नितान्त खेद के साथ कहा — इन लोगों ने अपने नबी को निकाला है अब ये अवश्य तबाह होंगे।①

मुहम्मद (स.अ.व.) को पकड़ने के लिए सुराक़ा द्वारा पीछा किया जाना तथा उसके संबंध में आप[स.] की एक भविष्यवाणी

जब मक्का वाले आप की खोज में असफल रहे तो उन्होंने घोषणा कर दी कि जो कोई मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) या अबू बकर[रज़ि.] को जीवित या मृत वापस ले आएगा तो उसे सौ ऊँटनियां पुरस्कार स्वरूप

①-ज़रक़ानी जिल्द प्रथम, पृष्ठ 328 मुस्नद अहमद तथा तिरमिज़ी के हवाले से।

दी जाएँगी। इस घोषणा की सूचना मक्का के आस-पास के क़बीलों को पहुँचा दी गई। अतः सुराक़ा बिन मालिक एक बद्दू सरदार इस पुरस्कार के लालच में आप के पीछे रवाना हुआ। खोज लगाते-लगाते उसने आप को मदीना के मार्ग पर जा लिया। जब उस ने दो ऊँटनियों और उन के सवारों को देखा तथा समझ लिया कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और उनके साथी हैं। उसने अपना घोड़ा उनके पीछे दौड़ा दिया, परन्तु मार्ग में घोड़े ने ज़ोर से ठोकर खाई और सुराक़ा गिर गया। सुराक़ा बाद में मुसलमान हो गया था। वह अपना वृत्तान्त स्वयं इस प्रकार वर्णन करता है— जब मैं घोड़े से गिरा तो मैंने अरबों के नियमानुसार अपने तीरों से शकुन निकाला और शकुन अशुभ निकला परन्तु पुरस्कार के लालच के कारण मैं पुनः घोड़े पर सवार हो कर उनके पीछे दौड़ा। रसूले करीम (स.अ.व.) मर्यादापूर्वक अपनी ऊँटनी पर सवार चले जा रहे थे। उन्होंने मुड़ कर मुझे नहीं देखा परन्तु हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] (इस भय से कि रसूले करीम (स.अ.व.) को कोई आघात न पहुँचे) बार-बार मुँह फेरकर देखते थे। जब दूसरी बार मैं उनके निकट पहुँचा तो पुनः मेरे घोड़े ने ज़ोर से ठोकर खाई और मैं गिर गया। इस पर पुनः मैंने अपने तीरों से शकुन निकाला और शकुन अशुभ निकला। मैंने देखा कि घोड़े के पैर रेत में इतने अधिक धंस गए कि उनका निकालना कठिन हो रहा था। तब मैंने समझा कि ये लोग ख़ुदा की सुरक्षा में हैं। मैंने उन्हें आवाज़ दी कि ठहरो और मेरी बात सुनो ! जब वे लोग मेरे पास आए तो मैंने उन्हें बताया कि मैं यहाँ इस इरादे से आया था, परन्तु अब मैंने अपना इरादा बदल दिया है और अब वापस जा रहा हूँ क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि ख़ुदा तआला आप लोगों के साथ है। रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— बहुत अच्छा, जाओ, परन्तु देखो किसी को हमारे बारे में सूचित न करना। उस समय मेरे हृदय में विचार आया कि चूंकि यह व्यक्ति सच्चा मालूम

होता है इसलिए अवश्य ही एक दिन सफल होगा। इस विचार के आने पर मैंने निवेदन किया कि जब आप को प्रभुत्व प्राप्त होगा उस समय के लिए मुझे कोई सुरक्षा का प्रपत्र लिख दें। आप ने हज़रत अबू बक़र के सेवक आमिर बिन फ़ुहैरा को आदेश दिया कि इसे अभयदान पत्र लिख दिया जाए। अतः उन्होंने अभयदान पत्र लिख दिया① । जब सुराक़ा लौटने लगा तो उसी समय अल्लाह तआला ने आप पर सुराक़ा की भावी परिस्थितियां परोक्ष से प्रकट कर दीं, उनके अनुसार आप ने उसे फ़रमाया— सुराक़ा उस समय क्या हाल होगा जब तेरे हाथों में 'किस्रा' के कंगन होंगे। सुराक़ा ने स्तब्ध हो कर पूछा किस्रा बिन हुरमुज़ ईरान के बादशाह के? आप[स.] ने फ़रमाया— हाँ② । आप की यह भविष्यवाणी लगभग सोलह, सत्तरह वर्ष के पश्चात् अक्षरशः पूरी हुई। सुराक़ा मुसलमान होकर मदीना आ गया। रसूले करीम (स.अ.व.) के मृत्योपरान्त पहले हज़रत अबू बक़र[रज़ि.] फिर हज़रत उमर[रज़ि.] ख़लीफ़ा हुए। इस्लाम की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा देख कर ईरानियों ने मुसलमानों पर आक्रमण आरम्भ कर दिए और इस्लाम के कुचलने के स्थान पर इस्लाम के मुकाबले में स्वयं कुचले गए। किस्रा की राजधानी इस्लामी सेनाओं के घोड़ों की टापों से रौंदी गई तथा ईरान के ख़ज़ानें मुसलमानों के क़ब्ज़े में आए। उस ईरानी शासन का जो माल इस्लामी सेनाओं के अधिकार में आया उसमें वे कंगन भी थे जिन्हें किस्रा ईरानी नियम के अनुसार राज सिंहासन पर बैठते समय पहना करता था। सुराक़ा मुसलमान होने के पश्चात् अपनी इस घटना को जो रसूले करीम (स.अ.व.) की हिजरत के समय उसके सामने आई थी मुसलमानों को बड़े गर्व के साथ सुनाया करता था तथा मुसलमान इस बात से अवगत थे कि रसूले करीम (स.अ.व.) ने उसे सम्बोधित करके फ़रमाया था—

---

①-बुख़ारी बाब हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम।

②-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द द्वितीय पृष्ठ-50

सुराक़ा उस समय तेरा क्या हाल होगा जब तेरे हाथ में किस्रा के कंगन होंगे। हज़रत उमर[रज़ि.] के सामने जब पराजित शत्रु से ज़ब्त किए हुए माल लाकर रखे गए तथा उसमें उन्होंने किस्रा के कंगन देखे तो सारा दृश्य आप की आँखों के सामने घूम गया। वह अशक्त और निर्बलता का समय जब ख़ुदा के रसूल को अपनी जन्मभूमि छोड़ कर मदीना आना पड़ा था, वह 'सुराक़ा' और अन्य लोगों का आपके पीछे इसलिए घोड़े दौड़ाना कि आप का वध करके या जीवित किसी भी अवस्था में मक्का वालों तक पहुँचा दें तो वे सौ ऊँटों के स्वामी हो जाएँगे, उस समय आप का 'सुराक़ा' से कहना— सुराक़ा उस समय तेरा क्या हाल होगा जब तेरे हाथों में किस्रा के कंगन होंगे। कितनी बड़ी भविष्यवाणी थी कितना उज्ज्वल भविष्य था। हज़रत उमर[रज़ि.] ने अपने सामने किस्रा के कंगन देखे तो उनकी आँखों के सामने ख़ुदा की क़ुदरत घूम गई। उन्होंने कहा— 'सुराक़ा' को बुलाओ। सुराक़ा बुलाए गए तो हज़रत उमर[रज़ि.] ने उन्हें आदेश दिया कि वह किस्रा के कंगन अपने हाथों में पहनें। सुराक़ा ने कहा— हे ख़ुदा के रसूल के ख़लीफ़ा ! मुसलमानों के लिए सोना पहनना वर्जित है। हज़रत उमर[रज़ि.] ने फ़रमाया— हाँ वर्जित तो अवश्य है परन्तु इन अवसरों के लिए नहीं। अल्लाह तआला ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को तुम्हारे हाथ में सोने के कंगन दिखाए थे, या तो तुम यह कंगन पहनोगे या मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। सुराक़ा की आपत्ति तो मात्र शरीअत की समस्या के कारण थी अन्यथा वह स्वयं भी रसूले करीम (स.अ.व.) की भविष्यवाणी को पूरा होते देखने के लिए उत्सुक था। सुराक़ा ने वे कंगन अपने हाथों में पहन लिए मुसलमानों ने इस महान भविष्यवाणी को पूरा होते अपनी आँखों से देखा। मक्का से भाग कर निकलने वाला रसूल अब संसार का बादशाह था। वह स्वयं इस संसार में मौजूद नहीं था परन्तु इस्लाम के दास उसकी भविष्यवाणी को पूर्ण होते देख रहे थे।

मुहम्मद (स.अ.व.) का मदीना में प्रवेश

सुराक़ा को विदा करने के पश्चात कुछ दूरी तय करके रसूले करीम (स.अ.व.) मदीना पहुँच गए। मदीना के लोग बड़ी उत्सुकता के साथ आप की प्रतीक्षा कर रहे थे तथा इससे बढ़कर उनका सौभाग्य और क्या हो सकता था कि वह सूर्य जो मक्का से निकला और मदीना के लोगों पर जाकर उदय हुआ।

जब मदीना वासियों को सूचना मिली कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मक्का से ग़ायब है तो वे उसी दिन से आप की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके समूह प्रतिदिन मदीना से बाहर कई मील तक आप की खोज में निकलते थे और सांय काल निराश होकर वापस आ जाते थे। जब आप मदीना के पास पहुँचे तो आपने निर्णय किया कि आप पहले 'क़बा' में (मदीने के पास का एक गाँव) ठहरें। एक यहूदी ने आप की ऊँटनियों को आते देखा तो समझ गया कि यह क़ाफ़िला मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का है। वह एक टीले पर चढ़ गया और उसने आवाज़ दी। हे क़ैला की सन्तान! (क़ैला मदीने वालों की एक घाटी थी) तुम जिसकी प्रतीक्षा में थे वह आ गया है। इस आवाज़ के सुनते ही मदीने का हर व्यक्ति 'क़बा' की ओर दौड़ पड़ा। 'क़बा' निवासी इस विचार से कि ख़ुदा का नबी उनमें ठहरने के लिए आया है ख़ुशी से फूले न समाते थे।

इस अवसर पर एक बात ऐसी हुई जो रसूले करीम (स.अ.व.) की सादगी पर प्रकाश डालती थी। मदीने के अधिकतर लोग आप की शक्ल से परिचित न थे। जब 'क़बा' से बाहर आप एक वृक्ष के नीचे बैठे थे और लोग दौड़ते हुए मदीने से आप की ओर आ रहे थे तो चूंकि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अत्यधिक सादगी से बैठे हुए थे उनमें से अपरिचित लोग हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] को देख कर जो आयु में यद्यपि छोटे थे, परन्तु उनकी

दाढ़ी में कुछ सफेद बाल आए हुए थे और इसी प्रकार उनका लिबास रसूले करीम (स.अ.व.) के लिबास से कुछ अच्छा था यही समझते थे कि अबू बक़र[रज़ि.] रसूलुल्लाह (स.अ.व.) हैं बड़ी शालीनता से आप की ओर मुख करके बैठ जाते थे। हज़रत अबू बकर ने जब यह बात देखी तो समझ लिया कि लोगों को ग़लती लग रही है। वह तुरन्त चादर फैलाकर सूरज के सामने खड़े हो गए और कहा— हे अल्लाह के रसूल! आप पर धूप पड़ रही है, मैं आप पर छाया करता हूँ[1] और उन्होंने इस उत्तम उपाय द्वारा लोगों को उनकी ग़लती का आभास करा दिया। 'क़बा' में दस दिन रहने के पश्चात् मदीना के लोग रसूले करीम (स.अ.व.) को मदीना ले गए। जब आप ने मदीना में प्रवेश किया तो मदीना के समस्त मुसलमान क्या पुरुष तथा क्या स्त्रियां और क्या बच्चे सब गलियों में खड़े अभिनन्दन कर रहे थे। बच्चे और स्त्रियां ये काव्य-पंक्तियां गा रहे थे।

طَلَعَ الْبَدْرُ عَلَيْنَا مِنْ ثَنِيَّاتِ الْوَدَاع
وَجَبَ الشُّكْرُ عَلَيْنَا مَا دَعَا لِلّٰهِ دَاع
ايُّها الْمَبْعُوْثُ فِيْنا جِئْتَ بِالْاَمْرِ الْمُطَاع[2]

अर्थात् चौदहवीं रात (पूर्णिमा) का चन्द्रमा हम पर 'वदाअ' के मोड़ से चढ़ा है और जब तक ख़ुदा से ओर सो बुलाने वाला संसार में कोई मौजूद रहे, हम पर इस उपकार की कृतज्ञता अनिवार्य है और हे वह जिसे ख़ुदा ने हम में भेजा है तेरे आदेश का पूर्णरूप से पालन किया जाएगा।

रसूले करीम (स.अ.व.) ने जिस ओर से मदीना में पूरब की ओर से प्रवेश नहीं किया था परन्तु चौदहवीं रात (पूर्णिमा) का चन्द्रमा तो पूरब से चढ़ा करता है। अतः मदीना के लोगों का संकेत उस ओर था कि वास्तविक चन्द्रमा तो आध्यात्मिक चन्द्रमा है। हम अब तक अंधकार में

---

①-बुख़ारी बाब-हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम व अस्हाबिही इलल मदीनः।
②-ज़रक़ानी जिल्द प्रथम, पृष्ठ-35

थे। अब हमारे लिए चन्द्रमा चढ़ा है और चन्द्रमा भी उस ओर से चढ़ा है जिस ओर से वह चढ़ा नहीं करता। यह सोमवार का दिन था जब रसूले करीम (स.अ.व.) ने मदीना में प्रवेश किया और सोमवार के दिन ही आप ग़ारे-सौर (सौर की गुफ़ा) से निकले थे। यह बड़ी विचित्र बात है कि सोमवार ही के दिन आप के द्वारा मक्का विजय हुआ। जब आप ने मदीना में प्रवेश किया तो प्रत्येक व्यक्ति की यही अभिलाषा थी कि आप उसके घर में ठहरें। आपकी ऊँटनी जिस-जिस गली में गुज़रती थी उस गली के भिन्न-भिन्न परिवार अपने घरों के आगे खड़े होकर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का अभिनन्दन करते थे और कहते थे— हे अल्लाह के रसूल ! यह हमारा घर है और यह हमारा माल है और ये हमारे प्राण हैं जो आप की सेवा के लिए उपस्थित हैं। हे अल्लाह के रसूल ! हम आप की रक्षा करने के योग्य हैं आप हमारे ही पास ठहरें। कुछ लोग जोश में आगे बढ़ते और आप की ऊँटनी की बाग पकड़ लेते ताकि आपको अपने घर में उतार लें, परन्तु आप प्रत्येक व्यक्ति को यही उत्तर देते कि मेरी ऊँटनी को छोड़ दो यह आज ख़ुदा तआला के आदेश पर है। यह वहीं खड़ी होगी जहां ख़ुदा की इच्छा होगी।

अन्ततः मदीना के एक सिरे पर बनू नज्जार के अनाथों की एक भूमि के पास जाकर ऊँटनी रुक गई। आपने फ़रमाया— ख़ुदा की यही इच्छा मालूम होती थी कि हम यहाँ ठहरें। पुनः फ़रमाया— यह भूमि किस की है? भूमि कुछ अनाथों की थी, उन का अभिभावक आगे बढ़ा और उस ने कहा— अल्लाह के रसूल ! यह अमुक-अमुक अनाथ की भूमि है तथा आप की सेवा के लिए उपस्थित है। आप ने फ़रमाया— हम किसी का माल मुफ़्त नहीं ले सकते। अतः उस का मूल्य निर्धारित किया गया तथा आप ने उस स्थान पर मस्जिद और अपने मकान बनाने का निर्णय किया।

हज़रत अबू अय्यूबरज़ि. अन्सारी के मकान पर ठहरना

तत्पश्चात् आप ने फ़रमाया— सब से निकट किस का घर है? अबू अय्यूब अन्सारी आगे बढ़े और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरा घर सबसे निकट है तथा आप की सेवा के लिए उपस्थित है। आप ने फ़रमाया— घर जाओ और हमारे लिए कोई कमरा तैयार करो। अबू अय्यूब का मकान दो मंज़िला था, उन्होंने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के लिए ऊपर की मंज़िल प्रस्तावित की परन्तु आप ने इस विचार से कि मिलने वालों को कष्ट होगा नीचे की मंज़िल पसन्द की।

अन्सार को रसूल करीम (स.अ.व.) के अस्तित्व से अत्यधिक प्रेम हो गया था, इस का प्रदर्शन इस अवसर पर भी हुआ । रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के आग्रह पर हज़रत अबू अय्यूब मान तो गए कि आप निचली मंज़िल में ठहरें, परन्तु सारी रात पति-पत्नी इस विचार से जागते रहे कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम उन के नीचे सो रहे हैं अतः वे किस प्रकार ऐसी अशिष्टता कर सकते हैं कि वे छत के ऊपर सोएं। रात को एक पानी का बर्तन गिर गया तो इस विचार से कि छत के नीचे पानी न टपकने लगे हज़रत अबू अय्यूबरज़ि. ने दौड़ कर अपना लिहाफ़ उस पानी पर डाल कर पानी की तरलता को सुखाया। प्रातः काल वे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हुए और सारा वृत्तान्त सुनाया जिस पर रसूले करीम (स.अ.व.) ने ऊपरी मंज़िल पर जाना स्वीकार कर लिया। फिर हज़रत अबू अय्यूबरज़ि. प्रतिदिन भोजन तैयार करते और आप के पास भेजते, फिर जो आप का बचा हुआ भोजन आता वह सारा घर खाता। कुछ दिनों के पश्चात् आग्रह करके शेष अन्सार ने भी अतिथि-सत्कार में अपने भाग की माँग की और जब तक रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अपने घर का प्रबंध न हो गया मदीना के मुसलमान बारी-बारी आपस. के

घर में खाना पहुँचाते रहे।[①]

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के आचरण पर आपके सेवक हज़रत अनस[रज़ि.] की साक्ष्य

मदीना की एक विधवा स्त्री का अनस नामक इकलौता लड़का था। उसकी आयु आठ-नौ वर्ष थी वह उसे रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा में लाईं और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरे इस लड़के को अपनी सेवा के लिए स्वीकार करें। वह स्त्री अपने प्रेम के कारण अपने लड़के को बलिदान के लिए प्रस्तुत कर रही थी, परन्तु उसे क्या मालूम कि उसका लड़का बलिदान के लिए नहीं अपितु हमेशा के जीवन के लिए स्वीकार किया गया।

अनस[रज़ि.] रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की संगति में इस्लाम के बहुत बड़े विद्वान हुए और शनैः शनैः बहुत बड़े धनवान हो गए। उन्होंने एक सौ वर्ष से अधिक आयु पाई तथा इस्लामी शासन में बहुत आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। अनस[रज़ि.] का बयान है कि मैंने अल्पायु में रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया और आप के जीवन तक आप के साथ रहा, आप ने कभी मुझ से कठोरता का व्यवहार नहीं किया, कभी डांट-डपट नहीं की, कभी किसी ऐसे कार्य के लिए नहीं कहा जो मेरी सामर्थ्य से बाहर हो[②]। रसूले करीम (स.अ.व.) को मदीना में निवास के दिनों में केवल अनस[रज़ि.] से सेवा लेने का अवसर प्राप्त हुआ तथा इस संबंध में आप[स.] के आचरण पर अनस[रज़ि.] की गवाही अत्यधिक प्रकाश डालने वाली है।

---

①-हिजरत की घटनाओं के लिए देखो बुख़ारी बाब हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम तथा ज़रकानी जिल्द प्रथम 'हिजरत की घटना'

②-मुस्लिम जिल्द द्वितीय, किताबुल फ़ज़ाइल

मक्का से परिवार को बुलाना तथा मस्जिद-ए-नबवी[स.] की नींव रखना

कुछ समय पश्चात् आप[स.] ने अपने आज़ाद किए दास 'ज़ैद' को मक्का में भेजा कि वह आप के परिवार को ले आए। चूंकि मक्का वाले इस अचानक हिजरत के कारण कुछ घबरा गए थे। इसलिए कुछ समय तक अत्याचारों का सिलसिला बन्द रहा तथा इसी घबराहट के कारण वे रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और हज़रत अबू बकर के ख़ानदान के मक्का छोड़ने में बाधक नहीं बने तथा ये लोग कुशलतापूर्वक मदीना पहुँच गए। इस अवधि में (मदीना में) जो भूमि नबी करीम (स.अ.व.) ने ख़रीदी थी, आप ने सर्वप्रथम वहाँ मस्जिद का शिलान्यास किया। तत्पश्चात् अपने लिए तथा अपने साथियों के लिए मकान बनवाए, जिस पर लगभग सात मास का समय लगा।①

मदीना के द्वैतवादी क़बीलों का इस्लाम में प्रवेश

आप के मदीना में प्रवेश करने के पश्चात् कुछ ही दिनों में मदीना के द्वैतवादी क़बीलों में से अधिकांश लोग मुसलमान हो गए। जो हृदय से मुसलमान न हुए थे वे प्रकट रूप में मुसलमानों हो गए और इस प्रकार पहली बार मुसलमानों में द्वैमुखी लोगों (मुनाफ़िकों) का एक समूह संगठित हुआ जो बाद के युग में कुछ तो यथार्थ रूप में ईमान ले आए और कुछ लोग हमेशा मुसलमानों के विरुद्ध योजनाएँ बनाते और षड्यंत्र रचते रहे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो प्रत्यक्ष में भी इस्लाम नहीं लाए परन्तु ये लोग मदीना में इस्लाम के वैभव को सहन न कर सके तथा मदीना से

①-बुख़ारी बाब हिजरतुन्नबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम तथा ज़रक़ानी जिल्द प्रथम पृष्ठ-369

पलायन करके मक्का चले गए। इस प्रकार मदीना संसार का प्रथम नगर था जिसमें शुद्ध रूप से एक ख़ुदा की उपासना होने लगी। निश्चय ही उस समय समस्त संसार में इस नगर के अतिरिक्त अन्य कोई नगर या गांव शुद्ध रूप से एक ख़ुदा की उपासना करने वाला नहीं था। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के लिए यह कितनी बड़ी ख़ुशी तथा उनके साथियों की दृष्टि में यह कितनी महान सफलता थी कि मक्का से हिजरत करने के कुछ ही दिनों के बाद ख़ुदा तआला ने उनके द्वारा एक नगर को सर्वशक्तिमान ख़ुदा का उपासक बना दिया जिसमें अन्य किसी मूर्ति की पूजा नहीं की जाती थी, न प्रत्यक्ष मूर्ति की न अप्रत्यक्ष मूर्ति की, परन्तु इस परिवर्तन से यह नहीं समझना चाहिए कि मुसलमानों के लिए अब अमन आ गया था। मदीना में अरबों में से भी द्वैमुखी लोगों का एक ऐसा समूह मौजूद था जो आप के प्राणों का घातक था तथा यहूद भी गुप्त रूप से षड्यंत्र रच रहे थे। अतः इस ख़तरे का आभास करते हुए आप[स.] स्वयं भी सतर्क रहते थे और अपने साथियों को भी सतर्क रहने पर बल देते थे। प्रारम्भ में कुछ दिन ऐसे भी आए कि आप को रात भर जाग पड़ा। एक बार ऐसी ही अवस्था में जब आप को जागते रहने के कारण थकान महसूस हुई तो आप ने फ़रमाया— इस समय यदि कोई वफ़ादार व्यक्ति पहरा देता तो मैं सो जाता। थोड़ी देर में शस्त्रों की झनकार सुनाई दी। आप ने पूछा कौन है? तो आवाज़ आई, हे अल्लाह के रसूल ! मैं सअद बिन वक़्क़ास हूँ जो आप का पहरा देने के लिए आया हूँ। इस पर आप ने आराम किया। अन्सार को स्वयं भी यह महसूस हो रहा था कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का मदीना में निवास हम पर एक बहुत बड़ा दायित्व डालता है और यह कि आप[स.] मदीना में शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित नहीं हैं। अतः उन्होंने परस्पर निर्णय करके विभिन्न क़बीलों की पारियां नियुक्त कर दीं। प्रत्येक क़बीले के कुछ लोग अपनी-अपनी पारी पर आप के घर का पहरा देते थे।

अत: मक्की और मदनी जीवन में यदि कोई अन्तर था तो केवल यह कि अब मुसलमान ख़ुदा के नाम पर बनाई गई मस्जिद में दूसरे लोगों के हस्तक्षेप के बिना पाँचों समय नमाज़ें अदा करते थे।

मक्का वालों की मुसलमानों को पुन: कष्ट देने की योजनाएं

दो-तीन माह व्यतीत होने के पश्चात् मक्का के लोगों का कष्ट दूर हुआ तथा उन्होंने नए सिरे से मुसलमानों को कष्ट देने के उपाय सोचना आरम्भ कर दिए परन्तु परामर्श के पश्चात् उन्हें महसूस हुआ कि केवल मक्का और मक्का के आस-पास में मुसलमानों को कष्ट देना उन्हें अपने उद्देश्य में सफल नहीं कर सकता। वे इस्लाम को तभी मिटा सकते हैं जब मदीना से मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को निकलवा दें। अत: यह परामर्श करके मक्का के लोगों ने अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के नाम जिसके सन्दर्भ में पहले बताया जा चुका है कि रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के आगमन से पूर्व मदीना वालों ने उसे अपना बादशाह बनाने का निर्णय किया था और उसे ध्यान दिलाया कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के मदीना जाने के कारण मक्का के लोगों को बहुत आघात पहुँचा है। मदीना के लोगों के लिए उचित न था कि वे आपको और आप के साथियों को शरण देते उसके अन्त में ये शब्द थे —

اِنَّكُمْ اٰوَيْتُمْ صَاحِبَنَا وَاِنَّا نُقْسِمُ بِاللّٰهِ لَنُقَاتِلَنَّهٗ اَوْ نُخْرِجَنَّهٗ اَوْ لَنَسِيرَنَّ
اِلَيْكُمْ بِاَجْمَعِنَا حَتّٰى نَقْتُلَ مَقَاتِلَتَكُمْ وَ نَسْتَبِيْحَ نِسَآءَ كُمْ۔

अर्थात् अब जब कि तुम लोगों ने हमारे आदमी (मुहम्मद रसूलुल्लाह स.अ.व.) को अपने घरों में शरण दी है, हम ख़ुदा की सौगन्ध खाकर यह घोषणा करते हैं कि या तो तुम मदीना के लोग उस के साथ लड़ाई करो या उसे अपने नगर से निकाल दो, अन्यथा हम सब संयुक्त रूप

मदीना पर आक्रमण करेंगे और मदीना के समस्त योद्धाओं का वध कर देंगे तथा स्त्रियों को दासियां बना लेंगे। इस पत्र के मिलने पर अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल की नीयत कुछ ख़राब हो गई और उसने दूसरे मुनाफ़िक़ों (द्वैमुखी लोगों) से परामर्श किया कि यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को यहाँ रहने दिया तो हमारे लिए ख़तरों का द्वार खुल जाएगा। इसलिए आवश्यक है कि हम आपके साथ लड़ाई करें तथा मक्का वालों को प्रसन्न करें। रसूले करीम (स.अ.व.) को इस बात की सूचना मिल गई। आप[स.] अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के पास गए और उसे समझाया कि तुम्हारा यह कृत्य तुम्हारे ही लिए हानिप्रद होगा क्योंकि तुम जानते हो कि मदीना के अधिकांश लोग मुसलमान हो चुके हैं तथा इस्लाम के लिए प्राण देने के लिए तैयार हैं। यदि तुम ऐसा करोगे तो वे लोग प्रवासियों (मुहाजिरों) के साथ होंगे और तुम लोग इस लड़ाई को प्रारम्भ करके बिल्कुल तबाह हो जाओगे। अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल पर अपनी ग़लती प्रकट हो गई और इस इरादे से पृथक हो गया।

अन्सार तथा मुहाजिरीन (प्रवासियों) में भ्रातृभाव[1] का व्यवस्थापन

इन्हीं दिनों में रसूले करीम (स.अ.व.) ने इस्लाम की दृढ़ता के लिए एक और उपाय किया और वह यह कि आप ने समस्त मुसलमानों को एकत्र किया और दो-दो लोगों को परस्पर भाई-भाई बना दिया। इस भ्रातृत्व अर्थात् इस भाई-चारे का अन्सार ने ऐसी प्रसन्नता से अभिनन्दन किया कि प्रत्येक अन्सारी अपने भाई को अपने घर ले गया और अपनी सम्पत्ति उसके समक्ष प्रस्तुत कर दी कि इसे आधा-आधा बांट दिया जाए। एक अन्सारी ने तो अपने प्रवासी भाई से यहां तक सद्व्यवहार किया कि

①-इब्ने हिशाम जिल्द प्रथम पृष्ठ-179

मैं अपनी दो पत्नियों में से एक को तलाक़ दे देता हूँ तुम उस से विवाह कर लो परन्तु मुहाजिरों (प्रवासियों) ने उन की इस निष्कपट भावना का आभार प्रकट करके उनकी जायदादों में भाग लेने से इन्कार कर दिया परन्तु फिर भी अन्सार① हठ करते रहे तथा उन्होंने रसूले करीम (स.अ.व.) से कहा कि हे अल्लाह के रसूल ! जब ये मुहाजिर हमारे भाई हो गए तो यह किस प्रकार हो सकता है कि हमारे माल में भागीदार न हों। हाँ चूंकि ये खेतीबाड़ी करने से परिचित नहीं तथा व्यवसायी और व्यापारी लोग हैं, यदि ये हमारी भूमि में भागीदारी नहीं करते तो फिर हमारे ज़मीनों की जो आय हो उसमें उन्हें अवश्य भागीदार बनाया जाए। मुहाजिरों ने इस पर भी उन के साथ भागीदार बनना पसन्द न किया तथा अपने पूर्वजों के व्यापार के व्यवसाय में लग गए तथा थोड़े ही दिनों में उनमें से कई धनवान हो गए परन्तु अन्सार उस भाग के बटवारे पर इतना अधिक बल दे रहे थे कि कुछ अन्सार जो स्वर्गवासी हो गए उनकी सन्तानों ने अरब की प्रथा के अनुसार अपने मुहाजिर भाइयों को स्वर्गवासी लोगों की जायदाद में से भाग दिया और कई वर्ष तक इस का पालन होता रहा, यहाँ तक कि क़ुर्आन करीम में इस रिवाज के निरस्तीकरण का आदेश हुआ।

मुहाजिरों, अन्सार तथा यहूदियों के मध्य परस्पर समझौता

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने मुसलमानों को परस्पर भाई-भाई बनाने के अतिरिक्त समस्त मदीना-वासियों के मध्य एक समझौता कराया आप ने यहूदियों और अरबों के सरदारों को एकत्र किया और फ़रमाया— पहले यहां दो गिरोह थे परन्तु अब तीन हो गए हैं अर्थात् पहले तो यहां केवल यहूदी तथा मदीना के अरब लोग रहते थे परन्तु अब यहूदी,

①-अन्सार- मदीने के मुसलमान लोग (अनुवादक)

मदीना के अरब और मक्का के प्रवासी तीन गिरोह हो गए हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि परस्पर एक संधि पत्र तैयार किया जाए। अस्तु समझौते के अनुसार एक सन्धि-पत्र लिखा गया। जिसके शब्द ये हैं —

"मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम, मोमिनों तथा उन समस्त लोगों— जो उन में प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित हो जाएँ— के मध्य समझौता-पत्र

☆ मुहाजिरों (प्रवासियों) से यदि कोई क़त्ल हो जाए तो वे उस क़त्ल के स्वयं उत्तरदायी होंगे तथा अपने बन्दियों को स्वयं छुड़ाएंगे तथा मदीना के विभिन्न मुसलमान क़बीले भी इसी प्रकार इन बातों में अपने क़बीलों के उत्तरदायी होंगे, ☆ जो व्यक्ति उपद्रव फैलाए या शत्रुता को जन्म दे और व्यवस्था भंग करे, तो समझौता करने वाले समस्त लोग उसके विरुद्ध खड़े हो जाएंगे चाहे वह उनका अपना बेटा ही क्यों न हो। ☆ यदि कोई काफ़िर मुसलमान के हाथ से मारा जाए तो उसके मुसलमान परिजन मुसलमान से बदला नहीं लेंगे और न किसी मुसलमान के मुक़ाबले में ऐसे काफ़िरों की सहायता करेंगे। ☆ यदि कोई यहूदी हमारे साथ मिल जाए तो हम सब उसकी सहायता करेंगे। यहूदियों को इस प्रकार का कष्ट नहीं दिया जाएगा, न उनके किसी विरोधी शत्रु की सहायता की जाएगी, ☆ कोई ग़ैर मोमिन मक्का के लोगों को अपने घर में शरण नहीं देगा, न उनकी जायदाद अपने पास बतौर धरोहर के रखेगा और न काफ़िरों तथा मोमिनों की लड़ाई में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेगा। ☆ यदि कोई व्यक्ति किसी मुसलमान को अनुचित तौर पर मार दे तो समस्त मुसलमान

मिलकर उसके विरुद्ध कार्यवाही का प्रयास करेंगे। ☆यदि एक द्वैतवादी (मुश्रिक) शत्रु मदीना पर आक्रमण करे तो यहूदी मुसलमान का साथ देंगे तथा अपने निश्चित भाग के अनुसार व्यय वहन करेंगे। ☆यहूदी क़बीले जो मदीना के विभिन्न क़बीलों के साथ समझौता कर चुके हैं उनके अधिकार मुसलमानों के अधिकारों के समान होंगे। ☆यहूदी अपने धर्म पर बने रहेंगे और मुसलमान अपने धर्म पर। ☆जो अधिकार यहूदियों को प्राप्त होंगे वही उन के अनुयायियों को भी प्राप्त होंगे। ☆मदीना के लोगों में से कोई व्यक्ति मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की आज्ञा के बिना कोई लड़ाई आरम्भ नहीं कर सकेगा परन्तु इस शर्त के अन्तर्गत कोई व्यक्ति उसके बदला से वंचित नहीं किया जाएगा। ☆यहूदी अपने संगठन में अपने ख़र्चे स्वयं वहन करेंगे और मुसलमान अपने ख़र्चे स्वयं वहन करेंगे परन्तु लड़ाई की अवस्था में वे दोनों मिलकर कार्य करेंगे। ☆मदीना उन समस्त लोगों के लिए जो इस समझौता में सम्मिलित होते हैं एक प्रतिष्ठित स्थान होगा। ☆जो अनजान लोग शहर के लोगों की सहायता में आ जाएँ उनके साथ भी वही व्यवहार होगा जो शहर के मूल निवासियों के साथ होगा परन्तु मदीना के लोगों को यह अनुमति न होगी कि किसी स्त्री को उसके परिजनों की सहमति के विपरीत अपने घरों में रखें। ☆झगड़े और फ़साद निर्णय के लिए ख़ुदा और उसके रसूल के पास प्रस्तुत किए जाएँगे। ☆मक्का वालों तथा उसके मित्र क़बीलों के साथ इस समझौता में सम्मिलित होने वाले कोई समझौता नहीं करेंगे क्योंकि इस समझौता में सम्मिलित लोग मदीना के शत्रुओं के विरुद्ध इस समझौता द्वारा सहमत हो चुके हैं। ☆जिस प्रकार युद्ध पृथक तौर पर नहीं किया जा सकेगा

उसी प्रकार संधि भी पृथक तौर पर नहीं की जा सकेगी। परन्तु किसी को विवश नहीं किया जाएगा कि वह लड़ाई में सम्मिलित हो। ☆हाँ यदि कोई व्यक्ति अत्याचार का कोई कार्य करेगा तो वह दण्डनीय होगा। ख़ुदा निश्चय ही सदाचारी और धर्मनिष्ठों का रक्षक है और मुहम्मद (स.अ.व.) ख़ुदा के रसूल हैं।[①]

यह उस समझौते का सारांश है। इस समझौते में बार-बार इस बात पर बल दिया गया था कि ईमानदारी और जीवन की स्पष्टता को हाथ से नहीं जाने दिया जाएगा तथा अत्याचारी अपने अत्याचार का स्वयं उत्तरदायी होगा। इस समझौते से स्पष्ट है कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की ओर से यह निर्णय हो चुका था कि यहूदियों तथा मदीना के उन लोगों के साथ जो इस्लाम में सम्मिलित न हों, प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार किया जाएगा तथा उन्हें भाइयों की तरह रखा जाएगा। परन्तु बाद में यहूदियों के साथ जितने भी झगड़े पैदा हुए उसके उत्तरदायी सर्वथा यहूदी ही थे।

मक्का वालों की ओर से नए सिरे से उपद्रवों का प्रारम्भ

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है दो-तीन माह के पश्चात् जब मक्का वालों की परेशानी दूर हुई तो उन्होंने इस्लाम के विरुद्ध पुनः एक नया मोर्चा संगठित किया। अतः उन्हीं दिनों में मदीने के एक रईस 'सअद बिन मआज़[रज़ि.] जो औस क़बीले के सरदार थे का'बा का तवाफ़ (परिक्रमा) करने के लिए मक्का गए तो अबूजहल ने उन्हें देख कर क्रुद्ध होकर कहा— क्या तुम लोग यह सोचते हो कि उस धर्म से विमुख हुए (मुहम्मद रसूलुल्लाह स.अ.व.) को शरण देने के पश्चात् तुम लोग शान्तिपूर्वक

①-इब्ने हिशाम जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-178

काबे का तवाफ़ कर सकोगे और तुम यह सोचते हो कि तुम उसकी सुरक्षा और सहायता की शक्ति रखते हो। ख़ुदा की सौगंध यदि इस समय तुम्हारे साथ अबू सफ़वान न होता तो तू अपने घर वालों के पास बच कर न जा सकता। सअद बिन मआज़[रज़ि.] ने कहा— ख़ुदा की क़सम यदि तुम ने हमें का'बा से रोका तो स्मरण रखो फिर तुम्हें भी तुम्हारे शाम के मार्ग पर अमन प्राप्त नहीं हो सकेगा। उन्हीं दिनों वलीद बिन मुग़ीरह मक्का का एक बहुत बड़ा रईस बीमार हुआ और उसने महसूस किया कि उसकी मृत्यु निकट है। एक दिन मक्का के बड़े-बड़े धनवान लोग उसके पास बैठे थे, वह अचानक रोने लग गया। मक्का के ये लोग आश्चर्यचकित हुए तथा उस से पूछा कि आप रोते क्यों है? वलीद ने कहा— क्या तुम समझते हो कि मैं मृत्यु के भय से रोता हूँ। ख़ुदा की क़सम ऐसा कदापि नहीं। मुझे तो यह चिन्ता है कि कहीं ऐसा न हो कि मुहम्मद (स.अ.व.) का धर्म फैल जाए और मक्का भी उसके अधिकार में चला जाए। अबू सुफ़ियान ने उत्तर में कहा— इस बात की चिन्ता न करो। जब तक हम जीवित हैं ऐसा नहीं होगा और हम इस बात के लिए वचनबद्ध हैं। इन समस्त घटनाओं से सिद्ध होता है कि मक्का के लोगों के अत्याचारों में जो अन्तराल हुआ था वह अस्थायी था। जाति को पुनः उकसाया जा रहा था, मरने वाले धनाढ्य लोग मृत्यु शैया पर भी मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का विरोध जारी रखने की क़समें ले रहे थे, मदीना के लोगों को मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के विरुद्ध लड़ाई पर तैयार किया जा रहा था और उनके इन्कार पर धमकियां दी जा रही थीं कि मक्का वाले और उनके मित्र क़बीले मदीना पर सैन्य आक्रमण करेंगे मदीना के पुरुषों को मार देंगे तथा स्त्रियों को बन्दी बना कर दासियां बना लेंगे।

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सुरक्षात्मक योजनाएँ

ऐसी परिस्थितियों में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर मदीना की सुरक्षा-व्यवस्था का बड़ा भारी दायित्व आ पड़ा !! अत: आप ने अपने साथियों को छोटे-छोटे दलों के रूप में मक्का के आस-पास भिजवाना आरम्भ किया ताकि आपको मक्का वालों की गतिविधियों का ज्ञान होता रहे। कई बार इन लोगों का मक्का के यात्री-दलों से या मक्का के कुछ समूहों से आमना-समना भी हो जाता और एक-दूसरे को देख लेने के पश्चात् लड़ाई तक भी नौबत पहुँच जाती। ईसाई लेखक लिखते हैं कि यह मुहम्मद रसूलुल्लाह की ओर से छेड़-छाड़ थी। क्या मक्का में मुसलमानों पर तेरह वर्ष तक अत्याचार किया गया वह मदीना के लोगों को मुसलमानों के विरुद्ध खड़ा करने का जो प्रयास किया गया और फिर मदीना पर आक्रमण करने की जो धमकियां दी गईं, उन घटनाओं की उपस्थिति में आपका सतर्क रहने के लिए दलों का भेजना छेड़-छाड़ कहला सकता है? संसार का कौन सा क़ानून है जो मक्का के तेरह वर्षीय अत्याचारों के पश्चात् भी मुसलमानों और मक्का वालों में लड़ाई छेड़ने के लिए किसी 'अतिरिक्त' कारण की आवश्यकता समझता हो। आज पश्चिमी देश स्वयं को बहुत अधिक सभ्य समझते हैं। जो कुछ मक्का में हुआ क्या उनसे आधी घटनाओं पर भी कोई जाति लड़े तो कोई व्यक्ति उसे अपराधी ठहरा सकता है? क्या यदि कोई सरकार किसी अन्य देश के लोगों को एक समूह का वध करने या अपने देश से बहिष्कृत कर देने पर विवश करे तो उस समूह को यह अधिकार प्राप्त नहीं कि वह उस से युद्ध की घोषणा करे? अत: मदीना में इस्लामी राज्य की स्थापना के पश्चात्

किसी नए कारण के उत्पन्न होने की आवश्यकता ही नहीं थी। मक्का के जीवन की घटनाएं मुसलमानों को पूर्ण अधिकार देती थीं कि वह मक्का वालों से युद्ध की घोषणा कर दें परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने धैर्य किया और केवल शत्रुओं की गतिविधियों का पता रखने की सीमा तक अपने प्रयास सीमित रखे, परन्तु जब मक्का वालों ने स्वयं मदीना के अरबों को मुसलमानों के विरुद्ध उत्तेजित किया, मुसलमानों को हज करने से रोक दिया तथा उन के उन व्यापारिक दलों ने जो व्यापार के लिए शाम में जाते थे अपने सीधे मार्ग को छोड़ कर मदीना के आस-पास के क़बीलों में से होकर गुज़रना और उन्हें मदीना वालों के विरुद्ध उकसाना आरम्भ किया तो मदीने की सुरक्षा के लिए मुसलमानों का भी कर्त्तव्य था कि वह उस लड़ाई की चुनौती को जो उन्हें मक्का वाले निरन्तर चौदह वर्ष से देते चले आ रहे थे स्वीकार कर लेते तो संसार के किसी व्यक्ति को हक़ नहीं, पहुँचता कि वह चुनौती स्वीकार करने पर आपत्ति जताए।

मदीना में इस्लामी शासन की नींव

नबी करीम (स.अ.व.) जहां बाह्य परिस्थितियों पर दृष्टि रखे हुए थे वहां मदीने के सुधार से भी असावधान नहीं थे। यह बताया जा चुका है कि मदीने के अधिकांश द्वैतवादी (मुश्रिक) शुद्ध हृदय से और कुछ छल-कपट के भाव के साथ मुसलमान हो चुके थे। इस लिए रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उनमें इस्लामी शासन-प्रणाली की स्थापना आरम्भ की। प्रथम अरबों के नियमानुसार लोग लड़-झगड़ कर अपने अधिकारों का निर्णय स्वयं कर लिया करते थे। अब नियमानुसार क़ाज़ी (न्यायाधीश) नियुक्त किए गए जिन के निर्णय के बिना कोई व्यक्ति दूसरे से अपना स्वत्त्व प्राप्त नहीं कर

सकता था। पहले मदीना के लोगों का ध्यान शिक्षा की ओर न था। अब इस बात का प्रबंध किया गया कि शिक्षित लोग अशिक्षित लोगों को शिक्षा देना आरम्भ करें। अत्याचार, अनीति और अन्याय रोक दिया गया। स्त्रियों के अधिकार निश्चित किए गए। समस्त धनवानों पर शरीअत के अनुसार कर निर्धारित किए गए जो निर्धनों पर व्यय किए जाते थे तथा शहर की सामान्य अवस्था के विकास के लिए भी उपयोग में लाए जाते थे, श्रमिक वर्ग के अधिकारों की रक्षा की गई, अनाथों के लिए शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया, लेन-देन में लिखित प्रपत्र तथा समझौते की पाबन्दियां निर्धारित की गईं, दासों पर होने वाले क्रूर व्यवहारों को बलपूर्वक रोका जाने लगा, स्वच्छता और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों पर बल दिया जाने लगा, जन-गणना का आरम्भ किया गया, गलियों और सड़कों को विस्तृत करने के आदेश जारी किए गए, सड़कों की सफाई से संबंधित आदेश जारी किए गए। फलतः पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के समस्त सिद्धान्तों का सम्पादन किया गया और उन्हें क्रमानुसार जारी करने के उपाय किए गए तथा अरब लोग पहली बार व्यवस्थित और सभ्य समाज के नियमों से परिचित हुए।

इधर रसूले करीम (स.अ.व.) अरब के लिए ऐसा कानून प्रस्तुत कर रहे थे जो न केवल उस युग के लिए अपितु हमेशा के लिए ; और न केवल उन के लिए अपितु संसार की अन्य जातियों के लिए भी सम्मान, प्रतिष्ठा, अमन और उन्नति का प्रेरक था। उधर मक्का के लोग इस्लाम के विरुद्ध पूर्ण संसाधनों के साथ युद्ध की तैयारियों में व्यस्त थे, जिसका परिणाम बदर-युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

क़ुरैश के व्यापारिक दल का आगमन तथा बदर का युद्ध①

हिजरत (प्रवास) के तेरहवें माह में शाम से एक व्यापारी-दल अबू सुफ़ियान के नेतृत्व में आ रहा था कि उसकी सुरक्षा के बहाने मक्का वालों ने एक शक्तिशाली सेना मदीने की ओर ले जाने का निर्णय किया। रसूले करीम (स.अ.व.) को भी इसकी सूचना प्राप्त हो गई तथा ख़ुदा तआला की ओर से आप पर वह्यी हुई। अब समय आ गया है कि शत्रु के अत्याचार का उत्तर उसी के शस्त्र से दिया जाए। अतः आप मदीना के थोड़े से साथियों को लेकर निकले। आप जब मदीना से निकले हैं तो उस समय तक यह स्पष्ट न था कि क्या मुक़ाबला व्यापारी दल से होगा या सुनिश्चित सेना से। इसलिए आप के साथ मदीना से तीन सौ लोग निकले।

यह नहीं समझना चाहिए कि व्यापारी दल से अभिप्राय माल से लदे हुए ऊँट थे अपितु मक्का वाले उन दलों के साथ एक शक्तिशाली सैनिक दल भिजवाया करते थे क्योंकि वे उन दलों के माध्यम से मुसलमानों को आतंकित भी करना चाहते थे। अतः इस व्यापारी दल से पूर्व इतिहास में दो दलों की चर्चा आती है कि उनमें से एक की सुरक्षा पर दो सौ सैनिक नियुक्त थे तथा दूसरे की सुरक्षा पर तीन सौ सैनिक नियुक्त थे। अतः इन परिस्थितियों में ईसाई लेखकों का यह लिखना कि तीन सौ सिपाही लेकर आप मक्का के एक शस्त्रविहीन क़ाफ़िले को लूटने के लिए निकले थे मात्र धोखा देना है। यह क़ाफ़िला चूंकि बहुत बड़ा था इसलिए पहले क़ाफ़िलों के सुरक्षा-दलों की संख्या को देखते हुए यह समझना चाहिए

①-इसके लिए देखिए इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-9 तथा अस्सीरतुल हलबिय्यह एवं तारीख़-ए-कामिल तिबरी ग़ज़्व-ए-बद्र

कि उसके साथ चार-पाँच सौ सवार अवश्य होंगे। इतने विशाल सुरक्षा-दल के साथ मुक़ाबला करने के लिए यदि इस्लामी सेना जो केवल तीन सौ लोगों पर आधारित थी, जिनके साथ पूरा समान भी न था निकली तो उसे लूट का नाम देना मात्र पक्षपात, द्वेष, हठ और अन्याय ही की संज्ञा दी जा सकती है। यदि केवल इस क़ाफ़िले का प्रश्न होता तब भी उस से लड़ाई युद्ध ही कहलाता और युद्ध भी आत्मरक्षात्मक युद्ध क्योंकि मदीने की सेना दुर्बल थी और केवल इसी उपद्रव को दूर करने के लिए निकली थी जिस से आस-पास के क़बीलों को उपद्रव करने पर उकसा कर मक्का के क़ाफ़िले फ़साद और दंगों की नींव रख रहे थे, परन्तु जैसा कि क़ुर्आन करीम से विदित होता है ख़ुदा की इच्छा भी थी कि क़ाफ़िले से नहीं अपितु मक्का का मूल सेना से मुकाबला हो और केवल मुसलमानों की वफ़ादारी और उन के ईमान को दर्शाने के लिए पहले से इस बात को प्रकट न होने दिया गया। जब मुसलमान पूर्ण तैयारी के बिना मदीना से निकल खड़े हुए तो कुछ दूर जाकर रसूले करीम (स.अ.व.) ने सहाबा[रज़ि.] पर स्पष्ट किया कि ख़ुदा की यही इच्छा है कि मक्का की असल सेना से ही सामना हो। सेना के संबंध में मक्का से जो सूचनाएं आ चुकी थीं उन से विदित होता था कि सेना की संख्या एक हज़ार से अधिक है और फिर वे सभी प्रशिक्षित अनुभवी सैनिक थे। रसूले करीम (स.अ.व.) के साथ आने वाले लोग मात्र तीन सौ तेरह (313) थे तथा उनमें से बहुत से ऐसे थे जो युद्ध कला से अपरिचित थे फिर उनके पास युद्ध सामग्री भी पूरी न थी। अधिकांश या तो पैदल थे या ऊँटों पर सवार थे, घोड़ा केवल एक था। इस छोटी सी सेना के साथ जो साधन विहीन भी थी, एक अनुभवी शत्रु का मुकाबला जो संख्या में उनसे तीन गुना से भी अधिक था अत्यन्त ख़तरनाक बात थी। इसलिए आप ने न चाहा कि कोई व्यक्ति उसकी इच्छा के विरुद्ध युद्ध के लिए विवश किया जाए। अतः आप ने अपने साथियों के समक्ष यह

प्रश्न प्रस्तुत किया कि अब क़ाफ़िले का कोई प्रश्न नहीं केवल सेना का ही मुक़ाबला किया जा सकता है और यह कि वे (साथी) इस संबंध में आप को परामर्श दें। एक के पश्चात् एक मुहाजिर (प्रवासी) खड़ा हुआ और उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल! यदि शत्रु हमारे घरों पर चढ़ आया है तो हम उस से भयभीत नहीं, हम उसका मुक़ाबला करने के लिए तैयार हैं। प्रत्येक का उत्तर सुनकर आप यही फ़रमाते चले जाते मुझे और परामर्श दो— मुझे और परामर्श दो। उस समय तक मदीने के लोग चुप थे इसलिए कि आक्रमणकारी सेना मुहाजिरों की सम्बन्धी (रिश्तेदार) थी। उन्हें शंका थी कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी बात से मुहाजिरों के हृदय को आघात पहुँचे। जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने बार-बार फ़रमाया— मुझे परामर्श दो तो एक अन्सारी (मदीना-निवासी मुसलमान) सरदार खड़े हुए और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! परामर्श तो आप को मिल रहा है परन्तु फिर भी आप[स.] जो परामर्श मांग रहे हैं तो कदाचित आप का संकेत हम मदीना निवासियों की ओर है। आप[स.] ने फ़रमाया— हाँ ! उस सरदार ने उत्तर में कहा— हे अल्लाह के रसूल ! कदाचित आप हमारा परामर्श इसलिए मांग रहे हैं कि आप के मदीना आने से पूर्व हमारे और आप के मध्य एक समझौता हुआ था और वह यह था कि यदि मदीना में आप पर या मुहाजिरों पर किसी ने आक्रमण किया तो हम आप की रक्षा करेंगे, परन्तु इस समय मदीना से बाहर निकल आए हैं और कदाचित वह समझौता इन परिस्थितियों के अन्तर्गत क़ायम नहीं रहता। हे अल्लाह के रसूल ! जिस समय वह समझौता हुआ था उस समय तक हम पर आप[स.] की वास्तविकता पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुई थी, परन्तु अब जब कि हम पर आप[स.] का स्थान और आप की शान पूर्ण रूप से स्पष्ट हो चकी है। हे अल्लाह के रसूल ! अब उस समझौते का कोई प्रश्न नहीं। हम मूसा[अ.] के साथियों की भांति आप से यह नहीं कहेंगे—

اِذْهَبْ اَنْتَ وَرَبُّکَ فَقَاتِلَا اِنَّا هٰهُنَا قَاعِدُوْنَ

तू और तेरा रब्ब जाओ और शत्रु से युद्ध करते फिरो हम तो यहीं बैठे हैं।

अपितु हम आप के दाएं भी लड़ेंगे, बाएं भी लड़ेंगे, आगे भी लड़ेंगे और पीछे भी लड़ेंगे। हे अल्लाह के रसूल ! शत्रु जो आप को हानि पहुँचाने पर कटिबद्ध है वह आप तक नहीं पहुँच सकता जब तक हमारी लाशों को रौंदता हुआ न गुज़रे। हे अल्लाह के रसूल ! युद्ध तो एक साधारण बात है, यहाँ से थोड़ी सी दूरी पर समुद्र है आप हमें आदेश दीजिए कि समुद्र में अपने घोड़े डाल दो, हम निःसंकोच अपने घोड़े समुद्र में डाल देंगे।[1] यह वह श्रद्धा, त्याग और बलिदान का आदर्श था जिसका उदारहरण कोई पूर्वकालीन नबी प्रस्तुत नहीं कर सकता। मूसा[अ.] के साथियों का उदाहरण तो उन्होंने स्वयं ही दे दिया था। हज़रत मसीह के हवारियों ने शत्रु के मुक़ाबले में जो नमूना दिखाया इन्जील उस पर गवाह है। एक हवारी ने तो कुछ रुपयों के बदले अपने उस्ताद (हज़रत मसीह) को बेच दिया, दूसरे ने उस पर फटकार डाली और दस हवारी उसे छोड़ कर इधर-उधर भाग गए परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथी केवल डेढ़ वर्ष की संगति के पश्चात ईमान में इतने दृढ़ हो गए कि वे उनके कहने पर समुद्र में कूद पड़ने के लिए भी तैयार थे।

यह परामर्श केवल इस उद्देश्य से था ताकि जो लोग ईमान में निबल हों उन्हें वापस जाने की अनुमति दे दी जाए। परन्तु जब मुहाजिर और अन्सार ने एक-दूसरे से बढ़कर वफ़ादारी और ईमान का आदर्श प्रस्तुत किया और दोनों पक्षों ने इस बात पर सहमति प्रकट की कि वे ख़ुदा के वादों के अनुसार शत्रु से केवल एक तिहाई($1/3$) होने के बावजूद, संसाधनों की दृष्टि से शत्रु से कई गुना कम होने के बावजूद निर्लज्जता दिखाते हुए

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द द्वितीय, पृष्ठ-12

युद्ध से पीठ नहीं दिखाएंगे अपितु ख़ुदा तआला के धर्म का स्वाभिमान प्रदर्शित करते हुए रणभूमि में सहर्ष प्राणों का बलिदान देंगे। अत: आप[स.] आगे बढ़े। आप जब बदर के स्थान पर पहुँचे तो एक सहाबी के परामर्श से शत्रु के निकट जा कर बदर के झरने पर इस्लामी सेना उतार दी गई, परन्तु इस प्रकार यद्यपि पानी पर तो क़ब्ज़ा हो गया परन्तु वह मैदान जो मुसलमानों के भाग में आया रेतीला होने के कारण युद्ध की गतिविधियों के लिए अत्यन्त हानिप्रद सिद्ध हुआ तथा सहाबा घबरा गए। रसूले करीम (स.अ.व.) सारी रात दुआ करते रहे और ख़ुदा से बार-बार विनय करते थे कि हे मेरे रब्ब ! समस्त संसार में केवल यही लोग तेरी उपासना करने वाले हैं। हे मेरे रब्ब ! यदि आज ये लोग इस युद्ध में मारे गए तो संसार में तेरा नाम लेने वाला कोई शेष न रहेगा①। अल्लाह तआला ने आपकी दुआएं सुनीं और रात को वर्षा हो गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि जिस मैदान में मुसलमान थे वह रेतीला होने के कारण वर्षा से जम गया और काफ़िरों का चिकनी मिट्टी वाला मैदान वर्षा के कारण अत्यधिक फिसलन वाला हो गया। कदाचित मक्का के काफ़िरों ने इस मैदान में मुसलमानों से पूर्व पहुँच जाने के बावजूद इस मैदान को इसलिए चुना था कि सख़्त मिट्टी के कारण उस में युद्ध संबंधी गतिविधियां नितान्त सरलतापूर्वक हो सकती थीं और सामने का रेतीला मैदान इसलिए छोड़ दिया था कि मुसलमान वहाँ डेरा लगा लेंगे तथा युद्ध संबंधी कार्यवाहियां करते समय उनके पैर रेत में धंस-धंस जाएंगे, परन्तु ख़ुदा तआला ने रातों-रात पासा पलट दिया। रेतीला मैदान एक ठोस मैदान बन गया और ठोस मैदान फिसलन वाली भूमि बन गई। रात को अल्लाह तआला ने आपको शुभ सन्देश दिया और बताया कि तुम्हारे अमुक-अमुक शत्रु मारे जाएंगे और अमुक-अमुक स्थान पर मर कर गिरेंगे। अत: युद्ध में ऐसा ही हुआ तथा वह शत्रु आपके बताए हुए

①-ज़रक़ानी जिल्द प्रथम, पृष्ठ-419 तथा इब्ने हिशाम, जिल्द द्वितीय, पृष्ठ-17

उन्हीं स्थानों पर मारे गए। जब सेना एक दूसरे के मुकाबले पर खड़ी हुई, उस समय सहाबा[रज़ि] ने जिस श्रद्धा का प्रदर्शन किया उस पर निम्नलिखित उदाहरण से भली-भांति प्रकाश पड़ता है।

इस्लामी सेना में कुछ अनुभवी सेनानी थे। उनमें से एक हज़रत 'अब्दुर्रमान बिन औफ़' भी थे जो मक्का के सरदारों में से थे। वह वर्णन करते हैं कि मेरा विचार था कि आज मुझ पर बहुत ही बड़ी ज़िम्मेदारी आती है। इस विचार से मैंने अपने दाएं-बाएं देखा तो मुझे विदित हुआ कि मेरे दाएं-बाएं मदीना के दो नौजवान लड़के हैं। तब सीने में मेरा हृदय बैठ गया और मैंने कहा कि वीर सेनानी लड़ने के लिए इस बात का मुहताज होता है कि उस का दायां और बायां पहलू दृढ़ हो ताकि वह शत्रुओं की पंक्तियों में निर्भीकता से घुस सके, परन्तु मेरे पास तो मदीने के दो ऐसे लड़के हैं जिन्हें कोई अनुभव भी नहीं। अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन किस प्रकार कर सकूँगा। अभी यह विचार मेरे हृदय में आया ही था कि मेरे एक पहलू में खड़े हुए लड़के ने मेरी पसली में कुहनी मारी। जब मैंने उसकी ओर ध्यान दिया तो उसने मेरे कान में कहा— चाचा हम ने सुना है अबू जहल रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को बहुत दु:ख दिया करता था। चाचा ! मेरा दिल चाहता है कि मैं आज उसके साथ मुक़ाबला करूँ। आप मुझे बताएं वह कौन है? वह कहते हैं कि अभी मैं उत्तर नहीं दे पाया था कि मेरे दूसरे पहलू में खड़े दूसरे साथी ने कुहनी मारी और जब मैं उसकी तरफ मुड़ा तो उसने भी आहिस्ता से मुझ से वही प्रश्न किया। वह कहते हैं— मैं उनकी इस दिलेरी पर स्तब्ध रह गया क्योंकि अनुभवी सिपाही होने के बावजूद मैं सोच भी नहीं सकता था कि सेना के सेनापति पर अकेले आक्रमण कर सकता हूँ। वह कहते हैं मैंने उन के इस प्रश्न पर उंगली उठाई और कहा— वह व्यक्ति जो सर से पैर तक सशस्त्र है और शत्रुओं की पंक्तियों के पीछे खड़ा है तथा जिसके आगे दो अनुभवी सैनिक नंगी तलवारें लिए

खड़े हैं, वही 'अबू जहल' है। वह कहते हैं अभी मेरी उंगली नीचे नहीं गिरी थी कि वे दोनों लड़के जिस प्रकार शिकारी पक्षी श्येन चिड़िया पर आक्रमण करता है उस प्रकार से ललकारते हुए शत्रु की पंक्तियों में घुस गए। उन का यह आक्रमण ऐसा सहसा और अप्रत्याशित था कि उनके विरुद्ध किसी व्यक्ति की तलवार न उठ सकी और वे सनसनाते हुए वाण के समान अबूजहल तक जा पहुँचे। उसके अंग रक्षकों ने उन पर प्रहार किए। एक का प्रहार खाली गया तथा दूसरे पहरेदार के प्रहार से एक युवक का हाथ कट गया, परन्तु दोनों में से किसी ने कोई परवाह न की और केवल अबूजहल को लक्ष्य बनाते हुए उस पर इतनी तीव्रता से आक्रमण किया कि वह गिर गया फिर उन्होंने उसे बहुत बुरी तरह घायल कर दिया। परन्तु तलवार चलाने की कला का अनुभव न होने के कारण उसका वध न कर सके।

इस घटना से विदित होता है कि वे अत्याचार जो मक्का के लोग मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर करते रहते थे, वे निकट से देखने वालों को कितने भयानक दिखाई देते थे। अब भी उन अत्याचारों को इतिहास में पढ़कर एक सज्जन मनुष्य का हृदय कांपने लगता है और रोंगटे खड़े हो जाते हैं परन्तु मदीने के लोग तो उन लोगों के मुख से उन अत्याचारों के वृत्तान्त सुनते थे जिन्होंने वे अत्याचार अपनी आँखों से देखे थे। एक ओर रसूले करीम (स.अ.व.) का पवित्र और मैत्रीपूर्ण जीवन देखते थे तथा दूसरी ओर मक्का वालों की अमानवीय नृशंस घटनाएं सुनते थे तो उनके हृदय इस खेद से भर जाते थे कि अपने मैत्रीपूर्ण और शान्त स्वभाव के कारण हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उसकी प्रतिक्रिया का प्रदर्शन नहीं किया। काश ! व हमारे सामने आ जाएं तो हम उन्हें बताएं कि यदि उनके अत्याचारों का प्रत्युत्तर नहीं दिया गया तो उसका कारण यह नहीं था कि मुसलमान कमज़ोर थे अपितु उसका कारण यह था कि

मुसलमानों को ख़ुदा तआला की ओर से उनका प्रत्युत्तर देने की आज्ञा नहीं थी। मुसलमानों के हृदयों की दशा का अनुमान इस बात से भी हो सकता है कि युद्ध आरम्भ होने से पूर्व अबू-जहल ने एक बद्दू सरदार को इस बात के लिए भेजा कि वह अनुमान लगाए कि मुसलमानों की संख्या कितनी है। जब वह वापस पहुँचा तो उसने बताया कि मुसलमान तीन सौ या सवा तीन सौ के लगभग होंगे। इस पर अबू जहल और उसके साथियों ने प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि मुसलमान अब हम से बचकर कहां जाएंगे, परन्तु उस व्यक्ति ने कहा— हे मक्का वालो ! मेरी नसीहत तुम्हें यही है कि इन लोगों से युद्ध न करो क्योंकि मैंने मुसलमानों के जितने लोग देख हैं उन्हें देख कर मुझ पर यह प्रभाव पड़ा है कि ऊँटों पर मनुष्य सवार नहीं, मौतें सवार हैं अर्थात् उन में से प्रत्येक व्यक्ति मरने के लिए रणभूमि में आया है, जीवित वापस जाने के लिए नहीं आया और जो व्यक्ति मृत्यु को स्वयं के लिए आसान कर लेता है और मृत्यु को गले लगाने के लिए तत्पर हो जाता है, उसका सामना करना कोई साधारण बात नहीं हुआ करती।

एक महान भविष्यवाणी का पूर्ण होना

जब युद्ध आरम्भ होने का समय आया तो नबी करीम (स.अ.व.) जहां बैठ कर दुआ कर रहे थे बाहर आए और फ़रमाया سَيُهْزَمُ الْجَمْعُ وَيُوَلُّوْنَ الدُّبُرَ अर्थात् शत्रु-सेना पराजित हो जाएगी और पीठ दिखा कर रणभूमि छोड़ जाएगी। आप^स. के ये कथित शब्द क़ुर्आन करीम की एक भविष्यवाणी थी जो इस युद्ध के संबंध में क़ुर्आन करीम में मक्का में ही उतरी थी। मक्का में जब मुसलमान काफ़िरों के निरन्तर अत्याचारों का शिकार हो रहे थे तथा इधर-उधर हिजरत करके जा रहे थे। ख़ुदा तआला ने रसूले करीम (स.अ.व.) पर क़ुर्आन करीम की ये आयतें उतारीं —

وَلَقَدْ جَآءَ اٰلَ فِرْعَوْنَ النُّذُرُ ﴿۴۱﴾ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا كُلِّهَا فَاَخَذْنٰهُمْ اَخْذَ عَزِيْزٍ
مُّقْتَدِرٍ ﴿۴۲﴾ اَكُفَّارُكُمْ خَيْرٌ مِّنْ اُولٰٓئِكُمْ اَمْ لَكُمْ بَرَآءَةٌ فِي الزُّبُرِ ﴿۴۳﴾ اَمْ
يَقُوْلُوْنَ نَحْنُ جَمِيْعٌ مُّنْتَصِرٌ ﴿۴۴﴾ سَيُهْزَمُ الْجَمْعُ وَيُوَلُّوْنَ الدُّبُرَ ﴿۴۵﴾
بَلِ السَّاعَةُ مَوْعِدُهُمْ وَالسَّاعَةُ اَدْهٰى وَاَمَرُّ ﴿۴۶﴾ اِنَّ الْمُجْرِمِيْنَ فِيْ ضَلٰلٍ
وَّسُعُرٍ ﴿۴۷﴾ يَوْمَ يُسْحَبُوْنَ فِي النَّارِ عَلٰى وُجُوْهِهِمْ ذُوْقُوْا مَسَّ سَقَرَ ﴿۴۸﴾

(सूरह क़मर 42 से 49)

अर्थात् हे मक्का वालो ! फिरऔन की ओर से भयभीत करने वाली बातें आई थीं, परन्तु उन्होंने हमारी समस्त आयतों का इन्कार किया। अतः हम ने उन्हें इस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार एक सशक्त विजेता पकड़ता है (हे मक्का वालो) बताओ क्या तुम्हारे काफ़िर उन (काफ़िरों) से अच्छे हैं अथवा तुम्हारे लिए पहली पुस्तकों में सुरक्षा का कोई वचन दिया जा चुका है। वे कहते हैं हम तो एक महान शक्ति हैं जो शत्रुओं से पराजित नहीं होती अपितु शत्रुओं से प्रतिशोध लिया करती है (वे ये बातें करते रहें) उनके जत्थे शीघ्र ही एकत्र होंगे और फिर उन्हें पराजय का मुँह देखना पड़ेगा और वे पीठ फेर कर भाग जाएंगे अपितु ख़ुदा तआला की ओर से विनाश का वादा है और यह विनाश का समय अत्यन्त दारुण, दुखदायी और असहनीय होगा। उस दिन अपराधी अत्यन्त व्याकुल तथा प्रकोपग्रस्त होंगे और उन्हें मुँह के बल घसीट कर अग्नि-कुण्डों में डाल दिया जाएगा और कहा जाएगा कि अब महा प्रकोप का स्वाद चखो।

ये आयतें सूरह क़मर की हैं और सूरह 'क़मर' समस्त इस्लामी ऐतिहासिक वार्ताओं के अनुसार मक्का में उतरी थी। मुसलमान विद्वान भी इस सूरह को नुबुव्वत के दावे के पाँच से दस वर्ष पश्चात् की बताते हैं अर्थात् यह हिजरत से कम से कम तीन वर्ष पूर्व उतरी थी अपितु

कदाचित आठ वर्ष पूर्व। यूरोप के शोधकर्ता भी इस की पुष्टि करते हैं। अतः नाल्डके (NOLDEKE) इस सूरह को नुबुव्वत के दावे के पांच वर्ष पश्चात् बताता है, रेवरण्ड वैरी (REVEREND WHERRY) लिखते हैं कि मेरे विचारानुसार नाल्डके (NOLDEKE) ने इस सूरह के उतरने का समय थोड़ा पहले बताया है। यह अपना अनुमान यह बताते हैं कि यह सूरह हिजरत से छः सात वर्ष पहले उतरी, जिसका तात्पर्य यह है कि उनके निकट यह सूरह नुबुव्वत के दावे के पश्चात् छठे या सातवें वर्ष की है। अस्तु मुसलमानों के शत्रुओं ने भी इस सूरह को हिजरत से कई वर्ष पूर्व का बताया है। उस ज़माने में इस युद्ध की सूचना कितने स्पष्ट शब्दों में दी गई थी तथा काफ़िरों का परिणाम बता दिया गया था और फिर किस प्रकार रसूले करीम (स.अ.व.) ने बदर का युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व इन आयतों को पढ़कर मुसलमानों को बताया कि ख़ुदा का वादा पूर्ण होने का समय आ गया है।

अतः चूंकि वह समय आ गया था जिसकी सूचना यसइयाह नबी[1] ने समय से पूर्व दे रखी थी तथा जिसकी सूचना क़ुर्आन करीम ने पुनः युद्ध प्रारम्भ होने से छः या आठ वर्ष पूर्व दी थी। इसलिए इसके बावजूद कि मुसलमान इस युद्ध के लिए तैयार न थे तथा इसके बावजूद कि काफ़िरों को भी उनके कुछ साथियों ने यह परामर्श दिया था कि युद्ध नहीं करना चाहिए। युद्ध हो गया तथा 313 लोग जिन में अधिकांश को युद्ध कला का अनुभव भी न था, शेष सब के सब साधनहीन और निहत्थे थे। काफ़िरों की अनुभवी सेना के मुक़ाबले में जिस की संख्या एक हज़ार से अधिक थी खड़े हो गए। युद्ध हुआ और कुछ ही घंटे के अन्दर अरब के बड़े-बड़े सरदार मारे गए। यसइयाह की भविष्यवाणी के अनुसार क़ैदार की गरिमा धूल में मिल गई तथा मक्का की सेना कुछ लाशें और कुछ क़ैदी पीछे छोड़

①-यसइयाह 21, 13-17

कर सर पर पांव रख कर मक्का की ओर भाग खड़ी हुई। जो क़ैदी पकड़े गए उनमें रसूले करीम (स.अ.व.) के चाचा अब्बासरज़ि. भी थे जो हमेशा आप का साथ दिया करते थे। मक्का वाले उन्हें विवश करके अपने साथ युद्ध के लिए ले आए थे। इसी प्रकार क़ैदियों में रसूले करीम (स.अ.व.) की बड़ी बेटी के पति अबुलआस भी थे। मारे जाने वालों में इस्लाम का सब से बड़ा शत्रु मक्का की सेना का सेनापति अबूजहल भी शामिल था[1]।

बदर के क़ैदी

इस विजय पर रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम प्रसन्न थे कि वे भविष्यवाणयां कि जिनका निरन्तर चौदह वर्ष से आप के द्वारा प्रचार किया जा रहा था तथा वे भविष्यवाणयां जो पूर्वकालीन नबी उस दिन के संबंध में कर चुके थे पूरी हो गईं परन्तु मक्का के विरोधियों का भयानक अन्त भी आपकी दृष्टि के सामने था। आप के स्थान पर यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो प्रसन्नता से उछलता और कूदता, परन्तु जब मक्का के क़ैदी रस्सियों में बंधे हुए आप के सामने से गुज़रे तो आप और आप के वफ़ादार साथी अबू बकररज़ि. की आँखों से सहसा आँसू बहने लगे। उस समय हज़रत उमररज़ि. जो बाद में आप के द्वितीय ख़लीफ़ा बने सामने से आए तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस विजय और हर्षोल्लास के अवसर पर आप क्यों रो रहे हैं ! उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मुझे भी बताइए कि इस समय रोने का क्या कारण है यदि वह बात मेरे लिए भी रोने का कारण है तो मैं भी रोऊँगा, अन्यथा कम से कम आप के साथ भागीदार होने के लिए रोने वाली शक्ल ही बनाऊँगा। आपस. ने फ़रमाया — देखते नहीं कि ख़ुदा तआला के आदेशों की अवहेलना करने से आज मक्का वालों की क्या दशा हो रही है।

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2 पृष्ठ 219, ज़रकानी जिल्द प्रथम, पृष्ठ 440-441

आप के न्याय और अदालत का उल्लेख यसइयाह नबी ने अपनी भविष्यवाणीयों में बार-बार किया है। इस अवसर पर एक रहस्यपूर्ण प्रमाण प्राप्त हुआ। मदीना की ओर वापस आते हुए रात को जब आप सोने के लिए लेटे तो सहाबा[रज़ि.] ने देखा कि आप को नींद नहीं आ रही। अत: उन्होंने विचार करके यह परिणाम निकाला कि आप के चाचा अब्बास[रज़ि.] चूंकि रस्सियों में जकड़े होने के कारण सो नहीं सकते और उनके कराहने की आवाज़ें आती हैं इसलिए उनके कष्ट के विचार से आप को नींद नहीं आती। उन्होंने आपस में परामर्श करके हज़रत अब्बास[रज़ि.] के बन्धनों को ढीला कर दिया। हज़रत अब्बास[रज़ि.] सो गए और रसूले करीम (स.अ.व.) को भी नींद आ गई। थोड़ी देर के पश्चात सहसा घबरा कर आप की आँख खुली और आप[स.] ने पूछा अब्बास[रज़ि.] ख़ामोश क्यों हैं, उनके कराहने की आवाज़ क्यों नहीं आती? आप के हृदय में यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि कदाचित कष्ट के कारण वह बेहोश हो गए। सहाबा[रज़ि.] ने कहा हे अल्लाह के रसूल ! हमने आप के कष्ट को देखकर उनके बन्धन ढीले कर दिए हैं। आप[स.] ने फ़रमाया— नहीं, नहीं यह अन्याय नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार अब्बास मेरे सम्बन्धी हैं अन्य क़ैदी भी दूसरों के परिजन हैं या तो सब क़ैदियों के बंधन ढीले कर दो ताकि वे आराम से सो जाएं और या फिर अब्बास[रज़ि.] के भी बन्धन कस दो। सहाबा[रज़ि.] ने आप[स.] की बात सुनकर सब क़ैदियों के बंधन ढीले कर दिए तथा सुरक्षा का पूर्ण दायित्व अपने ऊपर ले लिया। जो लोग क़ैद हुए थे उनमें से जो पढ़ना जानते थे आप[स.] ने उनका केवल यही फ़िदया निर्धारित किया कि वे मदीना के दस-दस लड़कों को पढ़ना सिखा दें अर्थात् जिनको मुक्त कराने हेतु धन राशि देने वाला कोई नहीं था उन्हें यों ही आज़ाद कर दिया, वे धनवान लोग जो फ़िदया दे सकते थे उन से उचित फ़िदया लेकर छोड़ दिया और इस प्रकार इस प्राचीन दासप्रथा को कि क़ैदियों को दास बना कर रखा जाता था समाप्त कर दिया।

उहद का युद्ध

काफ़िरों की सेना ने बदर की रणभूमि से भागते हुए यह घोषणा की थी कि अगले वर्ष हम पुनः मदीना पर आक्रमण करेंगे तथा मुसलमानों से अपनी पराजय का बदला लेंगे। अतः एक वर्ष के पश्चात् वे पुनः पूरी तैयारी करके मदीना पर आक्रमणकारी हुए। मक्का वालों की यह दशा थी कि उन्होंने बदर के युद्ध के पश्चात् यह घोषणा कर दी थी कि किसी व्यक्ति को अपने पुरुषों पर रोने की आज्ञा नहीं तथा जो व्यापारिक काफ़िले आएंगे उनकी आय भावी युद्ध के लिए सुरक्षित रखी जाएगी। अतः बड़ी तैयारी के पश्चात् तीन हज़ार से अधिक सैनिकों के साथ अबू सुफ़यान मदीना पर आक्रमणकारी हुआ। रसूले करीम (स.अ.व.) ने सहबा[रज़ि.] से परामर्श किया कि क्या हमें शहर में ठहर कर मुक़ाबला करना चाहिए या बाहर निकलकर? आप का अपना विचार यही था कि शत्रु को आक्रमण करने दिया जाए ताकि युद्ध के आरम्भ करने का वही उत्तरदायी हो और मुसलमान अपने घरों में बैठ कर आसानी से सामना कर सकें, परन्तु वे मुसलमान युवक जिन्हें बदर के युद्ध में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था और जिनके हृदयों में एक पीड़ा थी कि काश ! हमें भी ख़ुदा के मार्ग में शहीद होने का अवसर प्राप्त होता। उन्होंने आग्रह किया कि हमें शहीद होने से क्यों वंचित किया जाता है। अतः आप[स.] ने उनकी बात स्वीकार कर ली।

परामर्श करते समय आप ने एक स्वप्न भी सुनाया। फ़रमाया— स्वप्न में मैंने कुछ गाएं देखी हैं तथा मैंने देखा कि मेरी तलवार का सिरा टूट गया है और मैंने यह भी देखा कि वे गाएं ज़िब्ह की जा रही हैं और फिर यह कि मैंने अपना हाथ एक मज़बूत और सुरक्षित कवच के अन्दर डाला है① और मैंने यह भी देखा कि मैं एक मेंढे की पीठ पर सवार हूँ②।

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2 पृष्ठ 77

②-तबक़ात इब्ने सअद क़िस्म अव्वल भाग-द्वितीय, पृष्ठ-26

सहाबा[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप ने इन स्वप्नों की क्या ता'बीर की? आपने फ़रमाया— गाय के ज़िब्ह करने की ता'बीर यह है — कि मेरे कुछ सहाबा[रज़ि.] शहीद होंगे और तलवार का सिरा टूटने से अभिप्राय यह मालूम होता है कि मेरे प्रियजनों में से कोई प्रमुख व्यक्ति शहीद होगा अथवा कदाचित मुझे ही इस युद्ध में कोई कष्ट पहुँचे तथा कवच के अन्दर हाथ डालने का अभिप्राय मैं यह समझता हूँ कि हमारा मदीना में ठहरना अधिक उचित है और मेंढे पर सवार होने वाले स्वप्न की ता'बीर से यह प्रतीत होता है कि काफ़िरों के सरदार पर हम विजयी होंगे अर्थात् वह मुसलमानों के हाथ से मारा जाएगा। यद्यपि इस स्वप्न में मुसलमानों पर यह स्पष्ट कर दिया गया था कि उनका मदीना में रहना अधिक उचित है परन्तु चूंकि स्वप्न की ता'बीर रसूले करीम (स.अ.व.) की अपनी थी, इल्हामी नहीं थी, आपने बहुमत को स्वीकार कर लिया और यूद्ध के लिए बाहर जाने का निर्णय कर दिया। जब आप बाहर निकले तो युवकों के अपने हृदय में लज्जा का आभास हुआ। उन्होंने कहा हे अल्लाह के रसूल ! जो आप का परामर्श है वही उचित है, हमें मदीना में ठहर कर शत्रु का सामना करना चाहिए। आप[स.] ने फ़रमाया— ख़ुदा का नबी जब कवच धारण कर लेता है तो उतारा नहीं करता। अब चाहे कुछ भी हो हम आगे ही जाएंगे। यदि तुम ने धैर्य से काम लिया तो ख़ुदा की सहायता तुम्हारे साथ होगी। यह कह कर आप[स.] एक हज़ार सेना के साथ मदीना से निकले और थोड़ी दूर जाकर रात व्यतीत करने के लिए डेरा डाल दिया। आप का सदैव यह नियम था कि आप शत्रु के पास पहुँच कर अपनी सेना को कुछ समय विश्राम करने का अवसर दिया करते थे, ताकि वे अपने सामान आदि तैयार कर लें। प्रातःकाल की नमाज़ के समय जब आप निकले तो आप को ज्ञात हुआ कि कुछ यहूदी भी अपने समझौता किए हुए क़बीलों की सहायता के बहाने आए हैं। चूंकि यहूदियों के षड्यंत्रों की जानकारी

आप को हो चुकी थी। आप ने फ़रमाया— इन लोगों को वापस कर दिया जाए। इस पर अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल जो मुनाफ़िक़ों (द्वैमुखी लोगों) का सरदार था वह भी अपने तीन सौ साथियों को लेकर यह कहते हुए वापस लौट गया कि अब यह लड़ाई नहीं रही, यह तो विनाश को निमंत्रण देना है; क्योंकि स्वयं अपने सहायकों को युद्ध से रोका जाता है। परिणामस्वरूप मुसलमान मात्र सात सौ रह गए जो शत्रु सेना की संख्या के चौथाई भाग से भी कम थे और युद्ध सामग्री की दृष्टि से और भी निर्बल; क्योंकि शत्रु सेना में सात सौ कवचधारी थे और मुसलमानों में मात्र एक सौ कवचधारी। शत्रु सेना में दो सौ घुड़सवार थे परन्तु मासलमानों के पास केवल दो घोड़े थे। अस्तु आप 'उहद' के स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर आपने एक दर्रे की सुरक्षा के लिए पचास सैनिक नियुक्त किए और सैनिकों के अफ़सर को निर्देश दिया कि दर्रा इतना महत्वपूर्ण है कि चाहे हम मौत के घाट उतार दिए जाएँ या विजयी हो जाएँ तुम यहाँ से न हटना[1]। तत्पश्चात् आप शेष छः सौ पचास सैनिक लेकर शत्रु का सामना करने के लिए निकले, जो अब शत्रु की संख्या से लगभग पांचवां भाग थे। युद्ध हुआ तथा अल्लाह तआला की सहायता और सहयोग से थोड़ी ही देर में साढ़े छः सौ मुसलमानों के मुकाबले में मक्का का तीन हज़ार अनुभवी सैनिक दल सर पर पैर रख कर भागा।

विजय : पराजय के आवरण में

मुसलमानों ने उन का पीछा करना आरम्भ किया। यह देख कर दर्रे की सुरक्षा पर नियुक्त सैनिकों ने अपने अफ़सर से कहा कि अब तो शत्रु पराजित हो चुका है, अब हमें भी जिहाद का पुण्य प्राप्त करने दिया जाए। अफ़सर ने उन्हें इस बात से रोका तथा रसूले करीम (स.अ.व.) का

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-78

आदेश स्मरण कराया परन्तु उन्होंने कहा — रसूले करीम (स.अ.व.) ने जो कुछ फ़रमाया था केवल ज़ोर देने के लिए फ़रमाया था अन्यथा आप का अभिप्राय यह तो नहीं हो सकता था कि शत्रु भाग भी जाए तो भी यहां खड़े रहो। यह कहते हुए उन्होंने दर्रा छोड़ दिया और रणभूमि में कूद पड़े। भागती हुई सेना में से ख़ालिद बिन वलीद जो बाद में इस्लाम के महान सेनापति सिद्ध हुए की दृष्टि ख़ाली दर्रे पर पड़ी जहां केवल कुछ सैनिक अपने अफ़सर के साथ खड़े थे। ख़ालिद ने अपनी (काफ़िरों की) सेना के अन्य सेनापति उमर बिन अलआस को आवाज़ दी और कहा कि पीछे पहाड़ी दर्रे पर तनिक दृष्टि डालो। उमर बिन अलआस ने जब दर्रे पर दृष्टि डाली तो समझा कि मुझे जीवन का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हो रहा है। दोनों सेनापतियों ने अपनी भागती हुई सेना को संभाला और इस्लामी सेना को भारी क्षति पहुँचाते हुए पर्वत पर चढ़ गए, वहां दर्रे की सुरक्षा के लिए थोड़े से मुसलमान खड़े रह गए थे, उनको टुकड़े-टुकड़े करते हुए पीछे से इस्लामी सेना पर टूट पड़े। उनके विजय-नाद को सुनकर शत्रु की भागती सेना रणभूमि की ओर लौट पड़ी। यह आक्रमण ऐसा अचानक हुआ तथा काफ़िरों का पीछा करने के कारण मुसलमान इतने बिखर गए कि उन लोगों के मुक़ाबले में कोई समुचित इस्लामी सेना नहीं थी। रणभूमि में अकेला-अकेला सैनिक दिखाई दे रहा था, जिन में से कुछ को उन लोगों ने मार दिया, शेष इस असमंजस में थे कि यह हो क्या गया है पीछे की ओर दौड़े। कुछ सहाबा दौड़ कर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चारों ओर एकत्र हो गए जिनकी संख्या अधिक से अधिक तीस थी[①]। काफ़िरों ने उस स्थान पर भयंकर आक्रमण किया जहां रसूले करीम (स.अ.व.) खड़े थे। सहाबा एक के बाद एक आप[स.] की रक्षा करते हुए मारे जाने लगे। कृपाणधारियों के अतिरिक्त धनुषधारी ऊँचे टीलों पर खड़े होकर रसूले करीम (स.अ.व.)

①-ज़रक़ानी जिल्द-2, पृष्ठ-35

की ओर अंधाधुंध वाण-वर्षा कर रहे थे। उस समय तल्हा[रज़ि.] ने जो क़ुरैश में से थे तथा मक्का के मुहाजिरों में से थे, यह देखते हुए कि शत्रु सब के सब तीर रसूले करीम (स.अ.व.) के मुख की ओर फेंक रहा है अपना हाथ रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के मुख के आगे खड़ा कर दिया। वाण-वर्षा में जो तीर लक्ष्य पर गिरता था वह 'तल्हा[रज़ि.]' के हाथ पर गिरता था, परन्तु प्राणों की बाज़ी लगाने वाला वफ़ादार सिपाही अपने हाथ को कोई हरकत नहीं देता था। इस प्रकार तीर पड़ते गए और तल्हा[रज़ि.] का हाथ घावों से छलनी हो कर बिल्कुल बेकार हो गया और उनका एक ही हाथ शेष रह गया। वर्षों पश्चात् इस्लाम की चौथी ख़िलाफ़त के युग में जब मुसलमानों में गृह-युद्ध आरम्भ हुआ तो किसी शत्रु ने व्यंग के तौर पर तल्हा को टुण्डा कहा। इस पर एक अन्य सहाबी ने कहा— हाँ टुण्डा ही है परन्तु कैसा मुबारक टुण्डा है। तुम्हें ज्ञात है तल्हा का यह हाथ रसूले करीम (स.अ.व.) के मुख की रक्षा में टुण्डा हुआ था। उहद के युद्धोपरान्त किसी व्यक्ति ने तल्हा[रज़ि.] से पूछा कि जब वाण हाथ पर लगते थे तो क्या आप को दर्द नहीं होता था और क्या आप के मुख से उफ़ नहीं निकलती थी? तल्हा[रज़ि.] ने उत्तर दिया— दर्द भी होता था और उफ़ भी निकलना चाहती थी परन्तु मैं उफ़ करता नहीं था ताकि ऐसा न हो कि उफ़ करते समय मेरा हाथ हिल जाए और तीर रसूले करीम (स.अ.व.) के मुख पर आ लगे।

परन्तु ये कुछ लोग इतनी विशाल सेना का कब तक मुक़ाबला कर सकते थे क़ाफ़िरों की सेना का एक गिरोह आगे बढ़ा और उस ने रसूले करीम (स.अ.व.) के पास के जवानों को धकेला कर पीछे कर दिया। रसूले करीम (स.अ.व.) वहां अकेले पर्वत की भांति खड़े थे कि बड़े ज़ोर से एक पत्थर आप के खोद (Security Cap लोहे की टोपी) पर लगा ख़ोद की कील आप के सर पर घुस गई और आप बेहोश होकर उन सहाबा[रज़ि.]

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-84

के शवों पर जा पड़े जो आप के चारों ओर लड़ते हुए शहीद हो चुके थे[1]। तत्पश्चात् कुछ अन्य सहाबा[रज़ि.] आप के शरीर की रक्षा करते हुए शहीद हुए और उनके शव आप के शरीर पर जा गिरे। काफ़िरों ने आप के शरीर को शवों के नीचे दबा हुआ देख कर समझा कि आप मारे जा चुके हैं। अतः मक्का की सेना स्वयं को पुनर्गठन के उद्देश्य से पीछे हट गई। जो सहाबा आप के पास खड़े थे और जिन्हें काफ़िरों की सेना का रेला ढकेल कर पीछे ले गया था उनमें हज़रत उमर[रज़ि.] भी थे। जब आप ने देखा कि रणभूमि समस्त लड़ने वालों से साफ हो चुकी है तो आप को विश्वास हो गया कि रसूले करीम (स.अ.व.) शहीद हो गए हैं और वह व्यक्ति जिस ने बाद में एक ही समय में क़ैसर तथा किस्रा का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया था और उस का हृदय कभी नहीं घबराया और न भयभीत हुआ था। वह एक पत्थर पर बैठकर बच्चों की भांति रोने लग गया, इतने में मालिक[रज़ि.] नामक एक सहाबी जो इस्लामी सेना की विजय के समय पीछे हट गए थे; क्योंकि वह निराहार थे और रात से उन्होंने कुछ नहीं खाया था। जब विजय हो गई तो कुछ खजूरें लेकर पीछे की ओर चले गए ताकि उन्हें खाकर अपनी भूख दूर करें। वह विजय की ख़ुशी में टहल रहे थे कि टहलते-टहलते हज़रत उमर[रज़ि.] तक जा पहुँचे और उमर[रज़ि.] को रोते देख कर हैरान हुए और आश्चर्य से पूछा— उमर आप को क्या हुआ? इस्लाम की विजय पर आप को प्रसन्न होना चाहिए या रोना चाहिए? उमर ने उत्तर में कहा— मालिक! कदाचित तुम विजय के तुरन्त बाद पीछे हट आए थे, तुम्हें मालूम नहीं कि काफ़िरों की सेना पहाड़ी के पीछे से चक्कर काटकर इस्लामी सेना पर टूट पड़ी और चूंकि मुसलमान अस्त-व्यस्त हो चुके थे, उनका मुकाबला कोई न कर सका। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) कुछ सहाबा के साथ उन के मुक़ाबले के लिए खड़े हुए और मुक़ाबला करते-करते शहीद हो गए। मालिक[रज़ि.] ने कहा— उमर यदि यह बात सही है तो आप

यहां बैठे क्यों रो रहे हैं, जिस लोक में हमारा प्यारा गया है हमें भी तो वहीं जाना चाहिए। यह कहा और वह अन्तिम खजूर जो आप के हाथ में थी जिसे आप मुख में डालने ही वाले थे उसे यह कहते हुए फेंक दिया कि हे खजूर! मालिक और स्वर्ग के मध्य तेरे अतिरिक्त और कौन सी वस्तु रोक है यह कहा और तलवार लेकर शत्रु की सेना में घुस गए। तीन हज़ार सेना के मुकाबले में एक व्यक्ति कर ही क्या सकता था, परन्तु एक ख़ुदा की उपासना करने वाली भावना बहुतों पर भारी होती है। मालिक[रज़ि.] इस निर्भयता से लड़े कि शत्रु स्तब्ध रह गया परन्तु अन्ततः घायल हुए, फिर गिरे तथा गिर कर भी शत्रुओं के सैनिकों पर आक्रमण करते रहे, जिस के परिणामस्वरूप मक्का के काफ़िरों ने आप पर इतना भयानक आक्रमण किया कि युद्ध के पश्चात् आप के शव के सत्तर टुकड़े मिले, यहां तक कि आप का शव पहचाना नहीं जाता था। अन्त में आप की बहन ने एक उंगली से पहचान कर बताया कि यह मेरे भाई का शव है।

वे सहाबा[रज़ि.] जो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चारों ओर थे और जो काफ़िरों की सेना की बहुतात के कारण पीछे ढकेल दिए गए थे, काफ़िरों के पीछे हटते ही वे पुनः रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास एकत्र हो गए। उन्होंने आपके मुबारक शरीर को उठाया तथा एक सहाबी उबैदा बिन जर्राह ने अपने दांतों से आप के सर में घुसी हुई कील को ज़ोर से निकाला जिस से उनके दो दांत टूट गए। थोड़ी देर में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को होश आ गया और सहाबा ने मैदान में चारों ओर लोग दौड़ा दिए कि मुसलमान पुनः एकत्र हो जाएं। भागी हुई सेना पुनः एकत्र होने लगी। रसूले करीम (स.अ.व.) उन्हें लेकर पर्वत के आंचल में चले गए। जब पर्वत के आंचल में बची हुई सेना खड़ी थी तो अबू सुफ़यान ने बड़े ज़ोर से आवाज़ दी और कहा— हम ने मुहम्मद (स.अ.व.) को मार दिया। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अबू सुफ़यान की बात का उत्तर न दिया ताकि ऐसा न हो

कि शत्रु वस्तु स्थिति से अवगत हो कर पुनः आक्रमण कर दे और घायल मुसलमान पुनः शत्रु के आक्रमण के शिकार हो जाएँ। जब इस्लामी सेना से इस बात का कोई उत्तर न मिला तो अबू सुफ़यान को विश्वास हो गया कि उस का अनुमान उचित है तब उसने बड़े ज़ोर से आवाज़ देकर कहा— हम ने अबू बक़र[रज़ि.] को भी मार दिया। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अबू बकर[रज़ि.] को आदेश दिया कि कोई उत्तर न दें। अबू सुफ़यान ने फिर आवाज़ दी— हमने उमर[रज़ि.] को भी मार दिया। तब उमर[रज़ि.] जो बहुत जोशीले व्यक्ति थे, उन्होंने उसके प्रत्युत्तर में यह कहना चाहा कि हम लोग ख़ुदा की कृपा से जीवित हैं और तुम्हारा मुकाबला करने के लिए तैयार हैं परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) ने रोक दिया कि मुसलमानों को कष्ट में न डालो, ख़ामोश रहो। अतः काफ़िरों को विश्वास हो गया कि इस्लाम के प्रवर्तक तथा उनके दाएं-बाएं की सेना को भी हमने मौत के घाट उतार दिया है। इस पर अबू सुफ़यान और उसके साथियों ने ख़ुशी से जयघोष किया — اُعْلُ هُبُلْ اُعْلُ هُبُلْ 'हमारी सम्माननीय मूर्ति हुबुल की जय हो' कि उसने आज इस्लाम का अन्त कर दिया है। वही रसूले करीम (स.अ.व.) जो अपनी मृत्यु की घोषणा पर, अबूबकर[रज़ि.] की मृत्यु की घोषणा पर तथा उमर[रज़ि.] की मृत्यु की घोषणा पर ख़ामोश रहने का उपदेश दे रहे थे ताकि ऐसा न हो कि घायल मुसलमानों पर काफ़िरों की सेना फिर से आक्रमण न कर दे और मुट्ठी भर मुसलमान उसके हाथों शहीद हो जाएं। अब जब कि एक ख़ुदा की प्रतिष्ठा का प्रश्न उत्पन्न हुआ और मैदान में द्वैतवाद का जयघोष किया गया तो आपकी आत्मा व्याकुल हो उठी तथा आपने अत्यन्त जोश के साथ सहाबा की ओर देखते हुए फ़रमाया — तुम लोग उत्तर क्यों नहीं देते। सहाबा ने कहा — हे अल्लाह के रसूल! हम क्या कहें? फ़रमाया — कहो — اَللّٰہُ اَعْلٰی وَاَجَلُّ ① (अल्लाहो आ'ला व

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-270

अजल्ल) तुम झूठ बोलते हो कि हुबुल की शान ऊँची हुई। ख़ुदा एक है उसका कोई साथी नहीं, वह प्रतिष्ठावान है तथा बड़ी शान वाला है। और इस प्रकार आपने अपने जीवित होने की सूचना शत्रुओं को पहुँचा दी। इस वीरता और निर्भीकतापूर्ण उत्तर का प्रभाव काफ़िरों की सेना पर इतना गहरा पड़ा कि इसके बावजूद कि उनकी आशाएं इस उत्तर से मिट्टी में मिल गईं तथा इसके बावजूद कि उन के सामने मुट्ठी भर मुसलमान खड़े थे जिन पर आक्रमण करके उन्हें मार देना सांसारिक दृष्टि से बिल्कुल संभव था वे दोबारा आक्रमण करने का साहस न कर सके और उन्हें जिस सीमा तक विजय प्राप्त हुई थी उसी की खुशियां मनाते हुए मक्का को प्रस्थान किया। उहद के युद्ध में स्पष्ट विजय के पश्चात् एक पराजय का रूप देखने को मिला परन्तु यह युद्ध वास्तव में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सच्चाई का एक महान चमत्कार पूर्ण प्रमाण था। इस युद्ध में रसूले करीम (स.अ.व.) की भविष्यवाणी के अनुसार मुसलमानों को पहले सफलता प्राप्त हुई फिर रसूले करीम (स.अ.व.) की भविष्यवाणी के अनुसार आप के प्रिय चाचा हम्ज़ा[रज़ि.] युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए, फिर रसूले करीम (स.अ.व.) की भविष्यवाणी के अनुसार स्वयं आप[स.] भी घायल हुए और बहुत से सहाबा शहीद हुए। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को ऐसी आत्मीय शुद्धि और ईमान के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हुआ, जिस का उदाहरण इतिहास में और कहीं नहीं मिलता। इस वफ़ादारी और ईमान के प्रदर्शन की कुछ घटनाएं तो पहले वर्णन हो चुकी हैं एक अन्य घटना भी उल्लेखनीय है जिस से ज्ञात होता है कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की संगति ने सहाबा[रज़ि.] के हृदयों में कितना दृढ़ ईमान पैदा कर दिया था। जब रसूले करीम (स.अ.व.) कुछ सहाबा को साथ लेकर पर्वत के आंचल की ओर चले गए और शत्रु पीछे हट गया तो आप ने कुछ सहाबा[रज़ि.] को आदेश दिया कि वे मैदान में जाएं और घायलों को

देखें। एक सहाबी मैदान में खोज करते-करते एक घायल अन्सारी के पास पहुँचे। देखा तो उन की दशा बड़ी दयनीय थी और वह प्राण त्याग रहे थे। यह सहाबी उन के पास पहुँचे और उन्हें अस्सलामो अलैकुम कहा। उन्होंने कांपता हुआ हाथ मिलाने के लिए उठाया और उन का हाथ पकड़ कर कहा— मैं प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई भाई मुझे मिल जाए। उन्होंने उस सहाबी से पूछा कि आपकी दशा तो ख़तरनाक विदित होती है। क्या कोई सन्देश है जो आप अपने परिजनों को देना चाहते हैं? उस मरणासन्न सहाबी ने कहा— हाँ ! मेरी ओर से मेरे परिजनों को सलाम कहना कि मैं तो मर रहा हूँ परन्तु अपने पीछे ख़ुदा तआला की एक पवित्र अमानत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का अस्तित्व तुम में छोड़े जा रहा हूँ। हे मेरे भाइयो और सम्बन्धियो ! वह ख़ुदा का सच्चा रसूल है। मैं आशा करता हूँ कि तुम उसकी रक्षा में अपने प्राण न्योछावर करने से संकोच नहीं करोगे तथा मेरी इस वसीयत को स्मरण रखोगे (मुअत्ता तथा ज़रक़ानी) मरने वाले मनुष्य के हृदय में अपने परिजनों को पहुँचाने के लिए हज़ारों सन्देश पैदा होते हैं परन्तु ये लोग मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की संगति में अपने आप को इतना विस्मृत कर चुके थे कि न उन्हें अपने पुत्र याद आ रहे थे, न पत्नियां। न, धन-दौलत याद आ रही थी, न संपत्तियां। उन्हें यदि कुछ स्मरण था तो केवल मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का अस्तित्व ही स्मरण था। वे जानते थे कि संसार की मुक्ति इस व्यक्ति के साथ है। हमारे मृत्योपरान्त यदि हमारी सन्तानें जीवित रहीं तो वे कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकतीं परन्तु यदि इस मुक्तिदाता की सुरक्षा में उन्होंने अपने प्राण दे दिए तो यद्यपि हमारे अपने वंश मिट जाएंगे परन्तु संसार जीवित हो जाएगा, शैतान के पंजे में फंसा हुआ मनुष्य फिर मुक्ति पा जाएगा; क्योंकि हमारे वंशों के जीवन से हज़ारों गुना अधिक मूल्यवान लोगों का जीवन और मोक्ष है।

अस्तु रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने घायलों और शहीदों को एकत्र किया

घायलों की मरहम-पट्टी की गई तथा शहीदों को दफ़्न करने का प्रबंध किया गया। उस समय आप को मालूम हुआ कि मक्का के अत्याचारी काफ़िरों ने कुछ मुसलमान शहीदों के नाक-कान काट दिए हैं। अतः ये लोग जिनके नाक-कान काटे गए थे उन में स्वयं आप के चाचा हम्ज़ा[रज़ि.] भी थे। आप को यह द्रश्य देख कर बहुत दुःख हुआ तथा आप ने फ़रमाया— काफ़िरों ने स्वयं अपने कर्म से अपने लिए इस बदले को उचित बना दिया है जिसे हम अनुचित समझते थे। परन्तु ख़ुदा तआला की ओर से उस समय आप[स.] को वह्यी (ईशवाणी) हुई कि काफ़िर जो कुछ करते हैं उन्हें करने दो, तुम दया और न्याय का आंचल हमेशा थामे रखो।

उहद के युद्ध से वापसी तथा मदीना वासियों की त्याग-भावनाएं

जब इस्लामी सेना वापस मदीना की ओर लौटी तो उस समय तक रसूले करीम (स.अ.व.) के शहीद होने तथा इस्लामी सेना के अस्त-व्यस्त होने का समाचार मदीना पहुँच चुका था। मदीने की स्त्रियां और बच्चे पागलों की भांति आगे बढ़ते हुए उहद की ओर भागे चले जा रहे थे। अधिकांश को तो मार्ग में सूचना मिल गई और वे रुक गए परन्तु बनू दीनार क़बीले की एक महिला पागलों की तरह आगे बढ़ते हुए उहद तक जा पहुँची। जब वह पागलों की भांति उहद के मैदान की ओर जा रही थी, उस महिला का पति, भाई तथा पिता उहद में मारे जा चुके थे तथा कुछ कथानकों में है कि एक बेटा भी मारा गया था। जब उसे उसके बाप के मारे जाने की सूचना दी गई तो उसने कहा— मुझे यह बताओ कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का क्या हाल है ? चूंकि सूचना देने वाले रसूले करीम (स.अ.व.) की ओर से संतुष्ट थे वे बारी-बारी उसे उसके भाई, पति और पुत्र की मृत्यु की सूचना देते चले गए परन्तु वह यही कहती

चली जाती थी— مَافعل رَسُوْل اللّٰہ صَلَّی اللّٰہُ عَلَیہ وَسَلّم (मा फ़अला रसूलुल्लाहे सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) अरे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने यह क्या किया। देखने में यह वाक्य ग़लत मालूम होता है और इसी कारण इतिहासकारों ने लिखा है कि इसका तात्पर्य यह था कि रसूले करीम (स.अ.व.) से क्या हुआ परन्तु वास्तविकता यह है कि यह वाक्य ग़लत नहीं अपितु स्त्रियों की सामान्य बोल-चाल के अनुसार बिल्कुल सही है। एक स्त्री की संवेदनाएं बहुत तीव्र होती हैं और वह प्रायः मृत्कों को जीवित समझ कर बात करती हैं। उदाहरणतया कुछ स्त्रियों के पति और पुत्रों का निधन हो जाता है तो उनके निधन पर आर्तनाद में से सम्बोधित हो कर वे इस प्रकार की बातें करती रहती हैं कि मुझे किस पर छोड़ चले हो? बेटा इस बुढ़ापे में मुझ से क्यों मुख मोड़ लिया? शोकातुर अवस्था में यह अद्‌भुत रहस्यमय भावोद्रेक का प्रदर्शन मानव प्रकृति की यथार्थता है।

इसी प्रकार रसूले करीम (स.अ.व.) की मृत्यु का समाचार सुन कर उस स्त्री का हाल हुआ। वह आपको मृतक रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी और दूसरी ओर इस सूचना का खण्डन भी नहीं कर सकती थी। इसलिए शोक के तीव्र संवेग में यह कहती जाती थी — अरे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने यह क्या किया अर्थात् ऐसा वफ़ादार व्यक्ति हमें यह आघात पहुँचाने पर क्योंकर सहमत हो गया।

जब लोगों ने देखा कि उसे अपने पिता, पति और भाई की कोई परवाह नहीं तो वे उसकी सच्ची भावनाओं को समझ गए तो उन्होंने कहा कि अमुक की मां ! रसूलुल्लाह (स.अ.व.) तो जिस प्रकार तू चाहती है ख़ुदा की कृपा से कुशलपूर्वक हैं। इस पर उसने कहा — मुझे दिखाओ वह कहां हैं? लोगों ने कहा आगे चली जाओ, वह आगे खड़े हैं। वह महिला भाग कर आप तक पहुँची तथा आप के आंचल को पकड़ कर बोली — हे अल्लाह के रसूल ! मेरे मां-बाप आप पर बलिहारी। जब आप सुरक्षित हैं

तो कोई मरे मझे परवाह नहीं।

(بِاَبِیْ اَنْتَ وَاُمِّیْ یَارَسُوْلَ اللّٰہِ لَا اُبَالِیْ اِذْ سَلَّمْتَ مِنْ عَطَبٍ)

पुरुषों ने युद्ध में ईमान का वह आदर्श प्रदर्शित किया और स्त्रियों ने वफ़ादारी का यह नमूना दिखाया जिस का उदाहरण अभी मैंने वर्णन किया है। ईसाई जगत मरयम मगदलीनी (MAGDALENE) और उसकी साथी स्त्रियों की उस वीरता पर गर्व करता है। कि वह मसीह की क़ब्र पर प्रातःकाल शत्रुओं से छुप कर पहुँची थी। मैं उन से कहता हूँ आओ तनिक मेरे प्रियतम के वफ़ादारों और प्राण बलिदान करने वालों को देखो किन परिस्थितियों में उन्होंने उस का साथ दिया और किन अवस्थाओं में उन्होंने एकेश्वरवाद के ध्वज को फहराया।

इस प्रकार के त्याग की भावना का एक अन्य उदाहरण और भी इतिहास की पुस्तकों में मिलता है। जब रसूले करीम (स.अ.व.) शहीदों को दफ़्न करके मदीना वापस गए तो फिर स्त्रियां और बच्चे स्वागत के लिए नगर से बाहर निकल आए। रसूले करीम (स.अ.व.) की ऊँटनी की बाग मदीना के रईस सअद बिन मआज़ ने पकड़ी हुई थी और गर्व से आगे-आगे दौड़े जाते थे। कदाचित संसार से यह कह रहे थे कि देखा हम मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को कुशलपूर्वक अपने घर वापस ले आए। शहर के पास उन्हें अपनी बूढ़ी मां जिसकी दृष्टि कमज़ोर हो चुकी थी, आती हुई मिली। उहद में उसका एक बेटा उमर बिन मआज़ भी मारा गया था उसे देख कर सअद बिन मआज़ ने कहा— हे अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) ! मेरी मां !!! हे अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) मेरी मां आ रही है। आप ने कहा— ख़ुदा तआला की बरकतों के साथ आए। बुढ़िया आगे बढ़ी और अपनी कमज़ोर फटी आँखों से इधर-उधर देखा कि कहीं रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की शक्ल दिखाई दे जाए। अन्ततः रसूले करीम (स.अ.व.) का चेहरा पहचान लिया और प्रसन्न हो गई।

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— माई मुझे तुम्हारे बेटे के शहीद होने पर तुम से सहानुभूति है। इस पर उस नेक स्त्री ने कहा— हुज़ूर ! जब मैंने आपको सुरक्षित देख लिया तो समझो कि मैंने कष्ट को भून कर खा लिया। "कष्ट को भून कर खा लिया" कितना विचित्र मुहावरा है, प्रेम की कितनी आगाध भावनाओं को दर्शाता है। शोक मनुष्य को खा जाता है वह स्त्री जिस की वृद्धावस्था में उसके बुढ़ापे का सहारा टूट गया किस बहादुरी से कहती है— मेरे बेटे के शोक ने मुझे क्या खाना है जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) जीवित हैं तो मैं उस शोक को खा जाऊँगी। मेरे बेटे की मृत्यु मुझे मारने का कारण नहीं होगी अपितु यह विचार कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के लिए उसने प्राण दिए मेरी शक्ति को बढ़ाने का कारण होगा। हे अन्सार ! मेरे प्राण तुम पर बलिहारी हों, तुम कितना पुण्य ले गए।

बहरहाल रसूले करीम (स.अ.व.) सकुशल मदीना पहुँचे। यद्यपि इस युद्ध में बहुत से मुसलमान मारे भी गए और बहुत से घायल भी हुए परन्तु फिर भी उहद का युद्ध पराजय नहीं कहला सकता। जिन घटनाओं का मैंने ऊपर उल्लेख किया है उन्हें दृष्टिगत रखते हुए यह एक महान विजय थी, ऐसी विजय कि मुसलमान उसे प्रलय तक स्मरण करके अपने ईमान में वृद्धि कर सकते हैं तथा वृद्धि करते रहेंगे। मदीना पहुँच कर आप[स.] ने फिर अपना मूल कार्य अर्थात् प्रशिक्षण, शिक्षा तथा आत्मशुद्धि का कार्य आरम्भ कर दिया परन्तु आप[स.] यह कार्य सरलता और सुगमता से नहीं कर सके, उहद की घटना के पश्चात् यहूद में और भी दुस्साहस पैदा हो गया तथा पाखंडियों (मुनाफ़िको) ने और अधिक सर उठाना आरम्भ कर दिया तथा वे समझे कि कदाचित् इस्लाम को मिटा देना मानव-शक्ति के अन्दर की बात है। अतः यहूदियों ने आप को नाना प्रकार से कष्ट देना आरम्भ कर दिया। गन्दे छन्द बनाकर उनमें आप के वंश की निन्दा की जाती थी। एक बार आप को किसी विवाद का निर्णय करने कि लिए यहूदियों के क़िले

में जाना पड़ा तो उन्होंने षड्यंत्र किया कि जहां आप बैठे हैं उसके ऊपर से पत्थर की एक बड़ी शिला गिरा कर आपको शहीद कर दिया जाए, परन्तु ख़ुदा तआला ने आपको समय पर सूचित कर दिया तथा आप वहाँ से बिना कुछ कहे उठकर चले आए। बाद में यहूदियों ने अपनी ग़लती को स्वीकार कर लिया। मुसलमान स्त्रियों का बाज़ार में अपमान किया जाता था। एक बार इस झगड़े में एक मुसलमान मारा भी गया। एक बार यहूदियों ने एक मुसलमान लड़की का सर पत्थर मार-मार कर कुचल दिया और वह तड़प-तड़प कर मर गई। इन समस्त कारणों से मुसलमानों को यहूदियों से भी युद्ध करना पड़ा, परन्तु अरब और यहूद के कानून के अनुसार मुसलमानों ने उन्हें मारा नहीं अपितु उन्हें मदीना से पलायन करने की शर्त पर छोड़ दिया। अतः उन दोनों क़बीलों में से एक तो शाम की ओर पलायन कर गया और दूसरे का कुछ भाग शाम चला गया और कुछ मदीना से उत्तर दिशा में ख़ैबर नामक एक नगर की ओर। यह नगर अरब में यहूदियों का केन्द्र था और सुदृढ़ किलों पर आधारित था।

मदिरापान के निषेध का आदेश और उसका प्रभाव

उहद के युद्ध तथा उसके बाद होने वाले युद्ध के अन्तराल में संसार ने इस्लाम के अपने अनुयायियों पर होने वाले प्रभाव का एक स्पष्ट उदाहरण देखा। हमारा अभिप्राय मदिरा निषेध से है। इस्लाम से पूर्व अरबों की दशा का वर्णन करते हुए हम ने बताया था कि अरब लोग मदिरापान के अभ्यस्थ थे। प्रत्येक प्रतिष्ठित अरब वंश में दिन में पांच बार मदिरापान किया जाता था तथा मदिरा के नशे में चूर हो जाना उनके लिए सामान्य बात थी तथा इसमें वे तनिक भी लज्जा महसूस नहीं करते थे अपितु वे इसे एक शुभ कर्म समझते थे। जब कोई अतिथि आता तो गृह-स्वामिनी का कर्त्तव्य होता कि वह मदिरापान कराए। इस प्रकार के लोगों से ऐसी

विनाशकारी आदत का छुड़ाना कोई आसान कार्य न था परन्तु हिजरत के चौथे वर्ष मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को ख़ुदा की ओर से आदेश मिला कि मदिरापान का निषेध किया जाता है। इस आदेश की घोषणा होते ही मुसलमानों ने मदिरापान का बिल्कुल परित्याग कर दिया। अतः हदीस में आता है कि जब शराब के अवैध होने की ईशवाणी उतरी तो हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) ने एक सहाबी को बुलाया और आदेश दिया कि इस नवीन आदेश की घोषणा मदीना की गलियों में कर दो। उस समय एक अन्सारी (मदीना का मुसलमान) के घर में शराब की पार्टी थी, बहुत से लोग आमंत्रित थे तथा शराब का दौर जारी था, एक बड़ा मटका ख़ाली हो चुका था, दूसरा मटका आरम्भ होने वाला था। लोग नशे में मस्त हो चुके थे और बहुत से नशे में मस्त होने के निकट थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने सुना कि कोई व्यक्ति घोषणा कर रहा है कि आँहज़रत (स.अ.व.) के आदेश के अन्तर्गत मदिरापान अवैध कर दिया गया है। उन में से एक व्यक्ति उठकर बोला यह तो मदिरापान की निषेधाज्ञा प्रतीत होती है। ठहरो इस संबंध में जानकारी प्राप्त कर लें, इतने में एक अन्य व्यक्ति उठा और उसने शराब से भरे मटके को अपनी लाठी मार कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और कहा — पहले आज्ञा का पालन करो, तत्पश्चात जानकारी प्राप्त करो। यह पर्याप्त है कि हमने ऐसी घोषणा सुन ली और यह उचित नहीं कि हम शराब पीते जाएं और पूछ-ताछ करें अपितु हमारा कर्त्तव्य यह है कि शराब को गलियों में बह जाने दें फिर घोषणा के संबंध में जानकारी प्राप्त करें।

इस मुसलमान का विचार उचित था क्योंकि यदि मदिरापान अवैध किया जा चुका था तो इसके पश्चात् यदि वे मदिरापान जारी रखते तो एक अपराध करने वाले होते और यदि मदिरापान अवैध नहीं किया गया तो उसका बहा देना इतना हानिप्रद न था कि उसे सहन नहीं किया जा

सकता। इस घोषणा के पश्चात् मुसलमानों से मदिरापान बिल्कुल दूर हो गया। इस महान् क्रान्ति को लाने के लिए कोई विशेष प्रयास और पराक्रम की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसे मुसलमान जिन्होंने इस आदेश को सुना और जिसका तुरन्त पालन हुआ, उसे देखा, सत्तर-अस्सी वर्ष तक जीवित रहे परन्तु उनमें से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं जिसने इस आदेश के पश्चात् उसकी अवहेलना की हो। यदि ऐसी कोई घटना हुई है तो वह ऐसे व्यक्ति के संबंध में है जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से सीधे तौर पर प्रशिक्षित न हुआ हो। जब हम उसकी तुलना अमरीका के मदिरा निषेध आन्दोलन से करते हैं तथा उन प्रयासों को देखते हैं जो उस आदेश को लागू करने के लिए किए गए अथवा जो वर्षों तक यूरोप में किए गए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि एक ओर तो हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की मात्र एक घोषणा पर्याप्त थी कि इस सामाजिक दोष को अरब लोगों से समाप्त कर दे परन्तु दूसरी ओर मदिरा-निषेध के कानून बनाए गए। पुलिस सेना तथा टैक्स विभागों के कर्मचारियों ने मदिरापान के अभिशाप को दूर करने के लिए सामूहिक तौर पर प्रयत्न किए परन्तु वे असफल रहे तथा उन्हें अपनी असफलता को स्वीकार करना पड़ा तथा मदिरापान की जीत रही तथा यह मदिरापान का अभिशाप दूर न किया जा सका। हमारे इस वर्तमान युग को उन्नति का युग कहा जाता है परन्तु जब इसकी तुलना इस्लाम के प्रारम्भिक काल से करते हैं तो हम स्तब्ध रह जाते हैं कि इन दोनों में उन्नति का युग कौन सा है। हमारा यह युग अथवा इस्लाम का वह युग, जिसने इतनी बड़ी सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया।

उहद के युद्धोपरान्त काफ़िर कबीलों के जघन्य षड्यंत्र

उहद की घटना ऐसी न थी जिसे आसानी से भुलाया जा सकता। मक्का वालों ने विचार किया था कि यह उन की इस्लाम के विरुद्ध प्रथम

विजय है। उन्होंने यह समाचार समस्त अरब में प्रसारित किया तथा अरब क़बीलों को इस्लाम के विरुद्ध भड़काने तथा यह विश्वास दिलाने का माध्यम बनाया कि मुसलमान अजेय नहीं हैं और यदि वे उन्नति करते रहे हैं तो उसका कारण उनकी शक्ति नहीं थी अपितु अरब के क़बीलों की लापरवाही थी। अरब यदि संयुक्त प्रयास करें तो मुसलमानों पर विजय प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं। इस प्रोपेगन्डा का परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों के प्रति विरोध को बहुत बल मिला तथा अन्य क़बीलों ने मुसलमानों को कष्ट पहुँचाने में मक्का वालों से भी बढ़कर भाग लेना आरम्भ किया। कुछ ने प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण आरम्भ कर दिए और कुछ ने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें हानि पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया।

हिजरत के चौथे वर्ष अरब के दो क़बीले 'अज़ल' और क़ारह[①] ने अपने प्रतिनिधि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास भेजकर सन्देश दिया कि हमारे क़बीलों में बहुत से लोग इस्लाम की ओर झुकाव रखते हैं और अनुरोध किया कि कुछ व्यक्ति जो इस्लामी शिक्षा में पारंगत हों भेज दिए जाएं ताकि वे उनके मध्य रह कर उन्हें इस नए धर्म की शिक्षा दें। वास्तव में यह एक षड्यंत्र था जो इस्लाम के कट्टर शत्रु बनू लहयान ने रचा था। उनका उद्देश्य यह था कि जब ये प्रतिनिधि मुसलमानों को लेकर आएं तो वे उनका वध करके अपनी ओर से सुफ़यान बिन ख़ालिद का प्रतिशोध लेंगे। अत: उन्होंने अज़ल और क़ारह के प्रतिनिधि कुछ मुसलमानों को अपने साथ लाने के उद्देश्य से पुरस्कार के बड़े-बड़े वादे देकर मुहम्मद (स.अ.व.) की सेवा में भेजे थे। जब 'अज़ल' और 'क़ारह' के लोगों ने मुहम्मद रसूलुल्लाह के पास पहुँच कर निवेदन किया तो आप[स.] ने उनकी बात पर विश्वास करके दस मुसलमानों को उनके साथ भेज दिया कि उन लोगों को इस्लाम की आस्थाओं और सिद्धान्तों की शिक्षा

①-बुख़ारी जिल्द-2 किताबुलमग़ाज़ी, ज़रक़ानी जिल्द-2, पृष्ठ-65,66

दें। जब यह दल बनू लहयान के क्षेत्र में पहुँचा तो अज़ल और क़ारह के लोगों ने बनू लहयान को सूचना पहुँचा दी और उन्हें सन्देश दिया कि या तो मुसलमानों को बन्दी बना लें या मौत के घाट उतार दें। इस घिनौने षड्यंत्र के अन्तर्गत बनू लहयान के दो सौ सशस्त्र लोग मुसलमानों का पीछा करने के लिए निकल खड़े हुए तथा 'रजीह' के स्थान में आकर उन्हें घेर लिया। दस मुसलमानों और दो सौ शत्रुओं के मध्य युद्ध हुआ। मुसलमानों के हृदय ईमान के प्रकाश से परिपूर्ण थे और शत्रु इस ईमान से खाली थे। दस मुसलमान एक टीले पर चढ़ गए और दो सौ लोगों को मुकाबले के लिए ललकारा। शत्रु ने धोखा देकर उन्हें बन्दी बनाना चाहा कि यदि तुम नीचे उतर आओ तो तुम से कुछ न कहा जाएगा, परन्तु मुसलमानों के अमीर ने कहा कि हम काफ़िरों के वादों और वचनों को भली-भांति देख चुके हैं। तत्पश्चात् उन्होंने आकाश की ओर मुख उठा कर कहा— हे ख़ुदा ! तू हमारी परिस्थिति को देख रहा है, अपने रसूल को हमारी इस परिस्थिति की सूचना पहुँचा दे। जब काफ़िरों ने देखा कि मुसलमानों की इस छोटी सी जमाअत पर उनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं होता तो उन्होंने उन पर आक्रमण कर दिया और मुसलमान निर्भयतापूर्वक उन से लड़ते रहे यहाँ तक कि दस में से सात शहीद हो गए, शेष तीन जो बच गए थे उन्हें काफ़िरों ने पुनः वादा दिया कि हम तुम्हारे प्राण बचा लेंगे इस शर्त पर कि तुम टीले से नीचे उतर आओ, परन्तु जब वे काफ़िरों के वादे वर विश्वास करके नीचे उतर आए तो काफ़िरों ने उन्हें अपने धनुषों की प्रत्यंचाओं से जकड़ कर बांध लिया। इस पर उनमें से एक ने कहा कि यह पहली अवज्ञा है जो तुम अपने समझौते के बारे में कर रहे हो। अल्लाह ही जानता है कि तुम इसके पश्चात् क्या करोगे। यह कह कर उसने उन के साथ जाने से इन्कार कर दिया। काफ़िरों ने उसे मारना और घसीटना आरम्भ कर दिया, परन्तु अन्ततः उसके मुकाबले और उसके साहस से

इतने निराश हो गए कि उन्होंने उसका वहीं वध कर दिया। शेष दो को वे साथ ले गए तथा उन्हें मक्का के क़ुरैश के हाथ दास के रूप में बेच दिया, उनमें से एक का नाम ख़ुबैब[रज़ि.] था और दूसरे का नाम ज़ैद। ख़ुबैब का ख़रीदार अपने बाप का बदला लेने के लिए जिसका ख़ुबैब ने बदर के युद्ध में वध किया था ख़ुबैब[रज़ि.] का वध करना चाहता था। एक दिन ख़ुबैब[रज़ि.] ने अपनी आवश्यकता हेतु उस्तरा मांगा, उस्तरा ख़ुबैब[रज़ि.] के हाथ में था कि घर वालों का एक बच्चा खेलता हुआ उसके पास चला गया। ख़ुबैब ने उसे उठा कर अपनी जांघ पर बैठा लिया। बच्चे की मां ने जब यह दृश्य देखा तो भयभीत हो गई और उसे विश्वास हो गया कि अब ख़ुबैब बच्चे का वध कर देगा क्योंकि वे कुछ दिनों मैं ख़ुबैब का वध करने वाले थे। उस समय उस्तरा उसके हाथ में था और बच्चा उसके इतना निकट था कि वह उसे हानि पहुँचा सकता था। ख़ुबैब[रज़ि.] ने उस बच्चे की मां के चेहरे से उसकी व्याकुलता को भांप लिया और कहा कि तुम सोचती हो कि मैं तुम्हारे बच्चे का वध कर दूंगा। यह विचार हृदय में कदापि न लाओ, मैं ऐसा कुकृत्य कभी नहीं कर सकता, मुसलमान धोखेबाज़ नहीं होते। वह महिला ख़ुबैब[रज़ि.] की इस ईमानदारी और उचित बात से बहुत प्रभावित हुई। उसने इस बात को सदैव स्मरण रखा और हमेशा कहा करती थी कि हम ने ख़ुबैब[रज़ि.] सा क़ैदी कोई नहीं देखा।

अन्त में मक्का वाले ख़ुबैब[रज़ि.] को एक खुले मैदान में ले गए ताकि उस का वध करके हर्षोल्लास का उत्सव मनाएं। जब उनके वध का समय आ पहुँचा तो ख़ुबैब[रज़ि.] ने कहा— मुझे दो रकअत नमाज़ पढ़ लेने दो। क़ुरैश ने यह बात स्वीकार कर ली और ख़ुबैब ने सब लोगों के सामने इस संसार में अन्तिम बार अपने अल्लाह की उपासना की। जब वह नमाज़ समाप्त कर चुके तो उन्होंने कहा— मैं अपनी नमाज़ जारी रखना चाहता था परन्तु इस विचार से समाप्त कर दी कि कहीं तुम यह न समझो कि मैं

मरने से डरता हूँ फिर आराम से अपना सर वध करने वाले के सामने रख दिया और ऐसा करते हुए ये शे'र पढ़े —

وَلَسْتُ اُبَالِیْ حِیْنَ اُقْتَلُ مُسْلِمًا
عَلٰی اَیِّ جَنْبٍ کَانَ لِلّٰہِ مَصْرَعِی
وَذٰلِکَ فِی ذَاتِ الْاِلٰہِ وَاِنْ یَّشَاء
یُبَارِک عَلٰی اَوْصَالِ شِلْوٍ مُمَزَّعٖ[1]

अर्थात् जब कि मुसलमान होने की अवस्था में मेरा वध किया जा रहा है तो मुझे परवाह नहीं है कि मेरा वध हो कर मैं किस पहलू पर गिरूँ। यह सब कुछ ख़ुदा के लिए है और यदि मेरा ख़ुदा चाहेगा तो मेरे शरीर के कटे हुए भागों पर बरकत उतारेगा।

ख़ुबैब ने अभी ये शे'र समाप्त न किए थे कि जल्लाद की तलवार उनकी गर्दन पर पड़ी और उन का सर धरती पर आ गिरा। जो लोग यह उत्सव मनाने के लिए एकत्र हुए थे उन में से एक व्यक्ति सईद बिन आमिर भी था जो बाद में मुसलमान हो गया। कहते हैं जब कभी ख़ुबैब[रज़ि.] के वध की चर्चा सईद के सामने होती तो वह बेहोश हो जाया करता था।

दूसरा क़ैदी ज़ैद भी वध करने के लिए बाहर ले जाया गया। इस तमाशे को देखने वालों में मक्का का सरदार अबू सुफ़यान भी था। वह ज़ैद से सम्बोधित हुआ और पूछा कि क्या तुम पसन्द नहीं करते कि तुम्हारे स्थान पर मुहम्मद[स.] हो और तुम अपने घर में आराम से बैठे हो। ज़ैद ने बड़े क्रोध की मुद्रा में उत्तर दिया— अबू सुफ़यान ! तुम क्या कहते हो ख़ुदा की क़सम मेरे लिए मरना इस से उत्तम है कि मुहम्मद (स.अ.व.) के पैर में मदीना की गलियों में एक कांटा भी चुभ जाए[2]। श्रद्धासिक्त त्याग की इस संभावना को देखकर अबू सुफ़यान प्रभावित हुए बिना न रह सका और उसने आश्चर्यपूर्वक ज़ैद की ओर देखा और तुरन्त ही दबे

①-बुख़ारी किताबुल मग़ाज़ी। ②-इब्ने हिशाम जिल्द-2 पृष्ठ-122

शब्दों में कहा कि ख़ुदा गवाह है कि जिस प्रकार मुहम्मद (स.अ.व.) के साथ मुहम्मद (स.अ.व.) के साथी प्रेम करते हैं मैंने नहीं देखा कि इस तरह कोई अन्य व्यक्ति किसी से प्रेम करता है।

क़ुर्आन के सत्तर हाफ़िज़ों (कंठस्थ कर्ताओं) के वध की नृशंस घटना①

लगभग इन्हीं दिनों के आस-पास नजद के कुछ लोग मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास आए ताकि उनके साथ कुछ मुसलमान भेज दिए जाएं जो उन्हें इस्लाम की शिक्षा दें। आप[स.] ने उनका विश्वास न किया परन्तु अबूबरा ने जो उस समय मदीना में थे कहा कि मैं इस क़बीले की ओर से उत्तरदायी बनता हूँ और मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को विश्वास दिलाया कि वे कोई उपद्रव नहीं करेंगे। इस पर आप (स.अ.व.) ने सत्तर मुसलमानों को जो क़ुर्आन के हाफ़िज़ (कंठस्थ करने वाले) थे इस कार्य के लिए चुना। जब यह दल 'बेर-ए-मऊना' पर पहुँचा तो उनमें से एक व्यक्ति हराम बिन मल्हान[रज़ि.] आमिर क़बीले के सरदार के पास गया जो 'अबू बरा' का भतीजा था ताकि उसे इस्लाम का सन्देश दे। प्रत्यक्ष तौर पर कबीले वालों ने 'हराम' का भली प्रकार स्वागत गिया परन्तु जिस समय वह सरदार के सामने भाषण दे रहे थे तो एक व्यक्ति छुप कर पीछे से आया और उन पर भाले से प्रहार किया। हराम का वहीं अन्त हो गया। जब बर्छा उनके गले से पार हुआ तो वह कहते हुए सुने गए कि اَللّٰہُ اَکۡبَرُ فُزۡتُ بِرَ الکعبة अर्थात् अल्लाहो अकबर। का'बे के रब्ब की क़सम मैं अपनी मनोकामना को पहुँच गया।

इस धोखेबाज़ी से 'हराम' का वध करने के पश्चात् क़बीले के

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-126, 130 , ज़रकानी जिल्द-2 पृष्ठ-74 , बुख़ारी किताबुलजिहाद, बाबुलऔनवलमदद।

सरदारों ने क़बीले वालों को उत्तेजित किया कि शिक्षकों के शेष दल पर भी आक्रमण करें परन्तु क़बीले वालों ने कहा कि हमारे सरदार 'अबू बरा' ने उत्तरदायित्व स्वीकार किया है, हम उस दल पर आक्रमण नहीं कर सकते। उस कबीले के सरदारों ने उन दो कबीलों की सहायता के साथ जो मुसलमान शिक्षकों को लेने गए थे, शिक्षकों के दल पर आक्रमण कर दिया। उनका यह कहना कि हम उपदेशक हैं, इस्लाम की शिक्षा देने आए हैं युद्ध करने नहीं आए; बिल्कुल काम न आया तथा काफ़िरों ने मुसलमानों का वध करना आरम्भ कर दिया। केवल तीन लोगों के अतिरिक्त सब शहीद हो गए। इस दल में एक लंगड़ा व्यक्ति भी था जो लड़ाई से पूर्व पहाड़ी पर चढ़ गया था तथा दो व्यक्ति ऊँट चराने के लिए जंगल की ओर गए हुए थे। वापसी पर उन्होंने देखा कि उनके छियासठ साथियों के शव मैदान में पड़े हैं। दो ने आपस में परामर्श किया। एक ने कहा— हमें चाहिए कि हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हो कर इस घटना की सूचना दें। दूसरे ने कहा— जहाँ हमारे दल का सरदार जिसे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने हमारा अमीर नियुक्त किया था का वध किया गया है— मैं इस स्थान को छोड़ नहीं सकता। यह कहते हुए वह अकेला काफ़िरों पर टूट पड़ा और लड़ता हुआ मारा गया तथा दूसरे को बन्दी बना लिया गया परन्तु बाद में एक शपथ की बुनियाद पर जो क़बीले के एक सरदार ने खाई थी छोड़ दिया गया। मारे जाने वालों में आमिर-बिन फ़ुहैरा का नाम भी था जो हज़रत अबूबकर[रज़ि.] के आज़ाद किए हुए दास थे, उन का वध करने वाला एक व्यक्ति जब्बार बिन सलमा था जो बाद में मुसलमान हो गया। जब्बार कहा करता था कि आमिर का वध ही मेरे मुसलमान होने का कारण बना था। जब्बार कहता है कि जब मैं आमिर का वध करने लगा तो मैंने आमिर को यह कहते हुए सुना— فُزْتُ واللهِ ख़ुदा की क़सम मैंने अपनी मनोकामना को पा लिया।

तत्पश्चात् मैंने एक व्यक्ति से पूछा, जब मुसलमान मृत्यु का सामना करता है तो वह ऐसी बातें क्यों करता है? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया कि मुसलमान ख़ुदा के मार्ग में मृत्यु को श्रेष्ठ पुरस्कार और विजय समझता है। 'जब्बार' पर इस उत्तर का इतना प्रभाव हुआ कि उसने इस्लाम का नियमित रूप से अध्ययन करना आरम्भ कर दिया और फलस्वरूप इस्लाम धर्म स्वीकार करके मुसलमान हो गया①। इन दो हृदय-विदारक घटनाओं की सूचना जिसमें लगभग अस्सी मुसलमान एक सुनश्चित षड्यंत्र के परिणामस्वरूप शहीद हो गए थे मदीना पहुँच गई। शहीद होने वाले कोई साधारण व्यक्ति न थे अपितु क़ुर्आन के हाफ़िज़ थे। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था, न किसी को कष्ट पहुँचाया था, न ही किसी युद्ध में भागीदार बने थे अपितु ख़ुदा और धर्म के नाम पर झूठी दुहाई दे कर धोखे से शत्रु के सुपुर्द कर दिए गए थे। इन वीभत्स घटनाओं से असंदिग्ध रूप से सिद्ध होता है कि विरोधियों को इस्लाम से कठोर शत्रुता थी। इसके विपरीत इस्लाम के प्रति मुसलमानों की अगाध श्रद्धा एवं सुदृढ़ आस्था थी।

बनी मुस्तलिक़ का युद्ध

उहद के युद्धोपरान्त मक्का में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। मक्का वालों को हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) से जो शत्रुता थी और आप[स.] के विपरीत लोगों में घृणा फैलाने के लिए देश भर में जो उपाय कर रहे थे उनकी परवाह न करते हुए मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इस विकट संकट के समय में मक्का के निर्धनों की सहायता के लिए धन राशि एकत्र की परन्तु इस भलाई का भी मक्का वालों पर कुछ प्रभाव न हुआ तथा उनकी शत्रुता में कुछ अन्तर न आया अपितु वे शत्रुता में और भी बढ़ गए। ऐसे क़बीले भी जो इस से पूर्व मुसलमानों के साथ सहानुभूति का व्यवहार

①-असदुलग़ाबा, इब्ने हिशाम पृष्ठ-127

करते थे शत्रु बन गए। उन कबीलों में से एक क़बीला बनी मुस्तलिक़ का था; मुसलमानों के साथ उनके संबंध अच्छे थे, परन्तु अब उन्होंने मदीना पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी। जब हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) को उन की तैयारी का ज्ञान हुआ तो आपने वस्तु स्थिति मालूम करने के लिए कुछ लोग भेजे जिन्होंने वापस आकर उन सूचनाओं को सच बताया। इस पर हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) ने निर्णय किया कि स्वयं जाकर इस नए आक्रमण का सामना करें। अतः आप ने एक सेना तैयार की तथा उसे लेकर बनू मुस्तलिक की ओर गए। जब मुसलमानों की सेना का शत्रुओं से सामना हुआ तो हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) ने प्रयास किया कि शत्रु युद्ध किए बिना पीछे हट जाने पर तैयार हो जाए, परन्तु उन्होंने इन्कार किया। अतः युद्ध हुआ और कुछ ही घंटों में शत्रु को पराजय का मुख देखना पड़ा।

चूंकि मक्का के काफ़िर मुसलमानों को हानि पहुँचाने पर तुले हुए थे तथा मित्र क़बीले भी शत्रु बन रहे थे इसलिए उन धोखेबाज़ों ने भी जो मुसलमानों के अन्दर मौजूद थे इस अवसर पर साहस किया कि वे मुसलमानों की ओर से युद्ध में भाग लें। कदाचित् उन का विचार था कि इस प्रकार उन्हें मुसलमानों को हानि पहुँचाने का अवसर प्राप्त हो जाएगा बनू मुसतलिक के साथ छेड़ा गया युद्ध कुछ ही घंटों में समाप्त हो गया। अतः इस युद्ध के मध्य मुनाफ़िक लोगों को उपद्रव करने का अवसर प्राप्त न हो सका परन्तु हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) ने निर्णय किया कि बनू मुस्तलिक़ की बस्ती में कुछ दिन ठहरें। आपके अस्थायी तौर पर ठहरने के समय एक मक्का निवासी मुसलमान का एक मदीना निवासी मुसलमान से कुएं से पानी निकालने के संबंध में झगड़ा हो गया। संयोग से यह मक्का निवासी एक आज़ादी प्राप्त दास था, उसने मदीने वाले व्यक्ति को मारा जिस पर उस मदीनावासी ने अन्सार (मदीना वाले मुसलमान) को पुकारा

और मक्कावासी ने मुहाजिरों (मक्का के प्रवासी) को पुकारा और इस प्रकार परस्पर उपद्रव फैल गया। किसी ने यह मालूम करने का प्रयास न किया कि मूल घटना क्या है। दोनों ओर से युवकों ने तलवारें निकाल लीं। अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल ने समझा कि ऐसा अवसर ख़ुदा की ओर से मिल गया है। उसने चाहा कि आग पर तेल डाले। उसने मदीना वालों को सम्बोधित करके कहा कि इन मुहाजिरों पर तुम्हारी सहानुभूति सीमा से अधिक बढ़ गई है और तुम्हारे सद्व्यवहार से इनके सर फिर गए हैं और ये दिन प्रतिदिन तुम्हारे सर चढ़ते जाते हैं। निकट था कि इस भाषण का वही प्रभाव होता जो अब्दुल्लाह चाहता था और झगड़ा बढ़ जाता परन्तु ऐसा न हुआ। अब्दुल्लाह ने अपने उपद्रवपूर्ण भाषण का अनुमान लगाने में ग़लती की थी तथा यह समझते हुए कि अन्सार पर इनका प्रभाव हो गया है उसने यहां तक कह दिया कि हम मदीना में वापस पहुँच लें फिर जो अत्यन्त समादृत व्यक्ति है वह अत्यन्त तिरस्कृत व्यक्ति को बाहर निकाल देगा। अत्यन्त समादृत व्यक्ति से उसका अभिप्राय स्वयं वह था और अत्यन्त तिरस्कृत व्यक्ति से अभिप्राय मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम (ऐसा कहने से हम ख़ुदा की शरण चाहते हैं) उसके मुख से ज्यों ही यह बात निकली मोमिनों पर उसकी वास्तविकता प्रकट हो गई। उन्होंने कहा— यह साधारण बात नहीं अपितु यह शैतान का कथन है जो हमें पथभ्रष्ट करने आया है। एक युवक उठा और उसने अपने चाचा के द्वारा यह सूचना हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) को पहुँचा दी। आप[स.] ने अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल और उसके साथियों को बुलाया और पूछा— क्या बात हुई है? अब्दुल्लाह और उसके साथियों ने सरासर इन्कार कर दिया और कह दिया कि यह बात जो हम से सम्बद्ध की गई है हुई ही नहीं। आप[स.] ने कुछ न कहा, परन्तु सत्य बात का फैलना आरम्भ हो गया। कुछ समय के पश्चात् अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के बेटे अब्दुल्लाह

ने भी यह बात सुनी वह तुरन्त हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरे पिता ने आप[स.] का अपमान किया है, उसका दण्ड मृत्यु है। यदि आप यही निर्णय दें तो मैं चाहता हूँ कि आप[स.] मुझे आदेश दें कि मैं अपने पिता का वध करूँ। यदि आप[स.] किसी अन्य को आदेश देंगे और मेरा पिता उसके हाथों मारा जाएगा तो हो सकता है कि मैं उस व्यक्ति का वध करके अपने पिता का प्रतिशोध लूँ और इस प्रकार ख़ुदा तआला की अप्रसन्नता का कारण बनूं। परन्तु हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) ने फ़रमाया— मेरा कदापि इरादा नहीं। मैं तुम्हारे पिता के साथ दया एवं सहानुभूति का व्यवहार करूँगा① । जब अब्दुल्लाह ने अपने पिता की बेवफ़ाई और उसके कटु शब्दों का मुहम्मद (स.अ.व.) की दयालुता और सहानुभूति से तुलना की तो उसका ईमान और बढ़ गया तथा अपने पिता के विरुद्ध उसका क्रोध भी इसी अनुपात से उन्नति कर गया। जब सेना नदी के निकट पहुँची तो उसने आगे बढ़कर अपने पिता का मार्ग रोक लिया और कहा कि मैं तुम्हें मदीना के अन्दर नहीं जाने दूँगा जब तक तुम वे शब्द वापस न ले लो जो तुम ने मुहम्मद (स.अ.व.) के विरुद्ध प्रयोग किए हैं। जिस मुख से यह बात निकली है कि ख़ुदा का नबी अपमानित है और तुम सम्मानित हो उसी मुख से तुम्हें यह बात भी कहना होगी कि ख़ुदा का नबी सम्मानित है और तुम अपमानित हो जब तक तुम यह न कहोगे, तब तक मैं तुम्हें आगे कदापि न जाने दूँगा। अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल स्तब्ध रह गया तथा भयभीत हुआ और कहने लगा— हे मेरे बेटे ! मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ। मुहम्मद (स.अ.व.) सम्मानित है और मैं अपमानित हूँ। नौजवान अब्दुल्लाह ने इस पर अपने पिता को छोड़ दिया② ।

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-169 ②-'तब्क़ाते क़बीर' लिब्ने सअद क़िस्म अव्वल भाग-2 पृष्ठ-46

मदीना पर समस्त अरबों की चढ़ाई ख़न्दक का युद्ध

इस से पूर्व यहूदयों के दो क़बीलों का वर्णन किया जा चुका है। जो युद्ध, उपद्रव, उत्पात, हिंसा करने की योजनाओं के कारण मदीना से निकाल दिए गए थे, उनमें से बनू नज़ीर का कुछ भाग तो शाम की ओर पलायन कर गया था और कुछ भाग मदीना से उत्तर की ओर ख़ैबर नामक एक नगर की ओर पलायन कर गया था। ख़ैबर अरब में यहूदयों का एक बहुत बड़ा केन्द्र था और एक सुरक्षित दुर्ग के समान नगर था। बनू नज़ीर यहाँ पहुँच कर मुसलमानों के विरुद्ध अरबों को उत्तेजित करने लगा। मक्का निवासियों के हृदयों में पहले ही प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी उसे और अधिक प्रज्वलित करने के लिए किसी अन्य उत्तेजना की आवश्यकता न थी। इसी प्रकार ग़त्फ़ान नामक नज्द का क़बीला जो अरब क़बीलों में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा रखता था वह भी मक्का वालों की मित्रतावश इस्लाम की शत्रुता में अग्रसर रहता था। अब यहूद ने क़ुरैश और ग़त्फ़ान को उत्तेजित करने के अतिरिक्त बनू सलीम और बनू असद दो अन्य शक्तिशाली क़बीलों को भी मुसलमानों के विरुद्ध भड़काना आरम्भ कर दिया और इसी प्रकार बनू असद नामक कबीला जो यहूद का मित्र था उसे भी मक्का के काफ़िरों का साथ देने के लिए तैयार किया। एक लम्बी तैयारी के पश्चात् अरब के शक्तिशाली क़बीलों को मिलाकर एक सामान्य एकता की नींव रख दी गई जिसमें मक्का निवासियों के अतिरिक्त आस-पास के क़बीले तथा नज्द और मदीना से उत्तर की दिशा में आबाद क़बीले भी शामिल थे तथा यहूद भी शामिल थे। इन सभी कबीलों ने संगठित होकर मदीना पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना जुटा ली। यह शवाल माह, 5 हिज्री अन्तिम फरवरी-मार्च 627 ई.[1] की घटना

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-138, लायफ़ आफ़ मुहम्मद लेखक विलियमम्योर

है। विभिन्न इतिहासकारों ने इस सेना का अनुमान दस हज़ार से लेकर चौबीस हज़ार तक लगाया है परन्तु स्पष्ट है कि समस्त अरब के एकत्र हो जाने का परिणाम केवल दस हज़ार सैनिक नहीं हो सकता। निश्चय ही चौबीस हज़ार वाला अनुमान अधिक उचित है और यदि कुछ नहीं तो यह सेना अठारह-बीस हज़ार की संख्या में अवश्य रही होगी। मदीना एक साधारण क़स्बा था, इस क़स्बे के विरुद्ध समस्त अरब का आक्रमण कोई साधारण आक्रमण नहीं था। मदीने के पुरुष एकत्र करके (जिनमें वृद्ध, युवा और बच्चे भी सम्मिलित हों) मात्र तीन हज़ार लोग निकल सकते थे। इसके विपरीत शत्रु-सेना बीस और चौबीस हज़ार के लगभग थी। फिर वे सब फ़ौजी लोग थे, जवान और युद्ध के योग्य थे; क्योंकि जब शहर में रह कर सुरक्षा का प्रश्न खड़ा होता है तो उसमें बूढ़े और बच्चे भी सम्मिलित हो जाते हैं, परन्तु जब सुदूर स्थान पर सेना चढ़ाई करने जाती है तो उसमें केवल जवान और शक्तिशाली लोग होते हैं। अतः यह बात निश्चित है कि काफ़िरों की सेना में बीस या पच्चीस हज़ार जितने भी लोग थे वे सब के सब शक्तिशाली युवक और अनुभवी सैनिक थे परन्तु मदीना के समस्त पुरुषों की संख्या बच्चों और विकलांगों को मिलाकर तीन हज़ार के लगभग थी। स्पष्ट है कि इन बातों को दृष्टिगत रखते हुए यदि मदीना की सेना की संख्या तीन हज़ार समझी जाए तो शत्रु की संख्या चालीस हज़ार मान लेना चाहिए और यदि शत्रु की सेना की संख्या बीस हज़ार समझी जाए तो मदीने की सेना की संख्या को केवल डेढ़ हज़ार समझना चाहिए। जब इस सेना के एकत्र होने की सूचना रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को पहुँची तो आप[स.] ने सहाबा को एकत्र करके परामर्श किया कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए। सहाबा[रज़ि.] में से सलमान फ़ारसी[रज़ि.] जो फ़ारस के सर्वप्रथम मुसलमान थे से पूछा कि तुम्हारे देश में ऐसे अवसर पर क्या करते हैं। उन्होंने कहा हे अल्लाह के रसूल ! जब नगर असुरक्षित हो और सैनिक

थोड़े हों तो हमारे देश के लोग ख़न्दक (खाई) खोदकर उसके अन्दर घेराबन्द हो जाया करते हैं। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उनके इस प्रस्ताव को पसन्द किया। मदीना के एक ओर टीले थे दूसरी ओर ऐसे मुहल्ले थे जिन के मकान एक दूसरे से जुड़े हुए थे तथा शत्रु केवल कुछ गलियों में से गुज़र कर आ सकता था, तीसरी ओर कुछ मकान, कुछ बाग़ और कुछ दूरी पर यहूदी क़बीला बनू क़ुरैज़ा के क़िले थे। यह कबीला चूंकि मुसलमानों से एकता की संधि कर चुका था इसलिए यह दिशा भी सुरक्षित समझ ली गई थी, चौथी ओर खुला मैदान था जिसकी ओर से ख़तरा हो सकता था। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने निर्णय किया कि इस खुले मैदान की ओर खन्दक (खाई) बना दी जाए ताकि शत्रु अचानक शहर में प्रवेश न कर सके। अतः आपस॰ ने दस-दस गज़ का भाग दस-दस लोगों को खोदने के लिए दे दिया और इस प्रकार आपस॰ ने एक मील लम्बी खाई खुदवाई। जब खाई खोदी जा रही थी तो भूमि में एक ऐसा पत्थर निकला जो लोगों से किसी प्रकार से भी टूट नहीं रहा था। सहाबारज़ि॰ ने इस बात की सूचना रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को दी। अतः आपस॰ वहाँ स्वयं गए, अपने हाथ से कुदाल पकड़ा और ज़ोर से उस पत्थर पर मारा; कुदाल के पड़ने से उस पत्थर में से प्रकाश निकला, आपस॰ ने फ़रमाया— अल्लाहो अकबर। फिर दोबारा आप ने कुदाल मारा तो फिर प्रकाश निकला, आप ने फिर फ़रमाया— अल्लाहो अकबर। फिर आपस॰ ने तीसरी बार कुदाल मारा तो फिर प्रकाश निकला और साथ ही पत्थर टूट गया। इस अवसर पर पुनः आप ने फ़रमाया— अल्लाहो अकबर। सहाबारज़ि॰ ने आप से पूछा— हे अल्लाह के रसूल ! आप ने तीन बार अल्लाहो अकबर क्यों फ़रमाया? आपस॰ ने फ़रमाया— पत्थर पर कुदाल पड़ने से तीन बार जो प्रकाश निकला, तीनों बार ख़ुदा ने मुझे इस्लाम की भावी उन्नति के दृश्य दिखाए। पहली बार के प्रकाश में क़ैसर के शासन के अधीन शाम के महल

दिखाए गए तथा उनकी कुंजियां मुझे दी गईं। दूसरी बार के प्रकाश में मुझे मदायन के श्वेत महल दिखाए गए तथा फ़ारस के शासन की कुंजियां मुझे दी गईं, तीसरी बार के प्रकाश में मुझे सनआ के दरवाज़े दिखाए गए, यमन के राज्य की मुझे कुंजियां दी गईं। अतः तुम ख़ुदा तआला के वादों पर विश्वास रखो, शत्रु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता[①]। ये थोड़े से लोग फ़ौजी नियमों के अनुसार इतनी लम्बी ख़न्दक तो नहीं खोद सकते थे अतः यह ख़न्दक इतना ही लाभ दे सकती थी कि शत्रु अचानक अन्दर न घुस सके अन्यथा शत्रु के लिए इस ख़न्दक़ से पार होना असंभव नहीं था। अतः अब जो घटनाएँ वर्णन होंगी उन से ऐसा ही सिद्ध होता है। शत्रु ने भी मदीना की परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर इसी ओर से आक्रमण करने की योजना बनाई हुई थी। अतः शत्रु की विशाल सेना इसी ओर से मदीने में प्रवेश करने कि लिए आगे बढ़ी। रसूले करीम (स.अ.व.) को इसकी सूचना मिली तो आपने भी कुछ लोगों को शहर के अन्य भागों की सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिया तथा शेष लोगों को साथ लेकर जो बारह सौ के लगभग थे ख़न्दक की सुरक्षा के लिए गए।

ख़न्दक के युद्ध के समय इस्लामी सेना की वास्तविक संख्या?

यहां सेना की संख्या के बारे में इतिहासकारों में अत्यधिक मतभेद हैं। कुछ लोगों ने इस सेना की संख्या तीन हज़ार लिखी है, कुछ ने बारह-तेरह सौ और कुछ ने सात-सौ। यह इतना बड़ा मतभेद है कि जिसकी व्याख्या प्रायः कठिन मालूम होती है तथा इतिहासकार इसे हल नहीं कर सके परन्तु मैंने इस की वास्तविकता को पा लिया है और वह यह कि तीनों प्रकार की

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-243 तथा ज़रक़ानी जिल्द-2, सीरत इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-140

रिवायतें सही हैं। यह बताया जा चुका है कि उहद के युद्ध में मुनाफ़िक लोगों के वापस आ जाने के पश्चात् मुसलमानों की सेना केवल सात सौ सदस्यों पर आधारित थी। अहज़ाब का युद्ध इसके दो वर्ष पश्चात् हुआ है तथा इस अवधि में कोई बड़ा क़बीला इस्लाम को स्वीकार करके मदीने में आकर आबाद नहीं हुआ। अतः सात सौ लोगों का सहसा तीन हज़ार हो जाना अनुमान के विपरीत है। दूसरी ओर यह बात भी युक्ति संगत नहीं कि उहद के दो वर्ष पश्चात् तक इस्लाम की उन्नति के बावजूद युद्ध करने के योग्य मुसलमान इतने ही रहे जितने उहद युद्ध के समय थे। अतः इन दोनों समीक्षाओं के बाद वह रिवायत ही उचित मालूम होती है कि लड़ने के योग्य मुसलमान अहज़ाब युद्ध के समय बारह सौ थे। अब रहा यह प्रश्न कि फिर किसी ने तीन हज़ार और किसी ने सात सौ क्यों लिखा है, तो इसका उत्तर यह है कि ये दो रिवायतें (वर्णन) पृथक-पृथक परिस्थितियों और दृष्टिकोणों के अन्तरगत वर्णन की गई हैं। अहज़ाब युद्ध के तीन भाग थे। एक भाग वह था जब अभी शत्रु मदीने के सामने नहीं आया था और खाई (ख़न्दक़) खोदी जा रही थी। इस कार्य में मिट्टी ढोने का कार्य कम से कम बच्चे भी कर सकते थे और कुछ स्त्रियाँ भी इस कार्य में सहयोग दे सकती थीं। अतः जब तक खाई खोदने का कार्य जारी रहा, मुसलमान सेना की संख्या तीन हज़ार थी, परन्तु इस में बच्चे भी सम्मिलित थे तथा सहाबी स्त्रियों की तेजस्वी भावना देख कर हम कह सकते हैं कि इस संख्या में कुछ स्त्रियाँ भी सम्मिलित रही होंगी जो खाई खोदने का कार्य तो नहीं करती होंगी, परन्तु अतिरिक्त कार्यों में भाग लेती होंगी। यह मेरा विचार ही नहीं, इतिहास से भी इस विचार की पुष्टि होती है। अतः लिखा है कि जब खाई खोदने का समय आया सब लड़के एकत्र कर लिए गए तथा सभी पुरुष चाहे वे बड़े थे या बच्चे; खाई खोदने अथवा उसमें सहायता

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-344

देने का कार्य करते थे। फिर जब शत्रु आ गया और युद्ध आरम्भ हुआ तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उन समस्त लड़कों को जो पन्द्रह वर्ष के थे उन्हें अनुमति दी कि चाहे ठहरें चाहे चले जाएँ।[1]

इस रिवायत से विदित होता है कि खाई खोदते समय मुसलमानों की संख्या अधिक थी तथा युद्ध के समय कम हो गई क्योंकि अवयस्कों को वापस चले जाने का आदेश दे दिया गया था। अतः जिन रिवायतों में तीन हज़ार की चर्चा है वह खाई खोदने के समय की संख्या बताती हैं जिसमें छोटे बच्चे भी सम्मिलित थे तथा जैसा कि मैंने अन्य युद्धों को देखते हुए अनुमान द्वारा जो परिणाम निकाला है कुछ स्त्रियाँ भी थीं परन्तु बारह सौ की संख्या उस समय की है जब युद्ध प्रारम्भ हो गया और केवल वयस्क पुरुष रह गए। अब रहा यह प्रश्न कि तीसरी रिवायत जो सात सौ सिपाही बताती है क्या वह भी उचित है?

इस का उत्तर यह है कि यह रिवायत इतिहासकार इब्ने इस्हाक़ ने लिखी है जो विश्वसनीय इतिहासकार है तथा इब्ने हज़्म जैसे प्रकाण्ड विद्वान ने उस की भरपूर पुष्टि की है। अतः इसके संबंध में भी सन्देह नहीं किया जा सकता तथा उसकी पुष्टि इस प्रकार भी होती है कि इतिहास की गहरी छान-बीन से विदित होता है कि जब युद्ध के समय बनू क़ुरैज़ा काफ़िरों की सेना में जा मिले तथा उन्होंने यह इरादा किया कि मदीना पर अचानक आक्रमण कर दे परन्तु उनकी दूषित भावनाओं का रहस्य प्रकट हो गया तो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मदीना की उस ओर की सुरक्षा आवश्यक समझी जिस ओर बनू क़ुरैज़ा थे तथा जिस ओर इस विचार के अनुसार सुरक्षा की उपेक्षा की गई थी कि बनू क़रैज़ा हमारे साथी हैं। ये लोग शत्रु को उस ओर से न आने देंगे। अतः इतिहास द्वारा ज्ञात होता है कि जब बनू क़ुरैज़ा के द्रोह का पता लगा, तो चूंकि बनू क़ुरैज़ा के विश्वास पर स्त्रियाँ उस क्षेत्र में रखी गई थीं। जिस ओर बनू क़रैज़ा के

क़िले थे और असुरक्षित थीं; रसूले करीम (स.अ.व.) ने अब उनकी सुरक्षा आवश्यक समझी तथा मुसलमानों के दो सैन्य दल तैयार करके स्त्रियों के ठहरने के दोनों भागों पर नियुक्त कर दिए। मुस्लिमा बिन असलम[रज़ि.] को दो सौ सहाबा देकर एक स्थान पर नियुक्त किया और ज़ैद बिन हारिस[रज़ि.] को तीन सौ सहाबा देकर दूसरे स्थान पर नियुक्त किया तथा आदेश दिया कि थोड़े-थोड़े समय पर उच्च स्वर में अल्लाहो अकबर का उदघोष करते रहें ताकि ज्ञात होता रहे कि स्त्रियाँ सुरक्षित हैं। इस रिवायत से हमारी यह कठिनाई कि इब्ने इस्हाक़ ने सात सौ सैनिक ख़न्दक़ युद्ध में क्यों बताए हैं हल हो जाती है क्योंकि बारह सौ सैनिकों में से जब पाँच सौ सिपाही स्त्रियों की सुरक्षा के लिए भेज दिए गए तो बारह सौ की सेना मात्र सात सौ रह गई तथा इस प्रकार ख़न्दक़ युद्ध के सैनिकों की संख्या के बारे में इतिहासों में बहुत मतभेद पाया जाता है उसका निवारण हो गया।

सारांश यह कि इस महान संकट के समय ख़न्दक़ की सुरक्षा के लिए रसूले करीम (स.अ.व.) के पास केवल सात सौ लोग थे। इस में कोई सन्देह नहीं कि आप सने ख़न्दक खोदी थी परन्तु फिर भी इतनी बड़ी सेना के ख़न्दक़ के पार से रोकना भी इतने कम लोगों के लिए असंभव था परन्तु ख़ुदा तआला की अलौकिक सहायता के सहारे यह मुट्ठी भर सेना ईमान और विश्वास के साथ ख़न्दक़ के पीछे शत्रु की विशाल सेना की प्रतीक्षा करने लगी और स्त्रियाँ तथा बच्चे दो अलग-अलग स्थानों पर एकत्र कर दिए गए। शत्रु जब ख़न्दक़ तक पहुँचा तो चूंकि यह अरबों के लिए बिल्कुल नई बात थी और वे इस प्रकार के युद्ध के लिए तैयार न थे। उन्होंने ख़न्दक़ के सामने अपने शिविर लगा दिए और मदीने में प्रवेश करने के लिए उपाय सोचने लगे।

बनू क़ुरैज़ा का विश्वासघात

चूंकि मदीना का एक ओर का पर्याप्त भाग ख़न्दक़ से सुरक्षित था और दूसरी ओर कुछ पर्वतीय टीले, पक्के मकान तथा कुछ बाग़ आदि थे, इसलिए सेना तुरन्त आक्रमण नहीं कर सकती थी। अतः उन्होंने परामर्श करके यह उपाय किया कि किसी प्रकार यहूद का तीसरा क़बीला जो अभी मदीना में शेष था, जिसका नाम बनू क़ुरैज़ा था अपने साथ मिला लिया जाए और इस के द्वारा मदीना तक पहुँचने का मार्ग खुल जाए। अतः परामर्श के पश्चात् हुय्यि इब्ने अख़तब को जो बनू नज़ीर का सरदार था जिसको देश से निकाला जा चुका था और जिसके उपद्रव और उत्पात के कारण सम्पूर्ण अरब एकत्र होकर मदीना पर आक्रमणकारी हुआ था, काफ़िरों की सेना के सेनापति अबू सुफ़यान ने इसे इस बात पर नियुक्त किया कि जैसे भी हो बनू क़ुरैज़ा को अपने साथ मिला लो। अतः हुय्यिइब्ने अख़तब यहूदियों के क़िलों की ओर गया। उसने बनू क़रैज़ा के सरदारों से मिलना चाहा। पहले तो उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया परन्तु जब उसने उन्हें समझाया कि इस समय सारा अरब मुसलमानों का विनाश करने के लिए आया है तथा यह बस्ती समस्त अरब का मुकाबला किसी भी प्रकार नहीं कर सकती। इस समय जो सेना मुसलमानों के मुकाबले पर खड़ी है उसे सेना नहीं कहना चाहिए अपितु ठाठे मारने वाला समुद्र कहना चाहिए। इस प्रकार अन्ततः उस ने बनू क़ुरैज़ा को ग़द्दारी और संधि भंग करने पर तैयार कर दिया तथा यह निर्णय हुआ कि काफ़िरों की सेना सामने की ओर से ख़न्दक़ पार करने का प्रयास करे और जब वह ख़न्दक पार करने में सफल हो जाएगी तो बनू क़ुरैज़ा की दूसरी ओर से मदीने के उस भाग पर आक्रमण कर देंगे जहाँ स्त्रियाँ और बच्चे हैं जो बनू क़ुरैज़ा पर विश्वास करके असुरक्षित छोड़ दिए गए थे। इस प्रकार मुसलमानों का मुकाबला

करने की शक्ति पूर्णतया कुचली जाएगी तथा एक ही बार में मुसलमान पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे सब मार दिए जाएँगे। यह निश्चित बात है कि यदि इस योजना में काफ़िरों को कुछ सफलता भी मिल जाती तो मुसलमानों के लिए सुरक्षा का कोई स्थान शेष नहीं रहता था। बनू क़ुरैज़ा मुसलमानों के समझौते के अनुसार मित्र थे और यदि वे इस खुले युद्ध में सम्मिलित न भी होते तब भी मुसलमान यह आशा करते थे कि उनकी ओर से होकर मदीने पर कोई आक्रमण नहीं कर सकेगा। यही कारण था कि उनकी ओर का भाग बिल्कुल असुरक्षित छोड़ दिया गया था। बनू क़ुरैज़ा और काफ़िरों ने इस परिस्थिति के उपलक्ष्य यह निर्णय कर दिया था कि जब बनू क़ुरैज़ा काफ़िरों के साथ मिल गए तो वे प्रत्यक्ष रूप से काफ़िरों की सहायता न करें, ताकि ऐसा ने हो कि मुसलमान मदीने के इस भाग की सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था कर लें जो बनू क़ुरैज़ा के क्षेत्र के साथ लगता था। यह योजना अत्यन्त भयानक थी। मुसलमानों को असावधान रखते हुए बनू क़ुरैज़ा का ऐसी आपात स्थिति में शत्रु के साथ जा मिलना, जबकि शत्रु की सेना का इस्लामी सेना पर भयानक आक्रमण हो रहा हो मदीने की उस ओर की सुरक्षा को जिस ओर बनू क़ुरैज़ा के क़िले थे बिल्कुल असंभव बना दिया था। मुसलमानों पर दोनों ओर से आक्रमण की संभावना के पश्चात् मक्का की सेना ने ख़न्दक़ पर आक्रमण प्रारम्भ किया। पहले कुछ दिन तो उनकी समझ में न आया कि वे ख़न्दक़ को किस प्रकार पार करें परन्तु दो चार दिन के पश्चात् उन्होंने यह उपाय निकाला कि धनुषधारी ऊँचे स्थानों पर खड़े होकर उन मुसलमान दलों पर वाण बरसाना आरम्भ कर देते थे जो ख़न्दक़ की सुरक्षा के लिए ख़न्दक़ के साथ-साथ थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बैठाए गए थे। जब तीरों की बौछार के कारण मुसलमान पीछे हटने पर विवश हो जाते तो उच्च कोटि के घुड़सवार ख़न्दक फांदने का प्रयास करते। विचार किया गया कि इस प्रकार के निरन्तर आक्रमणों

के परिणामस्वरूप कोई न कोई ऐसा स्थान निकल आएगा जहाँ से पैदल सेना अधिक संख्या में ख़न्दक़ पार कर सकेगी। ये आक्रमण निरन्तर इतनी अधिकता के साथ किए जाते थे कि कई बार मुसलमानों को सांस लेने का भी अवसर नहीं मिलता था। अत: एक दिन आक्रमण इतना भीषण हो गया कि मुसलमानों की कुछ नमाज़ें समय पर अदा न हो सकीं, जिसका रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को इतना आघात पहुँचा कि आप ने फ़रमाया ख़ुदा काफ़िरों को दण्ड दे, उन्होंने हमारी नमाज़ें नष्ट कीं①। यद्यपि मैंने यह वृत्तान्त शत्रुओं के आक्रमणों की भयंकरता प्रकट करने के लिए वर्णन किया है परन्तु इस से मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चरित्र पर अत्यधिक प्रकाश पड़ता है और ज्ञात होता है कि आप के लिए संसार में सर्वप्रिय वस्तु ख़ुदा तआला की उपासना थी। जब कि शत्रु मदीना को चारों ओर से घेरे हुआ था, जब कि मदीना के पुरुष तो पृथक रहे स्त्रियों और बच्चों के प्राण भी ख़तरे में थे। जब हर समय मदीने के लोगों का हृदय धड़क रहा था कि शत्रु किसी ओर से मदीने के अन्दर प्रेवश न कर जाए, उस समय भी मुहम्मद रसूलुल्लाह की इच्छा यही थी कि ख़ुदा तआला की इबादत यथा समय उचित प्रकार से अदा हो जाए। मुसलमानों की उपासना यहूदियों, ईसाइयों और हिन्दुओं की भांति सप्ताह में किसी एक दिन नहीं हुआ करती अपितु मुसलमानों की इबादत (उपासना) एक दिन में पाँच बार होती है। ऐसी ख़तरनाक अवस्था में तो दिन में एक बार भी नमाज़ अदा करना मनुष्य के लिए कठिन है कहाँ, पाँच समय और वह भी यथाविधि नियमपूर्वक बाजमाअत (सामूहिक तौर पर) नमाज़ अदा की जाए, परन्तु इन विकट परिस्थितियों में भी मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ये पाँचों नमाज़ें निर्धारित समय पर अदा करते थे और यदि एक दिन शत्रु के भीषण आक्रमण के कारण आप[स.] अपने रब्ब का नाम सन्तोष और शान्ति से यथा समय ने ले सके तो आपको अत्यधिक मानसिक कष्ट पहुँचा। उस समय

①-बुख़ारी जिल्द-2 किताबुलमग़ाज़ी, ग़ज़्वतुल ख़न्दक़।

सामने से शत्रु आक्रमण कर रहा था तथा पीछे से बनू क़ुरैज़ा इस घात में थे कि कोई अवसर मिल जाए तो मुसलमानों में सन्देह पैदा किए बिना वे मदीने के अन्दर घुस कर स्त्रियों और बच्चों का वध कर दें। अतः एक दिन बनू क़ुरैज़ा ने एक जासूस भेजा ताकि वह मालूम करे कि स्त्रियां और बच्चे अकेले ही हैं अथवा पर्याप्त सिपाही सुरक्षा पर नियुक्त हैं। जिस विशेष घेरे में वे विशेष-विशेष ख़ानदान जिन्हें शत्रु से बहुत ख़तरा था एकत्र कर दिए गए थे उसके निकट एक जासूस ने आकर घूमना और चारों ओर से निरीक्षण करना प्रारम्भ किया कि मुसलमान सैनिक कहीं आस-पास छुपे हुए तो नहीं। वह अभी इसी टोह में लगा था कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की फूफी हज़रत सफ़िया[रज़ि.] ने उस देख लिया। संयोग से उस समय वहाँ एक ही मुसलमान मौजूद था और वह भी बीमार था। हज़रत सफ़िया[रज़ि.] ने उस से कहा कि यह व्यक्ति काफी समय से स्त्रियों के क्षेत्र में मंडला रहा है और जाने का नाम नहीं लेता तथा चारों ओर देखता फिरता है। यह निश्चत ही जासूस है; तुम इसका मुकाबला करो, ऐसा न हो कि शत्रु परिस्थितियों पर पूर्णरूप से अवगत हो कर इधर आक्रमण कर दे। इस रोगग्रस्त सहाबी ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, तब हज़रत सफ़िया[रज़ि.] ने स्वयं एक बड़ा बांस लेकर उस व्यक्ति का मुकाबला किया तथा अन्य स्त्रियों की सहायता से उसे मारने में सफल हो गईं। छान-बीन करने पर ज्ञात हुआ कि वह यहूदी बनू क़ुरैज़ा का जासूस था। अतः मुसलमान और अधिक घबराए तथा समझे कि अब मदीने का यह भाग भी सुरक्षित नहीं है परन्तु सामने की ओर से शत्रु का इतना दबाव था कि वे इस ओर की सुरक्षा की कोई व्यवस्था भी नहीं कर सकते थे। इसके बावजूद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने स्त्रियों की सुरक्षा को प्राथमिकता दी और जैसा कि वर्णन किया जा चुका है बारह सौ सैनिकों में से पाँच सौ को स्त्रियों की सुरक्षा के लिए शहर में नियुक्त कर दिया तथा ख़न्दक़ की सुरक्षा तथा अठारह-बीस हज़ार सेना के

मुकाबले के लिए केवल सात सौ सैनिक रह गए। इस परिस्थिति में कुछ मुसलमान घबरा कर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास आए और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! परिस्थितियां नितान्त भयानक रूप धारण कर चुकी हैं अब प्रकट रूप से मदीने के बचने की कोई आशा दिखाई नहीं देती; आपस. ख़ुदा तआला से विशेष तौर पर दुआ करें और हमें भी कोई दुआ सिखाएँ, जिसके पढ़ने से हम पर ख़ुदा तआला की कृपा हो। आपस. ने फ़रमाया— तुम लोग घबराओ नहीं, तुम ख़ुदा तआला से यह दुआ किया करो कि तुम्हारे दोषों पर पर्दा डाले, तुम्हारे हृदयों को दृढ़ता प्रदान करे तथा घबराहट को दूर करे। फिर आपस. ने स्वयं भी इस प्रकार दुआ की —

اَللّٰهُمَّ مُنزِلَ الْكِتٰبِ سَرِيْعَ الْحِسَابِ اهْزِمِ الْاَحْزَابَ اَللّٰهُمَّ اهْزِمْهُمْ وانصرنا عليهم وَزَلزِلْهُمْ ①

और इसी प्रकार यह दुआ की

يَاصَرِيْخَ الْمَكْرُوْبِيْنَ يَامُجِيْبَ الْمُضْطَرِّيْنَ اكْشِفْ هَمِّىْ وَغَمِّىْ وَكَرْبِىْ
فَاِنَّكَ تَرٰى مَانزل بِىْ وَ بِاَصْحَابِىْ ②

हे अल्लाह ! जिसने मुझ पर क़ुर्आन करीम उतारा है, जो अपने बन्दों से अति शीघ्र हिसाब ले सकता है यह गिरोह जो संगठित होकर आए हैं उन्हें पराजित कर दे। अल्लाह! मैं पुन: प्रार्थना करता हूँ कि तू उन्हें पराजित कर तथा हमें विजय प्रदान कर तथा उन के इरादों को छिन्न-भिन्न कर दे, हे विवश लोगों की पुकार सुनने वाले, हे व्याकुल लोगों की गुहार सुनने वाले! मेरी व्याकुलता और चिन्ता का निवारण कर, क्योंकि तू उन संकटों को जानता है जिनसे मैं और मेरे साथियों का सामना है।

मुनाफिकों तथा मोमनों का स्वरूप

इस अवसर पर पाखंडी (मुनाफ़िक़) तो इतने घबरा गए कि जातिगत स्वाभिमान, अपने नगर, अपनी स्त्रियों और बच्चों की सुरक्षा का विचार

①-बुख़ारी जिल्द-2, किताबुलमग़ाज़ी, बाब ग़ज़्वतुल ख़न्दक़ ②-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ 353

तक उनके हृदयों से निकल गया परन्तु वे अपनी जाति के सामने अपमानित भी नहीं होना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बहाने बना कर सेना से पलायन का उपाय सोचा। क़ुर्आन करीम में आता है —

وَيَسْتَاْذِنُ فَرِيْقٌ مِّنْهُمُ النَّبِيَّ يَقُوْلُوْنَ اِنَّ بُيُوْتَنَا عَوْرَةٌ ۛ

وَمَا هِيَ بِعَوْرَةٍ ۚۛ اِنْ يُّرِيْدُوْنَ اِلَّا فِرَارًا (सूरह अहज़ाब-14)

अर्थात् उनमें से एक गिरोह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पास आया और आप से आज्ञा मांगी कि उन्हें रणभूमि से वापस जाने की आज्ञा प्रदान की जाए; क्योंकि उन्होंने कहा (अब यहूदी भी विरोधी हो गए हैं और उस ओर से सुरक्षा का कोई साधन भी नहीं) हमारे घर उस क्षेत्र की ओर से असुरक्षित हैं (अतः हमें आज्ञा दीजिए कि हम जा कर अपने घरों की सुरक्षा करें) परन्तु उन का यह कहना कि उनके घर असुरक्षित हैं बिल्कुल ग़लत है, वे घर असुरक्षित नहीं हैं (क्योंकि ख़ुदा तआला मदीने की सुरक्षा के लिए ख़ड़ा है) वे तो केवल युद्ध से भयभीत होकर युद्ध भूमि से भागना चाहते हैं। उस समय मुसलमानों की जो दशा थी उस का चित्र क़ुर्आन करीम ने यों खींचा है।

اِذْ جَآءُوْكُمْ مِّنْ فَوْقِكُمْ وَمِنْ اَسْفَلَ مِنْكُمْ وَاِذْ زَاغَتِ الْاَبْصَارُ وَ

بَلَغَتِ الْقُلُوْبُ الْحَنَاجِرَ وَتَظُنُّوْنَ بِاللّٰهِ الظُّنُوْنَا ○ هُنَالِكَ ابْتُلِيَ الْمُؤْمِنُوْنَ

وَزُلْزِلُوْا زِلْزَالًا شَدِيْدًا ○ وَاِذْ يَقُوْلُ الْمُنٰفِقُوْنَ وَالَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ

مَّرَضٌ مَّا وَعَدَنَا اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗٓ اِلَّا غُرُوْرًا ○ وَاِذْ قَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ

يٰٓاَهْلَ يَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَكُمْ فَارْجِعُوْا ۚ (सूरह अहज़ाब 11 से 14)

अर्थात् याद तो करो! जब तुम पर सेना चढ़ कर आ गई तुम्हारी ऊपरी ओर से भी और नीचे की ओर से भी अर्थात् नीचे की ओर से काफ़िर और

ऊपर की ओर से यहूद, जब कि आँखें टेढ़ी होने लगीं और हृदय उछल-उछल कर कंठ तक आने लगे और तुम से कई लोगों के हृदयों में ख़ुदा के सम्बन्ध में अशुभ धारणाएं उत्पन्न होने लग गईं। उस समय मोमिनों के ईमान की परीक्षा ली गई तथा मोमिनों को पूर्णतया झंझोड़ कर रख दिया तथा स्मरण करो ! जबकि पाखण्डी (मुनाफ़िक़) और वे लोग जो मानसिक रोगी थे उन्होंने यह कहना आरम्भ किया— अल्लाह और उसके रसूल ने हम से झूठे वादे किए थे और स्मरण करो ! जब उनमें से एक गिरोह इस सीमा तक पहुँच गया कि उन्होंने मोमिनों के पास भी जा-जा कर कहना आरम्भ कर दिया कि तुम्हें अब कोई सुरक्षा की चौकी या क़िला बचा नहीं सकता। अतः यहां से भाग जाओ। मोमिनों के बारे में फ़रमाता है —

وَلَمَّا رَاَ الْمُؤْمِنُوْنَ الْاَحْزَابَ ۙ قَالُوْا هٰذَا مَا وَعَدَنَا اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ وَصَدَقَ
اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗ ۫ وَمَا زَادَهُمْ اِلَّآ اِيْمَانًا وَّتَسْلِيْمًا ۝ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ رِجَالٌ
صَدَقُوْا مَا عَاهَدُوا اللّٰهَ عَلَيْهِ ۚ فَمِنْهُمْ مَّنْ قَضٰى نَحْبَهٗ وَمِنْهُمْ مَّنْ
يَّنْتَظِرُ ۖ وَمَا بَدَّلُوْا تَبْدِيْلًا ۝ (सूरह अहज़ाब 23-24)

अर्थात् कपटी और कमज़ोर ईमान वालों की तुलना में मोमिनों की दशा यह थी कि जब उन्होंने शत्रु की यह विशाल सेना देखी तो उन्होंने कहा कि इस सेना के बारे में तो अल्लाह तआला और उस के रसूल ने हमें पहले से ही सूचना दे रखी थी। इस सेना का आक्रमण तो अल्लाह और उसके रसूल की सच्चाई का प्रमाण है। यह विशाल सेना उनके विश्वास को विचलित न कर सकी अपितु ईमान और श्रद्धा में मुसलमान और भी प्रगति कर गए। मोमिनों की दशा तो यह है कि उन्होंने अल्लाह से जो प्रण किया था उसे पूर्णतया निबाह रहे हैं। अतः कुछ तो ऐसे हैं जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान देकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया तथा कुछ ऐसे हैं

कि जिन्हें प्राण देने का अवसर तो प्राप्त नहीं हुआ परन्तु वे हर समय इस बात की प्रतीक्षा में रहते हैं कि उन्हें ख़ुदा के मार्ग में प्राण देने का अवसर प्राप्त हो तो वे प्राण दे दें। उन्होंने प्रारम्भ से ख़ुदा तआला से जो प्रण किया था उसे पूर्ण कर रहे हैं।

इस्लाम में शव का सम्मान

शत्रु जो ख़न्दक़ पर आक्रमण कर रहा था, किसी समय वह उसे फांदने में सफल भी हो जाता था। अतः एक दिन काफ़िरों के कुछ बड़े-बड़े सेनाधिकारी ख़न्दक फांद कर दूसरी ओर आने में सफल हो गए परन्तु मुसलमानों ने प्राणों पर खेल कर ऐसा आक्रमण किया कि उनके लिए वापस जाने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। अतः उस समय ख़न्दक़ फांदते समय काफ़िरों का नौफ़िल नामक एक बहुत बड़ा सरदार मारा गया। यह इतना बड़ा सरदार था कि क़ाफ़िरों ने यह विचार किया कि यदि उसके शव का अपमान हुआ तो अरब में हमारे लिए मुँह दिखाने का कोई स्थान नहीं रहेगा। अतः उन्होंने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास सन्देश भेजा कि यदि आप उसका शव हमें दे दें तो वे आपको दस हज़ार दिरहम देने के लिए तैयार हैं।

उन लोगों का विचार तो यह था कि जिस प्रकार हम ने मुसलमान सरदारों अपितु स्वयं रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चाचा के नाक-कान उहद युद्ध में काट दिए थे, कदाचित इसी प्रकार आज मुसलमान भी हमारे इस सरदार के नाक-कान काट कर हमारी जाति का अपमान करेंगे परन्तु इस्लामी आदेश तो इससे बिल्कुल भिन्न हैं। इस्लाम शवों के अपमान की आज्ञा नहीं देता। अतः काफ़िरों का सन्देश मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास पहुँचा तो आप[स.] ने फ़रमाया— इस शव का हमने क्या करना है, यह शव हमारे किस काम का है कि इसके बदले में हम तुम से कोई

मूल्य लें। अपना शव बड़े आराम से उठा कर ले जाओ। हमें इस से कोई मतलब नहीं।①

विरोधी सेनाओं के गठबंधन के मुसलमानों पर आक्रमण

इन दिनों काफ़िर जिस आवेगपूर्ण तीव्रता से आक्रमण करते थे विलियम म्योर उस की चर्चा इन शब्दों में करता है —

> "दूसरे दिन मुहम्मद (स.अ.व.) ने देखा कि संयुक्त सेनाएं उन पर सामूहिक तौर पर आक्रमण करने के लिए तैयार खड़ी हैं, उनके आक्रमणों को रोकने के लिए अत्यधिक सतर्क तथा प्रति पल सावधान रहना आवश्यक था। कभी वे सामूहिक तौर पर आक्रमण करते, कभी छोटे दलों में विभाजित हो कर विभिन्न चौकियों पर आक्रमण करते और जब किसी चौकी को कमज़ोर देखते तो अपनी सम्पूर्ण सेना उस चौकी पर एकत्र कर लेते तथा भीषण बाण-वर्षा की ओट में वे ख़न्दक़ पार करने का प्रयास करते थे। ख़ालिद और उमर जैसे प्रसिद्ध नेताओं के नेतृत्व में सेना नगर में प्रवेश करने के लिए वीरतापूर्ण आक्रमण करती। एक बार तो स्वयं मुहम्मद (स.अ.व.) का तम्बू शत्रु के निशाने पर आ गया परन्तु मुसलमानों के प्राणपण की भावनाओं से ओत-प्रोत मुकाबले और तीरों की बौछार ने आक्रमणकारियों को पीछे ढकेल दिया। यह आक्रमण दिन भर जारी रहा। चूंकि मुसलमानों की समस्त सेना मिलकर बड़ी कठिनाई से ख़न्दक़ की सुरक्षा कर सकती थी, मुसलमानों को आराम करने का अवसर प्राप्त न हुआ। रात हो गई, परन्तु रात को भी ख़ालिद के अधीन सैनिक दलों ने युद्ध जारी रखा तथा मुसलमानों को विवश कर दिया कि

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-345

वे रात को भी अपनी चौकियों की पूरी तरह रक्षा करें परन्तु शत्रु के ये समस्त प्रयास व्यर्थ गए। ख़न्दक़ को शत्रु के यथेष्ट सैनिक भी कभी भी पार न कर सके।①

परन्तु इसके बावजूद दो दिन से युद्ध जारी था, सैनिक एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो जाने का अवसर नहीं पाते थे, इसलिए चौबीस घंटे के युद्ध में संयुक्त सेना के मात्र तीन लोग मारे गए और मुसलमानों के पाँच। इस आक्रमण में सअद बिन मआज़[रज़ि.] औस क़बीले के सरदार तथा रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के प्राण न्योछावर करने वाले सहाबी अत्यधिक घायल हुए। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि एक स्थान पर ख़न्दक़ के किनारे टूट गए तथा उस ओर से आक्रमण करने की संभावना बढ़ गई। रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के साहस तथा मुसलमानों के प्रति सहृदयता का यह हाल था कि आप सर्दी में रात को उठ-उठ कर उस स्थान पर जाते और उनका पहरा देते। हज़रत आइशा[रज़ि.] फ़रमाती हैं कि आप पहरा देते हुए थक जाते और सर्दी से निढाल हो जाते तो वापस आकर थोड़ी देर के लिए मेरे साथ लिहाफ़ में लेट जाते परन्तु शरीर के गर्म होते ही फिर उस स्थान की सुरक्षा के लिए चले जाते। इस प्रकार निरन्तर जागने से आप[स.] एक दिन बिल्कुल निढाल हो गए तथा रात के समय फ़रमाया— काश इस समय कोई वफ़ादार मुसलमान होता तो मैं आराम से सो जाता। इतने में बाहर से सअद बिन वक़्क़ास[रज़ि.] की आवाज़ आई। आप[स.] ने पूछा कि क्यों आए हो? उन्होंने कहा— आप का पहरा देने के लिए। आप[स.] ने फ़रमाया— मुझे पहरे की आवश्यकता नहीं, तुम उस स्थान पर जहां ख़न्दक़ का किनारा टूट गया है जाओ और उस का पहरा दो ताकि मुसलमान सुरक्षित रहें। अतः सअद[रज़ि.] उस स्थान का पहरा देने के लिए चले गए और आप सो गए। विचित्र बात यह है कि जब आप[स.] ने

---

①-*The life of Mohammad By Mr.William Muir Page 32*

बिल्कुल आरम्भ में मदीना में पदार्पण किया था तथा बहुत अधिक ख़तरा था, तब भी सअद[रज़ि.] पहरा देने के लिए आए थे। उन्हीं दिनों आप[स.] ने एक दिन कुछ लोगों के शस्त्रों की आवाज़ सुनी और पूछा कि कौन है? तो उबादा बिन बशीर ने कहा कि मैं हूँ। आप[स.] ने फ़रमाया— तुम्हारे साथ कोई और भी है? उन्होंने कहा सहाबा की एक जमाअत है जो आप के तम्बू का पहरा देने के लिए आई है। आप ने फ़रमाया— इस समय मुश्रिक (द्वैतवादी) ख़न्दक़ फांदने का प्रयत्न कर रहे हैं वहाँ जाओ और उनका मुक़ाबला करो, मेरे तम्बू को रहने दो।

बनू क़ुरैज़ा की मुश्रिकों (द्वैतवादियों) से मिलकर आक्रमण की तैयारी तथा उसमें असफलता

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है यहूद ने मदीने में गुप्त रूप से प्रवेश करने का प्रयास किया और उस में उनका जासूस मारा गया। जब यहूद को यह ज्ञात हुआ कि उन का षड्यंत्र प्रकट हो गया है तो उन्होंने अत्यधिक निर्भीकता से अरबों की सहायता आरम्भ कर दी। यद्यपि सामूहिक आक्रमण मदीने के पीछे की ओर से नहीं किया; क्योंकि उधर मैदान छोटा था तथा मुसलानों की सेना की उपस्थिति में उस ओर से बड़ा आक्रमण असंभव था परन्तु कुछ दिनों के पश्चात् यह निर्णय किया कि यहूद और द्वैतवादियों की सेनाएं मुसलमानों पर एक निर्धारित समय पर आक्रमण कर दें, परन्तु उस समय ख़ुदा की सहायता एक अद्भुत रूप में प्रकट हुई जिसका विवरण यह है —

ग़तफ़ान कबीले का नईम नामक व्यक्ति हृदय में मुसलमान था। यह व्यक्ति भी काफ़िरों के साथ आया था परन्तु इस बात की प्रतीक्षा में था कि यदि मुझे कोई अवसर प्राप्त हो तो मैं मुसलमानों की सहायता करूँ। अकेला मनुष्य कर ही क्या सकता है, परन्तु जब उसने देखा कि यहूद भी

काफ़िरों से मिल गए हैं और अब प्रगट रूप से मुसलमानों की सुरक्षा का कोई साधन दिखाई नहीं देता तो इन परिस्थितियों से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने निर्णय कर लिया कि हमें हर हालत में इस षड्यंत्र के निवारण के लिए कुछ न कुछ करना चाहिए। अतः वह बनू क़ुरैज़ा के पास गया तथा उनके सरदारों से कहा कि यदि अरबों की सेना भाग जाए तो बताओ मुसलमान तुम्हारे साथ क्या करेंगे? तुम समझौता के अनुसार उनके साथी हो। अतः संधि करके उसे भंग करने के परिणामस्वरूप तुम्हें जो दण्ड दिया जाएगा उसकी कल्पना करो। उनके हृदय कुछ भयभीत हुए तथा उन्होंने पूछा— फिर हम क्या करें? नईम ने कहा जब अरब संयुक्त आक्रमण के लिए तुम से कहें तो तुम उन से मांग करो कि तुम अपने सत्तर आदमी हमारे पास बतौर बंधक रख दो, वे हमारे दुर्गों की सुरक्षा करेंगे और हम मदीने के पीछे से उस पर आक्रमण कर देंगे। वह फिर वहां से हट कर द्वैतवादियों के सरदारों के पास गया और उन से कहा कि ये यहूद तो मदीना के रहने वाले हैं, यदि समय पड़ने पर ये तुम से विश्वासघात करें तो फिर क्या करोगे? यदि ये मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए और अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए तुम से तुम्हारे लोग बतौर बंधक मांगें और उन्हें मुसलमानों के सुपुर्द कर दें तो फिर तुम क्या करोगे? तुम्हें चाहिए कि उनकी परीक्षा लो कि क्या वे अपनी बात पर दृढ़ भी रहते हैं अथवा नहीं तथा उन्हें शीघ्र ही अपने साथ मिलकर सुनिश्चित रूप से आक्रमण करने के लिए आमंत्रित करो। काफ़िरों के सरदारों ने इस परामर्श को उचित समझते हुए दूसरे दिन यहूद को सन्देश भेजा कि हम एक संयुक्त आक्रमण करना चाहते हैं, तुम भी अपनी सेनाओं सहित कल आक्रमण कर दो। बनू क़ुरैज़ा ने कहा— कि प्रथम तो कल हमारा 'सब्त' का दिन है इसलिए हम उस दिन लड़ाई नहीं कर सकते, दूसरे हम मदीना निवासी हैं और तुम बाहर के हो। यदि तुम युद्ध छोड़ कर चले जाओ तो

हमारा क्या बनेगा? इसलिए यदि आप लोग हमें सत्तर सैनिक बतौर बंधक देंगे तो हम युद्ध में सम्मिलित होंगे। काफ़िरों के हृदय में चूंकि पहले से सन्देह पैदा हो चुका था उन्होंने उनकी इस मांग को पूरा करने से इन्कार कर दिया और कहा कि यदि तुम्हारी हमारे साथ एकता सच्ची भावना पर आधारित थी तो इस प्रकार की माँग का कोई अर्थ नहीं। इस घटना से यहूद के हृदयों में शंकाएं जन्म लेने लगीं। जैसा कि नियम है कि जब शंकाएं उत्पन्न होने लगती हैं तो वीरता की भावना भी समाप्त हो जाती है। इन्हीं आशंकाओं और सन्देहों के रहते काफ़िरों की सेना रात को विश्राम करने के लिए अपने शिविरों में चली गई तो अल्लाह तआला ने अपनी सहायता का एक अन्य मार्ग खोल दिया। रात को एक भीषण आंधी आई जिसने शिविरों के पर्दे तोड़ दिए, चूल्हों पर से हांडियां उलट दीं तथा कुछ क़बीलों की आगें बुझ गईं। अरब के मुश्रिकों (द्वैतवादियों) में एक प्रथा थी कि वे सारी रात आग जलाए रखते थे और उसे वे शुभ शगुन समझते थे। जिसकी अग्नि बुझ जाती थी वह समझता था कि आज का दिन उसके लिए अशुभ है तथा वह अपने डेरे उठाकर रणभूमि से पीछे हट जाता था। जिन क़बीलों की अग्नि बुझ गई उन्होंने इस प्रथा के अनुसार अपने तम्बू उखाड़े और पीछे चल पड़े ताकि एक दिन पीछे प्रतीक्षा करके पुनः सेना में आकर सम्मिलित हों, परन्तु चूंकि दिन के विवादों के कारण सेना के सरदारों के हृदय में शंकाएं उत्पन्न हो रही थीं, जो क़बीले पीछे हटे उनके आस-पास के क़बीलों ने भी समझा की कदाचित् यहूद ने मुसलमानों के साथ मिलकर रात को छापा मारा है और हमारे आस-पास के क़बीले भागे जा रहे हैं। अतः उन्होंने भी बड़ी शीघ्रता के साथ अपने शिविर समेटने तथा रणभूमि से भागना आरम्भ कर दिया। अबू सुफ़यान अपने तम्बू में आराम से लेटा हुआ था कि इस घटना की सूचना उसे भी पहुँची। वह घबरा कर अपने बंधे हुए ऊँट पर जा चढ़ा और उस एडियां लगाना आरम्भ किया।

अन्ततः उसके मित्रों ने उसे ध्यान दिलाते हुए कहा कि वह यह क्या मूर्खता कर रहा है। इस पर उसके ऊँट की रस्सियां खोली गईं और वह भी अपने साथियों सहित मैदान से भाग गया।

रात के अन्तिम तिहाई भाग में वह मैदान जिसमें काफ़िरों की बीस पच्चीस हज़ार सेना डेरा डाले हुए थी वह एक जंगल की भांति निर्जन हो गया। उस समय अल्लाह तआला ने रसूले करीम (स.अ.व.) को इल्हाम (ईशवाणी) के द्वारा बताया कि तुम्हारे शत्रु को हम ने भगा दिया है। आप[स.] ने वस्तु स्थिति ज्ञात करने के लिए किसी व्यक्ति को भेजना चाहा तथा अपने आस-पास बैठे सहाबा[रज़ि.] को आवाज़ दी। सर्दी के दिन थे और मुसलमानों के पास पर्याप्त कपड़े भी न होते थे, अत्यधिक ठण्ड के कारण जीभें तक सुन्न हो रही थीं। कुछ सहाबा[रज़ि.] कहते हैं कि हम ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की आवाज़ सुनी तथा हम उत्तर भी देना चाहते थे परन्तु हम से बोला नहीं गया; केवल एक हुज़ैफ़ा[रज़ि.] थे जिन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल क्या काम है? आप ने फ़रमाया— तुम नहीं मुझे कोई अन्य व्यक्ति चाहिए। आप[स.] ने पुनः फ़रमाया— कोई है? परन्तु फिर भी भयंकर सर्दी के कारण जो लोग जाग भी रहे थे वे उत्तर न दे सके। हुज़ैफ़ा[रज़ि.] ने पुनः कहा हे अल्लाह के रसूल! मैं उपस्थित हूँ। अन्ततः आप[स.] ने हुज़ैफ़ा[रज़ि.] को यह कहते हुए भेजा कि अल्लाह तआला ने मुझे सूचना दी है कि तुम्हारे शत्रु को हम ने भगा दिया है, जाओ और देखो कि शत्रु की क्या दशा है। हुज़ैफ़ा[रज़ि.] ख़न्दक़ के पास गए और देखा कि मैदान शत्रु-सैनिकों से पूर्णतया ख़ाली पड़ा था। वापस आए और शहादत का कलिमा उच्चारण करते हुए रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के रसूल होने की पुष्टि की और बताया कि शत्रु मैदान छोड़ कर भाग गया है। प्रातः मुसलमान अपने तम्बू उखाड़ कर अपने-अपने घरों की ओर आने आरम्भ हुए।[1]

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-354

बनू क़ुरैज़ा को विश्वासघात का दण्ड

बीस दिनों के बाद मुसलमानों ने सन्तोष का साँस लिया, परन्तु अब बनू क़ुरैज़ा का मामला निर्णय होने वाला था। उनका विश्वासघात ऐसा नहीं था कि उसकी उपेक्षा की जाती। मुहम्मद (स.अ.व.) ने वापस आते ही अपने सहाबा[रज़ि.] से फ़रमाया— घरों में आराम न करो अपितु सायंकाल से पूर्व ही बनू क़ुरैज़ा के दुर्गों तक पहुँच जाओ। फिर आप[स.] ने हज़रत अली[रज़ि.] को बनू क़ुरैज़ा के पास भेजा कि वह उन से पूछें कि उन्होंने समझौते के विरुद्ध विश्वासघात क्यों किया? इस पर चाहिए तो यह था कि वे लज्जित होते, क्षमा-याचना करते या खेद प्रकट करते, उल्टा उन्होंने हज़रत अली[रज़ि.] और उनके साथियों को बुरा-भला कहना आरम्भ कर दिया तथा रसूले करीम (स.अ.व.) और आप के ख़ानदान की स्त्रियों को गालियाँ देने लगे और कहा— हम नहीं जानते मुहम्मद (स.अ.व.) क्या वस्तु हैं, हमारा उनके साथ कोई समझौता नहीं। हज़रत अली[रज़ि.] उन का यह उत्तर लेकर वापस लौटे तो इतने में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) सहाबा[रज़ि.] के साथ यहूद के क़िलों (दुर्गों) की ओर जा रहे थे। चूंकि यहूद गन्दी गालियां दे रहे थे तथा मुहम्मद (स.अ.व.) की पत्नियों और बेटियों के बारे में भी अपशब्दों का प्रयोग कर रहे थे, हज़रत अली[रज़ि.] ने इस विचार से कि आप को इन वाक्यों को सुनकर कष्ट होगा, कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप क्यों कष्ट करते हैं, हम लोग इस लड़ाई के लिए पर्याप्त हैं, आप वापस जाइए। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— मैं समझता हूँ वे गालियां दे रहे हैं और तुम यह नहीं चाहते कि मेरे कान में वे गालियां पड़ें। हज़रत अली[रज़ि.] ने कहा— हाँ, हे अल्लाह के रसूल ! बात तो यही है। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— फिर क्या हो गया यदि वे गालियां देते हैं। मूसा नबी तो उनका अपना था, उसे इस से भी कहीं अधिक

कष्ट पहुँचाए थे। यह कहते हुए आप[स.] यहूद के किलों की ओर चले गए, परन्तु यहूदी दरवाज़े बन्द करके क़िलाबन्द हो गए और मुसलमानों के साथ लड़ाई आरम्भ कर दी, यहां तक कि उनकी स्त्रियां भी लड़ाई में सम्मिलित हुईं। अत: क़िले की दीवार के नीचे कुछ मुसलमान बैठे थे कि एक यहूदी स्त्री ने ऊपर से पत्थर फेंक कर एक मुसलमान को मार दिया, परन्तु कुछ दिनों की घेराबन्दी के पश्चात् यहूद ने यह महसूस किया के वे लम्बा मुकाबला नहीं करत सकते। अत: उनके सरदारों ने रसूले करीम (स.अ.व.) से इच्छा प्रकट की कि वह अबूलुबाबह अन्सारी को जो उनके मित्र तथा औस क़बीले के सरदार थे उन के पास भिजवाएं ताकि वे उन से परामर्श कर सकें। आप[स.] ने अबू लुबाबह को भिजवा दिया। यहूद ने उन से यह परामर्श लिया कि क्या मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की इस माँग को कि निर्णय मेरे सुपुर्द करते हुए तुम हथियार फेंक दो; हम यह स्वीकार कर लें? अबू लुबाबह ने मुख से तो कहा— हाँ! परन्तु अपने गले पर इस प्रकार हाथ फेरा जिस प्रकार कि वध का लक्षण होता है। रसूले करीम (स.अ.व.) ने अभी तक अपना कोई निर्णय व्यक्त नहीं किया था, परन्तु अबू लुबाबह ने अपने हृदय में यह समझते हुए कि उनके इस अपराध का दण्ड वध के अतिरिक्त और क्या होगा, बिना विचार किए सांकेतिक भाषा में उन से एक बात कह दी जो अन्तत: उनके विनाश का कारण हुई। अत: यहूद (बनू क़ुरैज़ा) ने कह दिया कि यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह का निर्णय मान लेते तो अन्य यहूदी क़बीलों की भांति उन्हें अधिक से अधिक यही दण्ड दिया जाता कि उन्हें मदीने से निर्वासित कर दिया जाता परन्तु उनका दुर्भाग्य था कि उन्होंने कहा हम मुहम्मद रसूलुल्लाह का निर्णय स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं अपितु हम अपने मित्र कबीला औस के सरदार सअद बिन मआज़[रज़ि.] का निर्णय स्वीकार करेंगे। जो निर्णय वह करेंगे हमें शिरोधार्य होगा, परन्तु उस समय यहूद में मतभेद हो गया। यहूद में से

कुछ ने कहा कि हमारी जाति ने विश्वासघात किया है और मुसलमानों के व्यवहार से सिद्ध होता है कि उन का धर्म सच्चा है। वे लोग अपना धर्म त्याग कर इस्लाम में प्रवेश कर गए। एक व्यक्ति अमर बिन सादी ने जो उस जाति के सरदारों में से था अपनी जाति की भर्त्सना की और कहा कि तुम ने विश्वासघात किया है कि समझौता भंग किया है, अब या तो मुसलमान हो जाओ या सुरक्षा हेतु कर देने पर सहमत हो जाओ। यहूद ने कहा— न मुसलमान होंगे, न ही कर देंगे कि इससे मर जाना उचित है। फिर उसने उन से कहा— मैं तुम से विमुक्त हूँ और यह कह कर क़िले से निकल कर बाहर चल दिया। जब वह क़िले से बाहर निकल रहा था मुसलमानों के एक दल ने जिसके सरदार मुहम्मद बिन मुस्लिमा[रज़ि.] थे उसे देख लिया तथा उस से पूछा कि वह कौन है? उसने उत्तर दिया कि मैं अमुक व्यक्ति हूँ। इस पर मुहम्मद बिन मस्लिमा[रज़ि.] ने फ़रमाया —

اَللّٰھُمَّ لَا تَحْرِمْنِی اقالۃ عرات الکرام[①]

अर्थात् आप सुरक्षा के साथ चले जाइए और फिर अल्लाह तआला से दुआ की कि हे मेरे उपास्य अल्लाह ! मुझे सज्जन व्यक्तियों की ग़लतियों पर पर्दा डालने के शुभकर्म से कभी वंचित न करना अर्थात् यह व्यक्ति चूंकि अपने कुकृत्य पर तथा अपनी जाति के दुष्कृत्य पर पश्चाताप करता है तो हमारा भी नैतिक कर्त्तव्य है कि उसे क्षमा कर दें। इसलिए मैंने उसे गिरफ़्तार नहीं किया और जाने दिया है। ख़ुदा तआला मुझे हमेशा ऐसे ही शुभकर्मों की शक्ति प्रदान करता रहे। जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को इस घटना का ज्ञान हुआ तो आप[स.] ने मुहम्मद बिन मस्लिमा[रज़ि.] की डांट-डपट नहीं की कि उस यहूदी को क्यों छोड़ दिया अपितु उस के इस कार्य की सराहना की।

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2 पृष्ठ-363

बनू क़ुरैज़ा के अपने नियुक्त किए गए मध्यस्थ सअद[रज़ि.] का निर्णय तौरात के अनुकूल था

ये उपरोक्त घटनाएं व्यक्तिगत प्रकार की थीं। बनू क़ुरैज़ा जाति की हैसियत से अपनी हठ पर बने रहे तथा मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के आदेशों का इन्कार करते हुए सअद[रज़ि.] के निर्णय का आग्रह किया। मुहम्मद (स.अ.व.) ने भी उन की इस माँग को स्वीकार कर लिया। सअद[रज़ि.] को जो युद्ध में घायल हो चुके थे सूचना दी कि बनू क़ुरैज़ा तुम्हारा निर्णय स्वीकार करते हैं, आकर निर्णय करो। इस प्रस्ताव की घोषणा होते ही औस क़बीले के लोग जो बनू क़ुरैज़ा के काफ़ी समय से मित्र चले आए थे, सअद के पास दौड़ कर गए और आग्रह किया कि चूंकि 'ख़ज़रज' ने अपने मित्र यहूदियों को हमेशा दण्ड से बचाया है; आज तुम भी अपने मित्र क़बीले के पक्ष में निर्णय देना।

सअद[रज़ि.] घावों के कारण बनू क़ुरैज़ा की ओर सवारी द्वारा गए। उनकी जाति के लोग उनके दाएँ-बाएँ दौड़ते जाते थे और सअद[रज़ि.] से आग्रह करते जाते थे कि देखना बनू क़ुरैज़ा के विरुद्ध फैसला न देना परन्तु सअद[रज़ि.] ने केवल यही उत्तर दिया कि किसी मामले का निर्णय जिस व्यक्ति के सुपुर्द किया जाता है वह अमानतदार होता है, उसे ईमानदारी से फैसला करना चाहिए। मैं ईमानदारी से फ़ैसला करूँगा। जब सअद[रज़ि.] यहूद के क़िले के पास पहुँचे जहाँ एक ओर बनू क़ुरैज़ा क़िले की दीवार के साथ खड़े सअद[रज़ि.] की प्रतीक्षा कर रहे थे तथा दूसरी ओर मुसलमान बैठे थे। अतः सअद[रज़ि.] ने पहले अपनी जाति से पूछा— क्या आप लोग वादा करते हैं कि मैं जो निर्णय करूँ उसे आप लोग स्वीकार करेंगे? उन्होंने कहा— हाँ, फिर सअद ने बनू क़ुरैज़ा को सम्बोधित करते हुए कहा कि

क्या आप लोग वादा करते हैं कि मैं जो निर्णय करूँगा वह आप लोग स्वीकार करेंगे? फिर लज्जाभाव से दृष्टि को नीचे रखते हुए; उस ओर संकेत किया जिस ओर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) विराजमान थे, कहा— इधर बैठे हुए लोग भी यह वादा करते हैं ? रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— हाँ। तत्पश्चात् सअद[रज़ि.] ने बाइबल के आदेशानुसार निर्णय सुनाया[①]। बाइबल में लिखा है —

> "और जब तू किसी शहर के पास उससे लड़ने के लिए आ पहुँचे तो प्रथम उस से संधि का सन्देश कर। तब यों होगा कि यदि वह तुझे उत्तर दे कि संधि स्वीकार तथा तेरे लिए द्वार खोल दे तो समस्त प्रजा जो उस शहर में पाई जाए तुझे सुरक्षा कर देने वाली होगी तथा तेरी सेवा करेगी और यदि वह तुझ से संधि न करे अपितु तुझ से युद्ध करे तो तू उस की घेराबन्दी कर, तथा जब ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा उसे तेरे अधिकार में कर दे तो वहाँ के प्रत्येक पुरुष का तलवार की धार से वध कर परन्तु स्त्रियों और बच्चों तथा पशुओं को और जो कुछ उस शहर में हो उस की लूट का सारा धन अपने लिए ले और तू अपने शत्रुओं की इस लूट को जो ख़ुदावन्द तेरे ख़ुदा ने तुझे दी है, खा। इसी प्रकार तू उन सब शहरों से जो तुझ से बहुत दूर हैं तथा उन जातियों के शहरों में से नहीं हैं यही हाल करना परन्तु उन जातियों के शहरों में जिन्हें ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा तेरी पैतृक सम्पत्ति कर देता है, किसी वस्तु को जो साँस लेती है जीवित न छोड़ना अपितु तू उन्हें नष्ट करना। हित्ती, अमूरी, किन्आनी, फ़रज़्ज़ी, जव्वी और बयूसी को जैसा कि ख़ुदावन्द तेरे ख़ुदा ने तुझे आदेश दिया है ताकि वे अपने समस्त घृणित कार्यों के अनुसार जो उन्होंने अपने उपास्यों से

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-365-366

किए तुम्हें अमल करना न सिखाएं और तुम ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा के पापी हो जाओ।"('इस्तिस्ना' अध्याय-20, आयत-10 से 18)

बाइबल के इस फैसले से स्पष्ट है कि यदि यहूदी विजयी हो जाते और मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पराजित हो जाते तो बाइबल के इस निर्णय के अनुसार प्रथम तो समस्त मुसलमानों का वध कर दिया जाता, पुरुषों का भी, स्त्रियों तथा बच्चों का भी और जैसा कि इतिहास से सिद्ध है कि यहूदियों का यही इरादा था कि पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों सबका तुरन्त वध कर दिया जाए परन्तु यदि वे उन से बड़ी से बड़ी नर्मी करते तब भी किताब इस्तिस्ना के उपरोक्त निर्णय के अनुसार वे उन से दूर के देशों वाली जातियों का सा व्यवहार करते और समस्त पुरुषों का वध कर देते; स्त्रियों, बच्चों तथा सामानों को लूट लेते। सअद[रज़ि.] ने जो बनू क़ुरैज़ा के वचन बद्ध सहयोगी तथा उनके मित्रों में से थे जब देखा कि यहूद ने इस्लामी शरीअत के अनुसार जो निश्चय ही उनके प्राणों की सुरक्षा करती, मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के निर्णय को स्वीकार नहीं किया। अत: उन्होंने वही निर्णय यहूद के बारे में किया जो मूसा[अ.] ने इस्तिस्ना में पहले से ऐसे अवसरों और परिस्थितियों के लिए कह छोड़ा था। इस फ़ैसले का उत्तरदायित्त्व मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर अथवा मुसलमानों पर नहीं, अपितु मूसा[अ.], तौरात तथा यहूदियों पर है जिन्होंने अन्य जातियों के साथ हज़ारों वर्ष इस प्रकार का आचरण जारी रखा था और जिनको मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की दया का पात्र बनने के लिए बुलाया गया तो उन्होंने इनकार कर दिया तथा कहा— हम मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की बात मानने के लिए तैयार नहीं। हम सअद[रज़ि.] की बात मानेंगे। जब सअद[रज़ि.] ने मूसा[अ.] के फ़ैसले के अनुसार फ़ैसला दिया तो आज ईसाई संसार शोर मचाता है कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने

अन्याय किया। क्या ईसाई लेखक इस बात को नहीं देखते कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने किसी दूसरे अवसर पर क्यों अन्याय न किया। शत्रु ने सैकड़ों बार स्वयं को मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की दया पर छोड़ा तथा आप[स.] ने हर बार उन्हें क्षमा कर दिया। यह एक ही अवसर है कि शत्रु ने आग्रह किया कि हम रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के फ़ैसले को नहीं मानेंगे अपितु अमुक अन्य व्यक्ति के फ़ैसले को मानेंगे और उस व्यक्ति ने मुहम्मद रसूलुल्लाह से फ़ैसले से पूर्व इक़रार ले लिया कि मैं जो निर्णय करूँगा उसे आप स्वीकार करेंगे। तत्पश्चात् उसने निर्णय किया अपितु उसने फैसला नहीं किया, उसने मूसा[अ.] का फैसला दुहरा दिया, जिसकी उम्मत में से होने का यहुदियों का दावा था। अतः यदि किसी ने अन्याय किया तो वह यहूद ने अपने प्राणों पर किया जिन्होंने मुहम्मद (स.अ.व.) का निर्णय स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यदि किसी ने अन्याय किया तो मूसा[अ.] ने किया, जिन्होंने घेरे में लिए शत्रु के संबंध में ख़ुदा से आदेश पाकर तौरात में यही शिक्षा दी थी। यदि यह अन्याय था तो इन ईसाई लेखकों का कर्त्तव्य है कि मूसा अलैहिस्सलाम को अन्यायी या अत्याचारी ठहराएं अपितु मूसा[अ.] के ख़ुदा को अत्याचारी ठहराएं जिसने तौरात में यह शिक्षा दी।

अहज़ाब युद्ध की समाप्ति के पश्चात् रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— आज से मुश्रिक (द्वैतवादी) हम पर आक्रमण नहीं करेंगे, अब इस्लाम स्वयं उत्तर देगा। जिन जातियों ने हम पर आक्रमण किए थे उन जातियों पर अब हम चढ़ाई करेंगे① । अतः ऐसा ही हुआ। अहज़ाब युद्ध में भला काफ़िरों की हानि ही क्या हुई थी, कुछ लोग मारे गए थे। वे दूसरे वर्ष पुनः तैयारी करके आ सकते थे। बीस हज़ार के स्थान पर वे चालीस-पचास हज़ार सेना भी ला सकते थे अपितु यदि वे और अधिक

①-बुख़ारी किताबुल मग़ाज़ी, बाब ग़ज्वतुल ख़न्दक़।

प्रबंध करते तो लाख-डेढ़ लाख की सेना लाना भी उनके लिए कठिन कार्य न था परन्तु इक्कीस वर्ष के सतत् प्रयास के पश्चात् काफ़िरों के हृदयों को आभास हो गया था कि ख़ुदा मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के साथ है और उनकी मूर्तियां झूठी हैं तथा संसार का सृजनहार एक ही ख़ुदा है। उनके शरीर तो यथावत् थे, परन्तु उनके हृदय टूट चुके थे। देखने में वे अपनी मूर्तियों के समक्ष सज्दह (दण्डवत्) करते हुए दिखाई देते थे परन्तु उनके हृदयों से 'ला इलाहा इल्लल्लाह' के स्वर निकल रहे थे।

मुसलमानों की विजय का प्रारम्भ

इस युद्ध से निवृत्त होने के पश्चात् रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— आज से काफ़िर हम पर आक्रमण नहीं करेंगे अर्थात् मुसलमानों की विपत्ति अपनी चरमसीमा को पहुँच गई है और अब उनका विजय युग प्रारम्भ होने वाला है। उस समय तक जितने युद्ध हुए थे वे सभी ऐसे थे कि या तो काफ़िर लोग मदीना पर आक्रमण करने आए थे या उनके आक्रमणों की तैयारियों को रोकने के लिए मुसलमान मदीना से बाहर निकले थे, परन्तु मुसलमानों ने कभी स्वयं युद्ध जारी रखने का प्रयास नहीं किया। हालांकि युद्ध के नियमानुसार जब एक युद्ध आरम्भ हो जाता है तो उसका अन्त दो ही प्रकार पर होता है। या तो संधि हो जाती है या एक पक्ष हथियार डाल देता है परन्तु इस समय तक एक भी अवसर ऐसा नहीं आया जबकि संधि हुई हो अथवा किसी पक्ष ने हथियार डाले हों। अतः यद्यपि प्राचीन काल के नियमानुसार लड़ाइयों में कुछ अन्तराल पड़ जाता था परन्तु जहाँ तक युद्ध के जारी रहने का प्रश्न था वह निरन्तर जारी था तथा समाप्त न हुआ था। इसलिए मुसलमानों का हक़ था कि वे जब भी चाहते शत्रु पर आक्रमण करके उन्हें विवश करते कि वे हथियार

डालें परन्तु मुसलमानों ने ऐसा नहीं किया अपितु जब अन्तराल पड़ता था तो मुसलमान भी शान्त रहते थे। कदाचित इसलिए कि संभव है कि काफ़िर लोग इस मध्य संधि का प्रस्ताव रखें। और युद्ध समाप्त हो जाए परन्तु जब एक लम्बे समय तक काफ़िरों की ओर से संधि का प्रस्ताव न आया और न उन्होंने मुसलमानों के सामने हथियार डाले अपितु अपने विरोध में बढ़ते ही चले गए। अतः अब समय आ गया कि लड़ाई का दो टूक निर्णय किया जाए। या तो दोनों पक्षों में संधि हो जाए अथवा दोनों में से एक पक्ष हथियार डाल दे ताकि देश में शान्ति स्थापित हो जाए। अतः रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अहज़ाब युद्ध के पश्चात् निर्णय कर लिया कि हम अब दोनों निर्णयों में से एक निर्णय करके रहेंगे। या तो हमारे और काफ़िरों के मध्य संधि हो जाएगी अथवा हम में से कोई एक पक्ष हथियार डाल देगा। यह तो स्पष्ट है कि हथियार डालने की परिस्थिति में काफ़िर ही हथियार डाल सकते थे क्योंकि इस्लाम की विजय के बारे में तो ख़ुदा तआला की ओर से सूचना प्राप्त हो चुकी थी तथा मक्का के जीवन में रसूल करीम (स.अ.व.) इस्लाम की विजय की घोषणा कर चुके थे। शेष रही संधि, तो संधि के बारे में यह बात समझ लेना आवश्यक है कि संधि का प्रस्ताव या तो विजेता की ओर से हुआ करता है या पराजित की ओर से। पराजित पक्ष जब संधि की याचना करता है तो उसके अर्थ ये होते हैं कि वह देश का कुछ भाग या अपनी आय का कुछ भाग स्थायी अथवा अस्थायी तौर पर विजेता पक्ष को देगा या कुछ अन्य परिस्थितियों में उसके लगाए गए प्रतिबन्धों को स्वीकार करेगा। विजेता पक्ष की ओर से जब संधि का प्रस्ताव प्रस्तुत होता है तो उसका तात्पर्य यह होता है कि हम बिल्कुल नहीं चाहते कि हम तुम्हें कुचल डालें यदि तुम कुछ शर्तों के साथ हमारी आज्ञाकारिता तथा अधीनता स्वीकार करते हुए आदेशों का पालन करो तो हम तुम्हारी स्वतंत्र सत्ता अथवा अर्ध स्वतंत्र सत्ता को बना

रहने देंगे। मक्का के काफ़िरों तथा मुहम्मद रसूलुल्लाह के मध्य होने वाले युद्धों में बार-बार काफ़िरों की पराजय हुई थी परन्तु इस पराजय का अर्थ मात्र इतना था कि उनके आक्रमण असफल रहे थे। वास्तविक पराजय वह कहलाती है जबकि प्रतिरक्षात्मक शक्ति क्षीण हो जाए। आक्रमण के असफल होने का तात्पर्य वास्तविक पराजय नहीं उसका तात्पर्य केवल इतना होता है कि यद्यपि आक्रमणकारी का आक्रमण असफल रहा परन्तु पुनः आक्रमण करके वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। अस्तु युद्ध आचार संहिता के अनुसार मक्का निवासी पराजित नहीं हुए थे अपितु उनकी स्थिति केवल यह थी कि अब तक उनकी आक्रामक कार्यवाहियां अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकी थीं; इसकी तुलना में मुसलमान युद्ध की दृष्टि से यद्यपि उन की प्रतिरक्षण शक्ति नहीं टूटी थी पराजित कहलाने के अधिकारी थे। इसलिए कि एक तो वे अत्यल्प संख्या में थे, दूसरे उन्होंने उस समय तक कोई आक्रामक कार्यवाही नहीं की थी अर्थात् किसी आक्रमण में स्वयं पहल नहीं की थी जिस से यह समझा जाए कि अब वे स्वयं को काफ़िरों के प्रभाव से मुक्त समझते हैं। इन परिस्थितियों में मुसलमानों की ओर से संधि प्रस्ताव का अर्थ यह हो सकता था कि अब वे प्रतिरक्षण प्रक्रिया से तंग आ चुके हैं और कुछ देकर अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं। प्रत्येक बुद्धिमान समझ सकता है कि इन परिस्थितियों में यदि मुसलमान संधि-प्रस्ताव रखते तो इसका परिणाम नितान्त भयानक होता तथा यह बात उनके अस्तित्व को मिटा देने का पर्याय होती। अरब के काफ़िरों में अपनी आक्रामक कार्यवाहियों में असफलता के कारण जो निराशा उत्पन्न हो गई थी इस संधि-प्रस्ताव से वे तुरन्त ही नए उत्साह और नई उमंगों तथा नवीन आशाओं में परिवर्तित हो जाती और यह समझा जाता कि मुसलमान मदीना को विनाश से सुरक्षित रख लेने के बावजूद अपनी अन्तिम सफलता से निराश हो चुके हैं। अतः संधि का प्रस्ताव मुसलमानों

की ओर से किसी भी अवस्था में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। यदि कोई संधि का प्रस्ताव कर सकता था तो या तो मक्का वाले कर सकते थे या कोई तीसरी जाति मध्यस्थ बन कर कर सकती थी, परन्तु अरब में ऐसी कोई जाति नहीं रही थी। एक ओर मदीना था, दूसरी ओर सम्पूर्ण अरब था। अतः इस स्थिति में काफ़िर ही थे जो इस प्रस्ताव को प्रस्तुत कर सकते थे, परन्तु उनकी ओर से संधि का कोई प्रस्ताव नहीं आ रहा था। ये परिस्थितियां यदि सौ वर्ष तक भी जारी रहतीं तो युद्ध के नियमों के अनुसार गृह-युद्ध जारी रहता। अतः जब कि मक्का वालों की ओर से संधि-प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं हुआ था तथा मदीने के लोग अरब के काफ़िरों की अधीनता स्वीकार करने के लिए किसी भी परिस्थिति में तैयार न थे तो अब एक ही मार्ग शेष रह जाता था कि जब मदीना ने सम्पूर्ण अरब के संयुक्त आक्रमण को असफल कर दिया तो मदीना के लोग स्वयं बाहर निकलें और अरब के काफ़िरों को विवश कर दें कि या तो वे इनकी अधीनता स्वीकार कर लें या उन से संधि कर लें। अतः रसूले करीम (स.अ.व.) ने यही मार्ग ग्रहण किया। अतः यद्यपि यह मार्ग प्रत्यक्ष रूप से युद्ध का मार्ग दृष्टिगोचर होता है परन्तु वास्तव में शान्ति की स्थापना के लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग शेष न था। यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ऐसा न करते तो सम्भव है कि युद्ध सौ वर्ष तक लम्बा चला जाता। जैसा कि प्राचीन काल में ऐसी ही परिस्थितियों में युद्ध सौ-सौ वर्ष तक जारी रहे। स्वयं अरब के ही युद्ध तीस-तीस, चालीस-चालीस वर्ष तक जारी रहे हैं। इन युद्धों के लम्बे समय तक जारी रहने का यही कारण प्रतीत होता है कि युद्धों को समाप्त करने के लिए कोई साधन नहीं अपनाया जाता था। जैसा कि मैं वर्णन कर चुका हूँ कि युद्ध को समाप्त करने के दो ही उपाय हुआ करते हैं या तो ऐसा निर्णायक युद्ध किया जाए जो दो टूक निर्णय कर दे और दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष को हथियार डालने पर विवश कर दे अथवा

परस्पर संधि हो जाए। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) निःसंदेह ऐसा कर सकते थे कि मदीना में बैठे रहते और स्वयं आक्रमण न करते परन्तु चूंकि अरब के काफ़िर युद्ध की नींव डाल चुके थे आप[स.] के ख़ामोश बैठने के ये अर्थ न होते कि युद्ध समाप्त हो गया है अपितु उसके ये अर्थ होते कि युद्ध का द्वार सदैव के लिए खुला रखा गया है। अरब के काफ़िर जब चाहते अकारण ही मदीना पर आक्रमण कर देते तथा उस समय के नियमानुसार वह सत्य पर समझे जाते क्योंकि युद्ध में अन्तराल आ जाना उस युग में युद्ध की समाप्ति का पर्याय नहीं समझा जाता था अपितु अन्तराल की गणना युद्ध में ही की जाती थी।

इस अवसर पर कुछ लोगों के हृदयों में प्रश्न पैदा हो सकता है कि क्या एक सच्चे धर्म के लिए युद्ध करना उचित है?

युद्ध के बारे में यहूदी और ईसाई धर्म की शिक्षा

मैं यहाँ एक प्रश्न का उत्तर देना भी आवश्यक समझता हूँ। जहाँ तक धर्मों का प्रश्न है युद्ध के संबंध में भिन्न-भिन्न शिक्षाएँ हैं। युद्ध के बारे में मूसा अलैहिस्सलाम की शिक्षा का पहले उल्लेख किया जा चुका है। तौरात कहती है कि मूसा अलैहिस्सलाम को आदेश दिया गया कि वे 'किनआन' में बलपूर्वक घुस जाएँ तथा इस स्थान की जातियों को पराजित करके इस क्षेत्र में अपनी जाति को आबाद करें। *(इस्तिस्ना अध्याय-20, आयत 10-18)* परन्तु इस के बावजूद कि मूसा[अ.] ने यह शिक्षा दी और इसके बावजूद कि यूशा दाऊद तथा अन्य नबी ने निरन्तर इस शिक्षा पर आचरण करते रहे। यहूदी और ईसाई उन्हें ख़ुदा का नबी और तौरात को ख़ुदा की किताब समझते हैं। मूसा के सिलसिले के अन्त में हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम आए। युद्ध के बारे में उनकी यह शिक्षा है कि अत्याचारी का मुकाबला न करना अपितु जो तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी उसकी ओर फेर दे। *(मती, अध्याय-5, आयत-39)* इस से परिणाम

निकालते हुए ईसाई जाति यह दावा करती है कि मसीह ने जातियों को युद्ध करने से मना किया है परन्तु देखते हैं कि इंजील में इस शिक्षा के विपरीत अन्य शिक्षाएँ भी आई हैं। उदाहरणतया इंजील में लिखा है— "यह मत समझो कि मैं पृथ्वी पर संधि कराने आया हूँ, संधि कराने नहीं अपितु तलवार चलाने आया हूँ।" *(मती अध्याय, 10 आयत-34)* इसी प्रकार लिखा है— "उसने उन्हें कहा परन्तु अब जिसके पास बटुआ हो लेले और इसी प्रकार झोली भी और जिसके पास तलवार नहीं अपने वस्त्र बेचकर तलवार ख़रीदे।" *(लूक़ा अध्याय-22, आयत-36)* यह अन्तिम दो शिक्षाएँ पहली शिक्षा के सर्वथा विपरीत हैं। यदि मसीह युद्ध कराने के लिए आया था तो फिर एक गाल पर थप्पड़ खा कर दूसरा गाल फेर देने के क्या अर्थ थे। अतः या तो ये दोनों प्रकार की शिक्षाएं परस्पर विरोधी हैं या इन दोनों शिक्षाओं में से किसी एक को उसके प्रत्यक्ष अर्थों से फेर कर उसकी कोई अन्य व्याख्या करना पड़ेगी। मैं इस विवाद में नहीं पड़ता कि एक गाल पर थप्पड़ खाकर दूसरा गाल फेर देने की शिक्षा व्यावहारिक है अथवा नहीं। मैं यहाँ यह कहना चाहता हूँ कि प्रथम ईसाई संसार ने अपने पूरे इतिहास में युद्ध से संकोच नहीं किया। जब ईसाइयत का बिल्कुल प्रारम्भ में रोम में आधिपत्य था तब भी उसने अन्य जातियों से युद्ध किए; सुरक्षात्मक ही नहीं अपितु आक्रामक भी। अब जबकि ईसाइयत संसार में प्रभुत्व रखती है अब भी युद्ध करती है; प्रतिरक्षात्मक ही नहीं अपितु आक्रामक भी। अन्तर केवल इतना है कि युद्ध करने वालों में से जो पक्ष विजयी हो जाता है उस के बारे में कह दिया जाता है कि वह ईसाई सभ्यता का पाबन्द था। क्रिस्चियन सिविलाइज़ेशन (CHRISTION CIVILIZATION) उस युग में केवल विजयी और प्रभुत्व प्राप्त जाति की कार्य-शैली का नाम है तथा इस शब्द के वास्तविक अर्थ अब कुछ भी शेष नहीं रहे। जब दो जातियाँ परस्पर युद्ध करती हैं तो प्रत्येक जाति इस

बात की दावेदार होती है कि वह ईसाई सभ्यता का समर्थन कर रही है और जब कोई जाति विजय प्राप्त कर लेती है तो कहा जाता है कि उस विजेता जाति की कार्य-शैली ही ईसाई सभ्यता है परन्तु हर हाल में मसीह के युग से आज तक ईसाई जाति युद्ध करती चली जा रही है और लक्षण बताते हैं कि युद्ध करती चली जाएगी। अतः जहाँ तक मसीही जगत के फ़ैसले का संबंध है यही विदित होता है कि "तुम अपने कपड़े बेच कर तलवार खरीदो" और "मैं संधि कराने के लिए नहीं अपितु तलवार चलाने के लिए आया हूँ"। यह वास्तविक विधान है और "तू एक गाल पर थप्पड़ खा कर दूसरा गाल भी फेर दे।" यह क़ानून या तो प्रारम्भिक ईसाई काल की निर्बलता के समय अपने हित की दृष्टि से ग्रहण किया गया था अथवा ईसाई लोगों के परस्पर संबंधों की सीमा तक यह कानून सीमित है। सरकारों और जातियों पर कानून चरितार्थ नहीं होता। दूसरे यदि यह भी समझ लिया जाए कि मसीह अलैहिस्सलाम की मूल शिक्षा युद्ध की नहीं थी अपितु संधि की ही थी, तब भी इस शिक्षा से यह परिणाम नहीं निकलता कि जो व्यक्ति इस शिक्षा के विपरीत कार्य करता है वह ख़ुदा का भेजा हुआ नहीं हो सकता; क्योंकि ईसाई जाति आज तक मूसा[अ.] तथा यूशा[अ.] और दाऊद[अ.] को ख़ुदा का भेजा हुआ स्वीकार करती है अपितु स्वयं ईसाई युग के कुछ प्रतिष्ठित हीरो (नायक) जिन्होंने अपनी जाति के लिए प्राणों की बाज़ी लगा कर शत्रुओं से युद्ध किए हैं विभिन्न युगों के पोपों के फ़त्वे के अनुसार आज सेन्ट (SAINT) कहलाते हैं।

युद्ध के बारे में इस्लामी शिक्षा

इस्लाम इन दोनों शिक्षाओं के मध्य संतुलित शिक्षा देता है अर्थात् न तो वह मूसा[अ.] के समान कहता है कि तू आक्रामक तौर पर किसी भी देश में घुस जा और उस जाति को मौत के घाट उतार दे और न वह इस युग की

बिगड़ी हुई ईसाइयत के समान उच्च स्वर में यह कहता है कि “यदि कोई तेरे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तू अपना दूसरा गाल भी उस की ओर फेर दे।”परन्तु अपने साथियों के कान में खामोशी से यह कहना चाहता है कि तुम अपने कपड़े बेच कर भी तलवारें खरीद लो। अपितु इस्लाम वह शिक्षा प्रस्तुत करता है जो मानव-प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है तथा जो शान्ति और मैत्री को स्थापित करने के लिए एक ही उपाय हो सकता है और वह यह है— कि तू किसी पर आक्रमण न कर परन्तु यदि कोई व्यक्ति तुझ पर आक्रमण करे, उस का मुकाबला न करना उपद्रव को बढ़ाने का कारण दिखाई देता हो तथा उससे सत्य और शान्ति भंग हो रही है, तब तू उसके आक्रमण का उत्तर दे। यही वह शिक्षा है जिस से संसार में अमन और मैत्री स्थापित हो सकती है। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इस शिक्षा पर आचरण करते रहे। आपस॰ मक्का में निरन्तर कष्ट सहन करते रहे परन्तु आपस॰ ने युद्ध की नींव न डाली, परन्तु जब आप हिजरत करके मदीना चले गए तथा शत्रु ने वहाँ भी आप का पीछा न छोड़ा, तब ख़ुदा तआला ने आपस॰ को आदेश दिया कि चूंकि शत्रु आक्रामक कार्यवाही में लिप्त है तथा इस्लाम को मिटाना चाहता है। अतः सत्य और धर्म की स्थापना के लिए आप उसका मुक़ाबला करें। क़ुर्आन करीम में इस संबंध में जो विविध आदेश आए हैं वे निम्नलिखित हैं —

(1) अल्लाह तआला क़ुर्आन करीम में फ़रमाता है —

اُذِنَ لِلَّذِيْنَ يُقٰتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْا ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ عَلٰى نَصْرِهِمْ لَقَدِيْرُ ۙ۝
الَّذِيْنَ اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ بِغَيْرِ حَقٍّ اِلَّاۤ اَنْ يَّقُوْلُوْا رَبُّنَا اللّٰهُ ؕ وَلَوْلَا دَفْعُ
اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَّصَلَوٰتٌ وَّمَسٰجِدُ
يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيْرًا ؕ وَلَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَقَوِيٌّ
عَزِيْزٌ ۝ اَلَّذِيْنَ اِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِى الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَ
اَمَرُوْا بِالْمَعْرُوْفِ وَنَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَلِلّٰهِ عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ۝

(सूरह हज 40 से 42)

अर्थात् इसलिए कि उन (मुसलमानों) पर अत्याचार किया गया और उन मुसलमानों को जिन से शत्रु ने युद्ध जारी रखा है आज युद्ध करने की आज्ञा दी जाती है और अल्लाह निश्चय ही उनकी सहायता करने पर समर्थ है। हाँ उन मुसलमानों को युद्ध करने की आज्ञा दी जाती है जिन्हें उनके घरों से बिना किसी अपराध के निकाल दिया गया। उन का अपराध केवल इतना था (यदि यह कोई अपराध है) कि वे कहते थे कि अल्लाह हमारा प्रतिपालक है और यदि अल्लाह तआला कुछ अत्याचारी लोगों को दूसरे न्यायप्रिय लोगों के द्वारा अत्याचार से रोकता न रहे तो गिरजे, मनस्ट्रियां (मन्दिर) तथा मस्जिदें जिनमें ख़ुदा का नाम अधिकता से लिया जाता है अत्याचारियों द्वारा नष्ट हो जाएँ। (अतः संसार में धार्मिक स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए अल्लाह तआला अत्याचारों से पीड़ितों को और ऐसी जातियों को जिनके विरुद्ध शत्रु पहले युद्ध की घोषणा कर देता है युद्ध करने की आज्ञा देता है) तथा निश्चय ही अल्लाह तआला उनकी सहायता करता है जो ख़ुदा तआला के धर्म की सहायता करने के लिए खड़े होते हैं। अल्लाह तआला निश्चय ही महान् शक्तिशाली और प्रभुता सम्पन्न है। हाँ अल्लाह तआला उन लोगों की सहायता करता है जो यदि संसार में शक्तिशाली हो जाएँ तो ख़ुदा तआला की उपासनाओं को स्थापित करेंगे, निर्धनों की सहायता करेंगे, संसार को शुभ और श्रेष्ठ आचरणों की शिक्षा देंगे, दुष्कर्मों से संसार को रोकेंगे और प्रत्येक विवाद का परिणाम वही होता है जो ख़ुदा चाहता है।

इन आयतों में जो मुसलमानों को युद्ध की अनुमति देने के लिए उतरी हैं बताया गया है कि युद्ध की आज्ञा इस्लामी शिक्षानुसार इसी अवस्था में होती है जब कोई जाति लम्बे समय तक किसी अन्य जाति के अत्याचारों का निशाना बनी रहे और अत्याचारी जाति उसके विरुद्ध अकारण युद्ध की घोषणा कर दे तथा उसके धर्म में हस्तक्षेप करे तथा ऐसी पद दलित

जाति का कर्त्तव्य होता है कि जब उसे शक्ति प्राप्त हो तो वह धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करे तथा इस बात को सदैव दृष्टि में रखे कि ख़ुदा तआला उसे प्रभुत्व प्रदान करे तो वह समस्त धर्मों की रक्षा करे तथा उसके पवित्र स्थानों के मान-सम्मान का ध्यान रखे और उस प्रभुत्व को अपनी शक्ति और वैभव का साधन न बनाए अपितु निर्धनों की सहायता देश की दशा का सुधार अशान्ति और उपद्रव को समाप्त करने में अपनी शक्तियों का प्रयोग करे। यह कैसी संक्षिप्त सर्वपक्षीय एवं सर्वाहिताय शिक्षा है। इसमें यह भी बता दिया गया है कि मुसलमानों को युद्ध करने की आज्ञा क्यों दी गई है और यदि अब वे युद्ध करेंगे तो वह विवशतावश होगा अन्यथा इस्लाम में आक्रामक युद्ध की आज्ञा नहीं है और फिर आरम्भ में किस प्रकार यह कह दिया गया था कि मुसलानों को विजय अवश्य प्राप्त होगी परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें आधिपत्य के दिनों में सरकार से अपनी जेबें भरने तथा अपनी दशा सुधारने के स्थान पर निर्धनों की देखभाल तथा उनकी सहायता, शान्ति की स्थापना, उपद्रव का निवारण तथा जाति और देश को उन्नति के पथ पर ले जाने के प्रयास को अपना उद्देश्य बनाना चाहिए।

(2) — फिर फ़रमाता है—

وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ الَّذِيْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ○ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ وَاَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَلَا تُقٰتِلُوْهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتّٰى يُقٰتِلُوْكُمْ فِيْهِ ۚ فَاِنْ قٰتَلُوْكُمْ فَاقْتُلُوْهُمْ ؕ كَذٰلِكَ جَزَآءُ الْكٰفِرِيْنَ ○ فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○ وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ؕ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ○

(सूरह अलबक़रह 191 से 194)

अर्थात् उन लोगों से जो तुम से युद्ध कर रहे हैं तुम भी केवल अल्लाह के लिए— जिसमें तुम्हारे तामसिक क्रोध एवं अन्य तामसिक भावों का सम्मिश्रण न हो— युद्ध करो और याद रखो कि युद्ध में भी कोई अत्याचारपूर्ण कार्यवाही न करना क्योंकि ख़ुदा तआला अत्याचारियों को बहरहाल पसन्द नहीं करता तथा जहाँ कहीं भी तुम्हारी और उनकी युद्ध के द्वारा मुठ-भेड़ हो जाए वहाँ तुम उन से युद्ध करो तथा यों ही छुट-पुट एक-दो लोगों के मिलने पर आक्रमण न करो। चूंकि उन्होंने तुम्हें लड़ाई के लिए निकलने पर विवश किया है, तुम भी उन्हें उनके प्रत्युत्तर में लड़ाई की चुनौती दो। स्मरण रखो कि वध और लड़ाई की अपेक्षा धर्म के सम्बन्ध में किसी को कष्टों में डालना बहुत बड़ा पाप है। अतः तुम ऐसा कोई कार्य न करो; क्योंकि यह अधर्मी लोगों का कार्य है तथा यह आवश्यक है कि तुम उन से 'मस्जिदे हराम' (काबा) के पास उस समय तक युद्ध न करो जब तक वे युद्ध की पहल न करें, क्योंकि इस से 'हज' और 'उमरा' के मार्ग में रुकावट पैदा होती है। हाँ यदि वे स्वयं ऐसे युद्ध की पहल करें तो फिर तुम विवश हो और तुम्हें प्रतिकार स्वरूप युद्ध की आज्ञा है। जो लोग बुद्धिगत और न्यायसंगत आदेशों को अस्वीकार कर देते हैं उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करना पड़ता है। परन्तु यदि उन्हें होश आ जाए और वे इस बात से रुक जाएँ तो अल्लाह तआला बहुत ही क्षमा करने वाला और दयालु है। इसलिए तुम्हें भी चाहिए कि ऐसी स्थिति में अपने हाथों को रोक लो तथा इस विचार से कि ये लोग आक्रमण करने में पहल कर चुके हैं प्रत्युत्तर में आक्रमण न करो और वे चूंकि युद्ध आरम्भ कर चुके हैं तुम भी उस समय तक युद्ध को जारी रखो जब तक कि वे धर्म में हस्तक्षेप करना न छोड़ें और वे स्वीकार न कर लें कि धर्म का मामला केवल अल्लाह तआला से संबंधित है तथा इसमें ज़बरदस्ती करना किसी मनुष्य के लिए उचित नहीं। यदि वे इस विधि को अपना लें तथा धर्म में हस्तक्षेप करने से रुक

जाएँ तो तुरन्त लड़ाई बन्द कर दो; क्योंकि दण्ड केवल अत्याचारियों को दिया जाता है। यदि वे इस प्रकार के अत्याचार छोड़ दें तो फिर उनसे युद्ध करना उचित नहीं हो सकता। इन आयतों में बताया गया है कि **प्रथम**— युद्ध केवल अल्लाह के लिए होना चाहिए अर्थात् व्यक्तिगत स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं के लिए, देश पर विजय प्राप्त करने की नीयत या अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने की नीयत से युद्ध नहीं करना चाहिए। **द्वितीय**— लड़ाई केवल उसी से उचित है जो आक्रमण में पहल करता है। **तृतीय**— तुम्हें उन्हीं लोगों से युद्ध करना उचित है जो तुम से युद्ध करते हैं अर्थात् जो लोग नियमित रूप से सैनिक नहीं और क्रियात्मक रूप से युद्ध में भागीदार नहीं होते उनका वध करना या उनसे युद्ध करना उचित नहीं। **चतुर्थ**— शत्रु के आक्रमण में पहल करने के बावजूद युद्ध को उतना ही सीमित रखना जिस सीमा तक शत्रु ने कार्यवाही की तथा युद्ध को विशाल रूप देने का प्रयास नहीं करना चाहिए, न क्षेत्र की दृष्टि से और न युद्ध के संसाधनों की दृष्टि से। **पंचम**— युद्ध केवल लड़ने वाली सेना के साथ होना चाहिए यह नहीं कि शत्रु पक्ष के इक्का-दुक्का व्यक्तियों के साथ मुक़ाबला किया जाए। **षष्टम**— युद्ध में इस बात को दृष्टिगत रखना आवश्यक है कि धार्मिक उपासनाओं तथा धार्मिक विधि विधानों के पूरा करने में बाधाएं उत्पन्न न हों। यदि शत्रु किसी ऐसे स्थान पर युद्ध की नींव न डालें जहाँ युद्ध करने से उसकी धार्मिक उपासनाओं में विघ्न पैदा होता है तो मुसलमानों को भी उस स्थान पर युद्ध नहीं करना चाहिए। **सप्तम्**— यदि शत्रु स्वयं धार्मिक उपासना स्थलों को युद्ध का साधन बनाए तो फिर विवशता है अन्यथा तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। इस आयत में इस ओर संकेत किया गया है कि उपासना-स्थलों के आस-पास भी युद्ध नहीं होना चाहिए कहाँ यह कि उपासना-स्थलों पर आक्रमण किया जाए या उन्हें ध्वस्त किया जाए अथवा उन्हें तोड़ा जाए। हाँ यदि शत्रु उपासना-स्थलों को स्वयं युद्ध का

दुर्ग बना ले तो फिर उसकी क्षति का दायित्व उस पर है, उस विनाश का उत्तरदायित्व मुसलमानों पर नहीं। **अष्टम**— यदि शत्रु धार्मिक-स्थलों में युद्ध आरम्भ करने के पश्चात् उसके भयानक परिणामों को समझ जाए तथा धार्मिक स्थल से निकल कर अन्य स्थान को रण-भूमि बना ले तो मुसलमानों को उनके धार्मिक-स्थलों को इस बहाने से हानि नहीं पहुँचाना चाहिए कि उस स्थान पर पहले उन के शत्रुओं ने युद्ध आरम्भ किया था अपितु उसी समय उन स्थानों की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हुए अपने आक्रमण के रूप को भी परिवर्तित कर देना चाहिए। **नवम—** युद्ध उस समय तक जारी रखना चाहिए जब तक कि धार्मिक हस्तक्षेप समाप्त न हो जाए तथा धर्म की समस्या को अन्तरात्मा की समस्या समझा जाए, राजनैतिक समस्याओं की भांति उसमें हस्तक्षेप न किया जाए। यदि शत्रु इस बात की घोषणा कर दे तथा उस पर आचरण करना आरम्भ कर दे तो चाहे वह आक्रमण करने में पहल कर चुका हो उसके साथ युद्ध नहीं करना चाहिए।

(3) फ़रमाता है —

قُلْ لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِنْ يَّنْتَهُوْا يُغْفَرْ لَهُمْ مَّا قَدْ سَلَفَ ۚ وَاِنْ يَّعُوْدُوْا فَقَدْ مَضَتْ سُنَّتُ الْاَوَّلِيْنَ ○ وَقَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ ۚ فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ○ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَوْلٰىكُمْ ؕ نِعْمَ الْمَوْلٰى وَنِعْمَ النَّصِيْرُ ○

(सूरह अलअन्फ़ाल 39 से 40)

अर्थात् हे मुहम्मद रसूलुल्लाह ! शत्रु ने युद्ध आरम्भ किए और तुम्हें ख़ुदा तआला के आदेश से उनका मुकाबला करना पड़ा परन्तु तू उन में घोषणा कर दे कि यदि अब भी वे युद्ध से रुक जाएँ तो जो कुछ वे पहले

कर चुके हैं उन्हें क्षमा कर दिया जाएगा परन्तु यदि वे युद्ध से न रुकें और बार-बार आक्रमण करें तो विगत नबियों के शत्रुओं के परिणाम उन के सामने हैं। अन्त उनका भी वहीं होगा। हे मुसलमानो ! तुम उस समय तक युद्ध जारी रखो कि धर्म के कारण कष्ट देना समाप्त हो जाए तथा धर्म को पूर्णतया ख़ुदा तआला के सुपुर्द कर दिया जाए और वे धर्म के मामले में हस्तक्षेप करना त्याग दें। फिर यदि ये लोग इन बातों से रुक जाएँ तो केवल इस कारण उन से युद्ध न करो कि वे एक सन्मार्ग से भटके हुए धर्म के अनुयायी हैं क्योंकि ख़ुदा तआला उनके कर्मों को जानता है, वह स्वयं जैसा चाहेगा उन से व्यवहार करेगा। तुम्हें उनकी सत्य आस्थाओं को विस्मृत कर चुके धर्म के कारण हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि हमारी इस संधि की घोषणा के पश्चात् भी जो लोग युद्ध को न त्यागें और युद्ध जारी रखें तो भली-भांति समझ लो कि अल्पसंख्या में होने के बावजूद तुम ही विजयी होगे; क्योंकि अल्लाह तआला तुम्हारा साथी है और ख़ुदा तआला से बढ़कर साथी और सहायक और कौन हो सकता है।

ये आयतें क़ुर्आन करीम में बदर-युद्ध के वर्णन के पश्चात् आई हैं जो अरब के काफ़िरों और मुसलमानों के मध्य सब से प्रथम नियमानुसार युद्ध था, इसके बावजूद कि अरब के काफ़िरों ने मुसलमानों पर अकारण आक्रमण किया तथा मदीने के आस-पास उपद्रव मचाया तथा इसके बावजूद कि मुसलमान विजयी हुए और शत्रु के बड़े-बड़े वीर शिरोमणि मारे गए। क़ुर्आन करीम ने मुहम्मद रसूलुल्लाह के द्वारा यही घोषणा कराई है कि यदि अब भी तुम लोग रुक जाओ तो हम युद्ध को जारी नहीं रखेंगे। हम तो मात्र चाहते हैं कि बलात् धर्मान्तरण न कराया जाए तथा धर्म के मामले में हस्तक्षेप न किया जाए।

○ (4) फ़रमाता है —

وَاِنۡ جَنَحُوۡا لِلسَّلۡمِ فَاجۡنَحۡ لَهَا وَتَوَكَّلۡ عَلَى اللّٰهِ ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِيۡعُ الۡعَلِيۡمُ

وَاِنۡ يُّرِيۡدُوۡۤا اَنۡ يَّخۡدَعُوۡكَ فَاِنَّ حَسۡبَكَ اللّٰهُ ؕ هُوَ الَّذِىۡۤ اَيَّدَكَ بِنَصۡرِهٖ وَ

بِالۡمُؤۡمِنِيۡنَ ۙ (अन्फ़ाल 62-63)

अर्थात यदि क़ाफ़िर किसी समय भी संधि की ओर झुकें तो उनकी बात तुरन्त स्वीकार कर लेना, संधि कर लेना तथा यह भ्रम न करना कि कदाचित् वे धोखा दे रहे हों अपितु अल्लाह तआला पर भरोसा रखना। ख़ुदा तआला दुआओं को सुनने वाला और सब कुछ जानने वाला है। यदि तेरा यह विचार सही हो कि वे धोखा देना चाहते हैं और वे वास्तव में तुझे धोखा देने का इरादा भी रखते हों तो भी स्मरण रख कि उनके धोखा देने से बनता क्या है तुझे केवल अल्लाह की सहायता से ही सफलताएँ प्राप्त हो रही हैं। उसकी सहायता तेरे लिए पर्याप्त है। पहले समयों में वही सीधे तौर पर अपनी सहायता द्वारा तथा मोमिनों की सहायता द्वारा तेरा साथ देता रहा है।

इस आयत में बताया गया है कि जब शत्रु संधि करने पर तैयार हो तो मुसलमानों को उस से बहरहाल संधि कर लेना चाहिए। यदि वह संधि के नियम को प्रत्यक्ष में स्वीकार करता हो तो केवल इस बहाने से संधि के प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं करना चाहिए कि कदाचित शत्रु की नीयत ठीक न हो और बाद में शक्ति संगठित करके पुनः आक्रमण करना चाहता हो।

इन आयतों में वास्तव में हुदैबिया-संधि की भविष्यवाणी की गई है और बताया गया है कि एक समय ऐसा आएगा जब शत्रु संधि करना चाहेगा; उस समय तुम इस बहाने से कि शत्रु ने अत्याचार किया है अथवा यह कि वह बाद में इस समझौते को भंग करना चाहता है संधि से इन्कार न करना क्योंकि युक्तिसंगत यही है और तुम्हारा हित भी इसी में है कि तुम संधि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लो।

(5) फ़रमाता है —

يَاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اِذَا ضَرَبۡتُمۡ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ فَتَبَيَّنُوۡا وَلَا تَقُوۡلُوۡا لِمَنۡ اَلۡقٰۤى

اِلَيۡكُمُ السَّلٰمَ لَسۡتَ مُؤۡمِنًا ۚ تَبۡتَغُوۡنَ عَرَضَ الۡحَيٰوةِ الدُّنۡيَا فَعِنۡدَ اللّٰهِ

مَغَانِمُ كَثِيۡرَةٌ ؕ كَذٰلِكَ كُنۡتُمۡ مِّنۡ قَبۡلُ فَمَنَّ اللّٰهُ عَلَيۡكُمۡ فَتَبَيَّنُوۡا ؕ اِنَّ اللّٰهَ

كَانَ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ خَبِيۡرًا

(सूरह अन्निसा-95)

अर्थात् हे मोमिनो ! जब तुम ख़ुदा के लिए युद्ध करने के लिए बाहर निकलो तो इस बात की भली-भांति जांच-पड़ताल कर लिया करो कि तुम्हारे शत्रु पर समझाने का प्रयास पूरा हो चुका है और वह हठात लड़ाई के लिए तत्पर है। और यदि कोई व्यक्ति या दल तुम्हें कहे कि मैं तो संधि करता हूँ तो यह न कहो कि तू धोखा देता है और हमें आशा नहीं कि हम तुझ से सुरक्षित हैं। यदि तुम ऐसा करोगे तो फिर तुम ख़ुदा के मार्ग में युद्ध करने वाले नहीं होगे अपितु तुम सांसारिक इच्छाएं रखने वाले ठहरोगे, अतः ऐसा न करो; क्योंकि जिस प्रकार ख़ुदा के पास धर्म है उसी प्रकार ख़ुदा के पास संसार का भी बहुत सा सामान है। तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि किसी व्यक्ति का वध कर देना मूल उद्देश्य नहीं। तुम्हें क्या मालूम कि कल वह सन्मार्ग पर आ जाए। तुम भी तो इस से पूर्व इस्लाम धर्म से बाहर थे। फिर अल्लाह तआला ने अपनी अनुकम्पा से यह धर्म ग्रहण करने की शक्ति प्रदान की। अतः मारने में शीघ्रता न किया करो अपितु वस्तु-स्थिति की जांच-पड़ताल किया करो। स्मरण रखो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उस से भली-भांति अवगत है।

इस आयत में बताया गया है कि जब युद्ध आरम्भ हो जाए तब भी इस बात की भली-भांति जांच-पड़ताल करना आवश्यक है कि शत्रु का इरादा आक्रामक युद्ध का है ! क्योंकि संभव है कि शत्रु आक्रामक युद्ध

का इरादा न रखता हो अपितु वह किसी भय के अन्तर्गत सैनिक तैयारी कर रहा हो। अतः पहले भली-भांति जांच-पड़ताल कर लिया करो कि शत्रु का इरादा आक्रामक युद्ध का था। तब उसके सामने मुकाबले के लिए आओ और यदि वह यह कहे कि मेरा इरादा तो युद्ध करने का नहीं था, मैं तो केवल भय के कारण तैयारी कर रहा था तो तुम्हें यह नहीं कहना चाहिए कि नहीं तुम्हारी युद्ध की तैयारी बताती है कि तुम हम पर आक्रमण करना चाहते थे। हम किस प्रकार समझें कि हम तुम से सुरक्षित और अमन में हैं अपितु उसकी बात को स्वीकार कर लो और यह समझो कि यदि पहले उसका इरादा भी था तो संभव है कि बाद में उसमें परिवर्तन आ गया हो। तुम स्वयं इस बात के गवाह हो कि हृदयों में परिवर्तन पैदा हो जाता है। तुम पहले इस्लाम के शत्रु थे परन्तु अब तुम इस्लाम के सिपाही हो।

(6) फिर शत्रुओं से समझौता करने के बारे में फ़रमाता है —

إِلَّا الَّذِينَ عَاهَدتُّم مِّنَ الْمُشْرِكِينَ ثُمَّ لَمْ يَنقُصُوكُمْ شَيْئًا وَلَمْ يُظَاهِرُوا عَلَيْكُمْ أَحَدًا فَأَتِمُّوا إِلَيْهِمْ عَهْدَهُمْ إِلَىٰ مُدَّتِهِمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُتَّقِينَ ○ (सूरह तौबा-4)

अर्थात् मुश्रिकों (द्वैतवादियों) में से वे जिन्होंने तुम से कोई समझौता किया था और फिर उन्होंने उस समझौते को भंग नहीं किया तथा तुम्हारे विरुद्ध तुम्हारे शत्रुओं की सहायता नहीं की। समझौते की अवधि तक तुम भी पाबन्द हो कि समझौते के पाबन्द रहो, यही संयमी आदर्श के लक्षण हैं और अल्लाह तआला संयमियों को पसन्द करता है।

(7) — ऐसे शत्रुओं के संबंध में जो युद्ध कर रहे हों परन्तु उनमें से कोई व्यक्ति इस्लाम की वास्तविकता मालूम करना चाहे तो अल्लाह तआला फ़रमाता है—

وَاِنْ اَحَدٌ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ اسْتَجَارَكَ فَاَجِرْهُ حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ اَبْلِغْهُ مَاْمَنَهٗ (सूरह तौबा-6)

अर्थात् यदि युद्ध कर रहे द्वैतवादियों में से कोई व्यक्ति इसलिए शरण मांगे कि वह तुम्हारे देश में आकर इस्लाम के बारे में छानबीन करना चाहता है तो उसे अवश्य शरण दो इतने समय तक कि वह उचित प्रकार से इस्लाम की जांच-पड़ताल कर ले तथा क़ुर्आन करीम के वर्ण्य विषयों से परिचित हो जाए, फिर उसे अपनी सुरक्षा में उस स्थान तक पहुँचा दो जहाँ वह जाना चाहता है और जिसे अपने लिए शान्ति का स्थान समझता है।

(8) — युद्ध में बन्दी बनाए गए लोगों के बारे में फ़रमाता है—

مَا كَانَ لِنَبِيٍّ اَنْ يَّكُوْنَ لَهٗۤ اَسْرٰى حَتّٰى يُثْخِنَ فِى الْاَرْضِ

(अन्फ़ाल-66)

अर्थात् यह बात किसी नबी की मर्यादा के अनुकूल नहीं कि वह अपने शत्रु को बन्दी बना ले सिवाए इसके कि समरभूमि में नियमानुसार युद्ध करते हुए पकड़े जाएँ। अर्थात् यह परम्परा जो उस युग तक अपितु उस के बाद भी सैकड़ों वर्षों तक संसार में प्रचलित रही है कि शत्रु के लोगों को युद्ध के बिना ही बन्दी बना लेना वैध समझा जाता था, इसे इस्लाम पसन्द नहीं करता। वही लोग युद्ध के क़ैदी कहला सकते हैं जो रणभूमि में सम्मिलित हों और युद्ध के पश्चात् बन्दी बनाए जाएं।

(9)— फिर इन क़ैदियों के बारे में फ़रमाता है —

فَاِمَّا مَنًّۢا بَعْدُ وَاِمَّا فِدَآءً

(सूरह मुहम्मद रुकू-1)

अर्थात् जब युद्धरत शत्रु के सैनिक पकड़े जाएँ तो या तो उपकार करते हुए उन्हें छोड़ दो या उन से फिद्या (बदले का धन) ले कर उन्हें आज़ाद कर दो।

(10) — यदि कुछ क़ैदी ऐसे हों जिनका फिदिया (बदले का धन) देने वाला कोई न हो या उनके परिजन उन के मालों पर अधिकार करने के लिए यह चाहते हों कि वे क़ैद में ही रहें तो अच्छा है इनके बारे में फ़रमाता है—

وَالَّذِينَ يَبْتَغُونَ الْكِتٰبَ مِمَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ فَكَاتِبُوهُمْ اِنْ عَلِمْتُمْ فِيهِمْ خَيْرًا ۖ وَّاٰتُوهُمْ مِّنْ مَّالِ اللّٰهِ الَّذِىْٓ اٰتٰىكُمْ ؕ

(सूरह नूर-34)

अर्थात् तुम्हारे द्वारा युद्ध में बन्दी बनाए गए लोगों से ऐसे लोग जिन्हें न तुम उपकार स्वरूप छोड़ सकते हो और न उनकी जाति ने उनका फ़िद्या देकर उन्हें आज़ाद कराया है। यदि वह तुम से यह याचना करें कि हमें आज़ाद कर दिया जाए। हम अपने पेशा और व्यवसाय द्वारा धन कमा कर अपने हिस्से का जुर्माना अदा कर देंगे। अतः यदि वे इस योग्य हैं कि आज़ाद होकर अपनी आजीविका कमा सकेंगे तो तुम उन्हें अवश्य आज़ाद कर दो अपितु उनके इस प्रयास में स्वयं भी भागीदार बनो तथा ख़ुदा ने तुम्हें जो कुछ दिया है उसमें से कुछ रुपया उन्हें आज़ाद करने में व्यय कर दो अर्थात् उनके हिस्से का जो युद्ध का खर्च बनता है उसमें से कुछ स्वामी छोड़ दे या दूसरे मुसलमान मिलकर उस क़ैदी की सहायता करें और उसे आज़ाद कराएँ।

ये वे परिस्थितियां हैं जिनमें इस्लाम युद्ध की आज्ञा देता है और ये वे नियम हैं जिनके अन्तर्गत इस्लाम युद्ध की आज्ञा देता था। अतः क़ुर्आन करीम की इन आयतों के अनुसार रसूले करीम (स.अ.व.) ने मुसलमानों को जो अतिरिक्त शिक्षाएं दीं हैं वे निम्नलिखित हैं —

(1)— मुसलमानों को किसी भी स्थिति में मुस्ला करने की अनुमति नहीं अर्थात् मुसलमानों को युद्ध में मारे गए शत्रुओं के शवों का अपमान करने अथवा उन के अंगों को काटने की अनुमति नहीं दी गई।[1]

---

①-मुस्लिम मिस्री, जिल्द-2, पृष्ठ-62, किताबुलजिहाद, बाब तामीर इमामिल उमराअ अललबुऊस व वसिय्यतिही इय्याहुम बिआदाब व ग़ैरिहा।

(2)— मुसलमानों को युद्ध में कभी धोखेबाज़ी नहीं करना चाहिए। (मुस्लिम)

(3)– किसी बच्चे को नहीं मारना चाहिए और न किसी स्त्री को।①

(4)— पादरियों, पंडितों तथा दूसरे धार्मिक पथ-प्रदर्शकों का वध नहीं करना चाहिए। (तहावी)

(5)— वृद्धों, बालकों और स्त्रियों का वध नहीं करना चाहिए और हमेशा संधि और उपकार को दृष्टि में रखना चाहिए।②

(6)— जब मुसलमान युद्ध के लिए जाएं तो अपने शत्रुओं के देश में आतंक न फैलाएं तथा जन साधारण से कठोर व्यवहार न करें।③

(7)— जब युद्ध के लिए निकलें तो ऐसे स्थान पर पड़ाव न डालें कि लोगों के लिए कष्ट का कारण हो। प्रस्थान के समय इस ढंग से न चलें कि लोगों के लिए मार्ग पर चलना कठिन हो जाए। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इस बात का कठोर आदेश दिया है। फ़रमाया— जो व्यक्ति इन आदेशों की अवहेलना करेगा उसका युद्ध उसके अपने लिए होगा ख़ुदा के लिए नहीं होगा।④

(8) युद्ध में शत्रु के मुख को घायल न करें। (बुख़ारी, मुस्लिम)

(9)— युद्ध के समय प्रयत्न करना चाहिए कि शत्रु को कम से कम हानि पहुँचे। (अबू दाऊद)

(10)— जो क़ैदी पकड़े जाएँ उनमें से जो निकट संबंधी हों उन्हें एक

---

①-मुस्लिम मिस्री जिल्द-2, पृष्ठ-65, किताबुल जिहाद बाब तहरीम क़त्लुन्निसाआ वस्सि-बियान फिलहर्ब।

②-अबू दाऊद जिल्द-प्रथम, किताबुल जिहाद बाब फ़ी दुआइलमुश्रिकीना पृष्ठ-352 नामी प्रेस कानपुर

③-मुस्लिम मिस्री जिल्द-2, पृष्ठ-62 किताबुल जिहाद बाब फ़ी उमराइलजुयूश बित्तैसीर व तरकित्तन्फ़ीर।

④-अबू दाऊद जिल्द प्रथम किताबुल जिहाद बाब मा योमरो मिन इन्ज़िमामिल अस्कर पृष्ठ-353, नामी प्रेम कानपुर

दूसरे से पृथक न किया जाए।[1]

(11)— क़ैदियों के आराम का अपने आराम से अधिक ध्यान रखा जाए।[2]

(12)— विदेशी दूतों का आदर-सम्मान किया जाए, वे ग़लती भी करें तो दृष्टिविगत का व्यवहार किया जाए।[3]

(13)— यदि कोई व्यक्ति युद्ध बन्दी के साथ कठोरता का व्यवहार कर बैठे तो उस क़ैदी को फिद्या लिए बिना आज़ाद कर दिया जाए।

(14)— जिस व्यक्ति के पास कोई युद्ध का क़ैदी रखा जाए वह उसे वही खिलाए जो स्वयं खाए, उसे वही पहनाए जो स्वयं पहने। (बुख़ारी)

हज़रत अबू बकर[रज़ि.] ने इन्हीं आदेशों के अनुसार यह अतिरिक्त आदेश जारी फ़रमाया कि इमारतों को ध्वस्त न करो और फलदार वृक्षों को न काटो।[4]

इन आदेशों से मालूम हो सकता है कि इस्लाम ने युद्ध को रोकने के लिए कैसे उपाय किए और हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इन शिक्षाओं को अलंकृत रूप प्रदान किया और मुसलमानों को उन का पालन करने पर बल दिया। प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है कि न मूसा[अ.] की शिक्षा को उस युग में न्याय की शिक्षा का नाम दिया जा सकता है, न वह इस युग में व्यावहारिक है, न मसीह अलैहिस्सलाम की शिक्षा इस युग में व्यावहारिक कही जा सकती है और न कभी ईसाई लोगों ने उस का पालन किया है। इस्लाम ही की शिक्षा है जो व्यावहारिक है जिस पर आचरण करने से विश्व-शान्ति की स्थापना को बल मिल सकता है।

निःसंदेह इस युग में मिस्टर गांधी ने संसार के समक्ष यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि युद्ध के समय भी युद्ध नहीं करना चाहिए, परन्तु जिस

①- अबू दाऊद किताबुलजिहाद बाब फ़ित्तफ़्रीक़ बैनस्सबिय्ये, 'नामी' प्रेस कानपुर

②-तिरमिज़ी अब्वाबुसियर

③-अबू दाऊद किताबुलजिहाद।

④-मुअत्ता इमाम मालिक मुज्तिबाई किताबुलजिहाद पृष्ठ-167

शिक्षा को मिस्टर गांधी प्रस्तुत कर रहे हैं संसार में उस पर कभी आचरण नहीं किया जा सका कि हम उसके गुण-दोषों का अनुमान लगा सकें। मिस्टर गांधी के जीवन में ही कांग्रेस को सरकार मिल गई है तथा कांग्रेस सरकार ने सेनाओं को हटाया नहीं अपितु वह यह योजनाएं बना रही है कि आई.एन.ए. के वे अफ़सर जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने पदच्युत कर दिया था उन्हें दोबारा सेना में नियुक्त किया जाए अपितु हिन्दुस्तान में कांग्रेसी सरकार के स्थापित हो जाने के सात दिन के अन्दर वज़ीरिस्तान के क्षेत्र में निहत्थे लोगों पर वायुयानों द्वारा बम गिराए गए हैं। स्वयं गांधी जी कठोरता करने वालों का समर्थन तथा उन्हें छोड़ देने के पक्ष में सरकार पर हमेशा ज़ोर देते रहे हैं। जिस से सिद्ध होता है कि न गांधी जी, न उनके अनुयायी इस शिक्षा पर आचरण कर सकते हैं और न कोई ऐसा उचित उपाय संसार के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं जिस से ज्ञात हो कि जातियों और देशों के युद्ध में इस शिक्षा पर किस प्रकार सफलतापूर्वक अमल किया जा सकता है अपितु मौखिक तौर पर इस शिक्षा का उपदेश देते हुए उनके विपरीत व्यवहार करना बताता है कि इस शिक्षा पर अमल नहीं किया जा सकता। अतः इस समय तक संसार को जो अनुभव है और बुद्धि जिस सीमा तक मनुष्य का मार्ग-दर्शन करती है उस से ज्ञात होता है कि वही ढंग उचित था जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अपनाया।

اَللّٰھُمَّ صَلِّ عَلٰی مُحَمَّدٍ وَّ عَلٰی اٰلِ مُحَمَّدٍ کَمَا صَلَّیْتَ عَلٰی اِبْرَاھِیْمَ وَ عَلٰی
اٰلِ اِبْرَاھِیْمَ اِنَّکَ حَمِیْدٌ مَّجِیْدٌ۔

ख़न्दक़-युद्ध के पश्चात् काफ़िरों के मुसलमानों पर आक्रमण

अहज़ाब-युद्ध से वापस लौटने के पश्चात् यद्यपि काफ़िरों के साहस टूट चुके थे तथा उनके हौसले पस्त हो गए थे परन्तु उनका यह अहसास

शेष था कि हम बहुमत में हैं और मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, वे यह समझते थे कि जहाँ-जहाँ भी संभव होगा हम मुसलमानों को इक्का-दुक्का पकड़ कर मार सकेंगे तथा इस प्रकार अपने अपमान का बदला ले सकेंगे। अतः अहज़ाब की पराजय के थोड़े ही समय पश्चात् मदीना के आस-पास के क़बीलों ने मुसलमानों पर छापे मारना प्रारम्भ कर दिए। अतः फ़ज़ारह जाति के कुछ सवारों ने मदीने के निकट छापा मारा तथा मुसलमानों के ऊँट जो वहाँ चर रहे थे उनके चरवाहे का वध कर दिया और उसकी पत्नी को क़ैद कर लिया और ऊँटो को लेकर भाग गए। क़ैदी स्त्री तो किसी न किसी प्रकार भाग आई परन्तु शत्रु ऊँटों का एक भाग लेकर भाग जाने में सफल हो गया। इसके एक माह पश्चात् उत्तर की ओर ग़त्फ़ान क़बीले के लोगों ने मुसलमानों के ऊँटों के रेवड़ को लूटने का प्रयास किया। रसूले करीम (स.अ.व.) ने मुहम्मद बिन मुस्लिमा[रज़ि.] को दस सवारों के साथ परिस्थितियां मालूम करने तथा रेवड़ों की सुरक्षा के लिए भेजा परन्तु शत्रु ने अवसर पाकर उनका वध कर दिया। मुहम्मद बिन मुस्लिमा को भी वे अपनी ओर से मार कर फेंक गए थे परन्तु वास्तव में वे बेहोश थे। शत्रु के चले जाने के पश्चात् वह होश में आए तथा मदीना पहुँच कर परिस्थितियों की सूचना दी और बताया कि मेरे सब साथी मारे गए और केवल मैं बचा हूँ। कुछ दिनों के पश्चात् रसूले करीम (स.अ.व.) का एक दूत जो रूमी सरकार की ओर भिजवाया गया था, उस पर 'जरहम' जाति ने आक्रमण किया और उसे लूट लिया। उसके एक माह पश्चात् बनू फ़ज़ारह ने मुसलमानों के एक दल पर आक्रमण किया और उसे लूट लिया। कदाचित् यह आक्रमण किसी धार्मिक शत्रुता के कारण नहीं था; क्योंकि बनू फ़ज़ारह डाकुओं का एक क़बीला था जो प्रत्येक जाति के लोगों को लूटते और वध करते रहते थे। उस युग में ख़ैबर के यहूदी भी जो अहज़ाब युद्ध का कारण बने थे अपनी पराजय का बदला लेने के लिए इधर-उधर

के क़बीलों को उकसाते रहे तथा रूमी सरकार के सीमावर्ती क्षेत्रों के अधिकारियों तथा क़बीलों को भी मुसलमानों के विरुद्ध जोश दिलाते रहे। अस्तु अरब के काफ़िरों को मदीने पर आक्रमण करने का तो साहस न रहा था तथापि वे यहूद के साथ मिलकर सारे अरब में मुसलमानों के लिए संकट पैदा करने तथा उन्हें लूटने के लिए साधन जुटा रहे थे परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अभी तक काफ़िरों के साथ अन्तिम निर्णायक युद्ध करने का निर्णय नहीं किया था तथा आप[स.] इस प्रतीक्षा में थे कि यदि संधि के साथ यह गृह-युद्ध समाप्त हो जाए तो उचित है।

मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का पन्द्रह सौ सहाबा के साथ मक्का की ओर प्रस्थान

इस अवधि में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने एक स्वप्न देखा जिस का वर्णन क़ुर्आन करीम में इन शब्दों में आता है —

لَتَدْخُلُنَّ الْمَسْجِدَ الْحَرَامَ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ اٰمِنِيْنَ ۙ مُحَلِّقِيْنَ رُءُوْسَكُمْ

وَمُقَصِّرِيْنَ ۙ لَا تَخَافُوْنَ ؕ فَعَلِمَ مَا لَمْ تَعْلَمُوْا فَجَعَلَ مِنْ دُوْنِ ذٰلِكَ فَتْحًا قَرِيْبًا

(सूरह फ़त्ह-28)

अर्थात् तुम अवश्य अल्लाह तआला की इच्छानुसार मस्जिद-ए-हराम में अमन के साथ प्रवेश करोगे। तुम में से कुछ के सर मुंडे हुए होंगे और कुछ के बाल कटे हुए होंगे (हज के समय सर मुंडाना और बाल कटाना आवश्यक होता है) तुम किसी से नहीं डर रहे होगे। अल्लाह तआला जानता है जो तुम नहीं जानते। जिस कारण उसने उस स्वप्न के पूरा होने से पहले एक और विजय निर्धारित कर दी है जो स्वप्न वाली विजय की पृष्ठभूमि होगी तथा स्वप्न में वास्तव में मैत्री और अमन के साथ मक्का-विजय की सूचना दी गई थी, परन्तु रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उसका अर्थ

यही समझा कि कदाचित हमें ख़ुदा तआला की ओर से काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करने का आदेश दिया गया है। चूंकि इस बोधभ्रम से इस प्रकार की नींव पड़ने वाली थी। अल्लाह तआला ने इस ग़लती से रसूले करीम (स.अ.व.) को अवगत न किया। अतः आप[स.] ने अपने सहाबा[रज़ि.] में इस बात की घोषणा की तथा उन्हें भी अपने साथ चलने का आदेश दिया, परन्तु फ़रमाया — हम केवल काबा का तवाफ़ करने की नीयत से जा रहे हैं, किसी प्रकार का प्रदर्शन अथवा कोई कार्य न किया जाए जो शत्रु के क्रोध का कारण हो। अतः आप[स.] ने फ़रवरी 628 ई. के अन्त में पन्द्रह सौ श्रद्धालुओं के साथ मक्का की ओर प्रस्थान किया (एक वर्ष के पश्चात् आप के साथ कुल पन्द्रह सौ लोगों का जाना बताता है कि इस से एक वर्ष पूर्व अहज़ाब युद्ध के अवसर पर इस संख्या से कम ही सिपाही होंगे; क्योंकि एक वर्ष में मुसलमानों की संख्या में बढ़ोतरी हुई थी। अतः अहज़ाब युद्ध में युद्ध करने वालों की संख्या जिन इतिहासकारों ने तीन हज़ार लिखी है यह ग़लती की है, सही यही है कि उस समय बारह सौ सैनिक थे) हज के दल के आगे कुछ दूरी पर बीस सवार इसलिए चलते थे ताकि यदि शत्रु मुसलमानों को हानि पहुँचाना चाहे तो उन्हें समय पर सूचना मिल जाए। जब मक्का वालों को आप के इस इरादे की सूचना मिली तो इसके बावजूद कि उनकी अपनी आस्था भी यही थी कि काबा के तवाफ़ करने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करना चाहिए तथा इसके बावजूद कि मुसलमानों ने स्पष्ट तौर पर घोषणा कर दी थी कि वे केवल काबा का तवाफ़ करने के लिए जा रहे हैं, किसी प्रकार के झगड़े या उपद्रव के लिए नहीं जा रहे। मक्का वालों ने मक्का को एक सुरक्षित दुर्ग के रूप में परिवर्तित कर दिया तथा आस-पास के कबीलों को भी अपनी सहायता के लिए बुला लिया। जब आप[स.] मक्का के निकट पहुँचे तो आप को यह सूचना प्राप्त हुई कि क़ुरैश ने चीतों की खालें पहन ली हैं और अपनी

पत्नियों तथा बच्चों को साथ लिया है और ये क़समें खाई हैं कि वे आप[स.] को गुज़रने नहीं देंगे। अरब का यह प्रचलन था कि जब जाति मृत्यु का निर्णय कर लेती तो उस के सरदार चीते की खालें पहन लेते थे, जिस का अर्थ यह होता था कि अब बुद्धि का समय नहीं रहा, अब हम दिलेरी और निर्भीकता से प्राण दे देंगे। इस सूचना के थोड़े समय पश्चात् ही मक्का की सेना का सेना के पहुँचने से पूर्व अल्प संख्यक घुड़ सवार दल मुसलमानों के सामने आ खड़ा हुआ। अब इस स्थान से आगे केवल इस स्थिति में जा सकते थे कि तलवार के बल पर शत्रु को परास्त किया जाता।

रसूले करीम (स.अ.व.) चूंकि निर्णय करके आए थे कि हम किसी भी अवस्था में नहीं लड़ेंगे। आप ने एक कुशल मार्ग दर्शक को जो जंगल के मार्गों से परिचित था इस बात पर नियुक्त किया कि वह मुसलमान श्रद्धालुओं को जंगल के मार्ग से ले जा कर मक्का तक पहुँचा दे। यह मार्ग-दर्शक व्यक्ति आप[स.] तथा आपके साथियों को लेकर हुदैबिया के स्थान पर जो मक्का के निकट था जा पहुँचा। यहां आप[स.] की ऊँटनी खड़ी हो गई और उसने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। सहाबा[रज़ि.] ने कहा — हे अल्लाह के रसूल ! आप[स.] की ऊँटनी थक गई है, आप उसके स्थान पर दूसरी ऊँटनी पर सवार हो जाएं परन्तु आप[स.] ने फ़रमाया — नहीं, नहीं यह थकी नहीं अपितु ख़ुदा की इच्छा कदाचित यही मालूम होती है कि हम यहां ठहर जाएं और मैं यहां पर ही ठहर कर मक्का वालों से प्रत्येक यत्न से अनुरोध करूँगा कि वे हमें हज करने की अनुमति दे दें चाहे वे कोई भी शर्त तय करें मैं स्वीकार कर लूँगा। उस समय तक मक्का की सेना मक्का से बाहर एक दूरी पर खड़ी थी और मुसलमानों की प्रतीक्षा कर रही थी। यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) चाहते तो बिना लड़ाई किए मक्का में प्रवेश कर सकते थे परन्तु चूंकि आप निर्णय कर चुके थे कि प्रथम आप[स.] यही प्रयास करेंगे कि मक्का वालों की आज्ञा लेकर

काबा का तवाफ़ करें और युद्ध केवल इसी अवस्था में करेंगे कि मक्का वाले स्वयं युद्ध प्रारम्भ करके युद्ध करने पर विवश करें। इसलिए आप[स.] ने मक्का का मार्ग खुला होने के बावजूद हुदैबिया के स्थान पर डेरा डाल दिया। थोड़ी ही देर में आप के हुदैबिया पर डेरा डालने की सूचना मक्का की सेना को भी पहुँच गई तो उसने बड़ी शीघ्रता से पीछे हट कर मक्का के निकट पंक्तिबद्ध हो गई। सर्वप्रथम बदील नामक एक सरदार आप[स.] से बात करने के लिए भेजा गया। जब वह आप की सेवा में उपस्थित हुआ तो आप[स.] ने फ़रमाया— मैं तो केवल काबा का तवाफ़ करने आया हूँ। हाँ यदि मक्का वाले हमें विवश करें तो हमें लड़ना पड़ेगा। इसके पश्चात् मक्का के सेनापति अबू सुफ़यान का दामाद 'उर्वा' आप की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने नितान्त धृष्टता के साथ रसूले करीम (स.अ.व.) से कहा — यह आवारा लोगों का गिरोह आप अपने साथ लेकर आए हैं, मक्का वाले उन्हें किसी अवस्था में भी अपने नगर में प्रवेश नहीं करने देंगे। इसी प्रकार एक के बाद दूसरा दूत आता रहा। अन्ततः मक्का वालों ने सन्देश दिया कि चाहे कुछ भी हो जाए इस वर्ष तो हम आपको तवाफ़ नहीं करने देंगे क्योंकि इसमें हमारा अपमान है। हाँ यदि आप अगले वर्ष आएं तो हम आप को अनुमति दे देंगे। कुछ आस-पास के लोगों ने मक्का वालों से आग्रह किया कि ये लोग केवल काबा का तवाफ़ करने के लिए आए हैं आप लोग इन्हें क्यों रोकते हैं परन्तु मक्का के लोग अपनी हठ पर अड़े रहे। इस पर बाहरी कबीलों के लोगों ने मक्का वालों से कहा कि आप लोगों का यह ढंग संकेत करता है कि आप लोगों के दृष्टिगत उपद्रव फैलाना है संधि दृष्टिगत नहीं। इसलिए हम लोग आप का साथ देने के लिए तैयार नहीं। इस पर मक्का के लोग भयभीत हो गए तथा उन्होंने इस बात पर सहमति प्रकट की कि मुसलमानों के साथ संधि करने का प्रयास करेंगे। जब इस बात की सूचना रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को पहुँची तो आप[स.] ने

हज़रत उसमान[रज़ि.] जो बाद में आपके तृतीय ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) हुए को मक्का वालों से संवाद करने के लिए भेजा। जब हज़रत उसमान[रज़ि.] मक्का पहुँचे तो चूंकि मक्का में उनकी अत्यधिक रिश्तेदारियां थी, उनके संबंधी लोग उनके चारों ओर एकत्र हो गए तथा उन से कहा — आप तवाफ़ कर लें परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अगले वर्ष आकर तवाफ़ करें परन्तु उसमान[रज़ि.] ने कहा कि मैं अपने स्वामी के बिना तवाफ़ नहीं कर सकता। चूंकि मक्का के सरदारों से आप[रज़ि.] के संवादों का क्रम लम्बा हो गया तो कुछ लोगों ने बुरी नीयत से यह समाचार फैला दिया कि उस्मान का वध कर दिया गया है। यह समाचार फैलते-फैलते रसूले करीम (स.अ.व.) तक भी जा पहुँचा। इस पर आप[स.] ने सहाबा[रज़ि.] को एकत्र किया और फ़रमाया— दूत के प्राण हर जाति में सुरक्षित होते हैं। तुम ने सुना है कि उसमान[रज़ि.] का मक्का वालों ने वध कर दिया है। यदि यह सूचना सही निकली तो हम बलपूर्वक मक्का में प्रवेश करेंगे (अर्थात् हमारा पहला इरादा कि संधि के साथ मक्का में प्रवेश करेंगे जिन परिस्थितियों के अन्तर्गत था वे चूंकि परिवर्तित हो जाएँगी, इसलिए हम उस इरादे के पाबन्द नहीं रहेंगे) जो लोग यह वचन देने के लिए तैयार हों कि यदि हमें आगे बढ़ना पड़ा तो या हम विजय प्राप्त करके लौटेंगे या एक-एक करके मैदान में मारे जाएँगे वे इस संकल्प के साथ मेरी बैअत करें। आप[स.] का यह घोषणा करना था कि पन्द्रह सौ श्रद्धालु जो आपके साथ आए थे पल भर में पन्द्रह सौ सैनिकों के रूप में परिवर्तित हो गए और पागलों की भांति एक दूसरे को फांदते हुए उन्होंने रसूले करीम (स.अ.व.) के हाथ पर दूसरों से पहले बैअत करने का प्रयास किया। यह बैअत समस्त इस्लामी इतिहास में एक महान महत्त्व रखती है और वृक्ष की प्रतिज्ञा कहलाती है क्योंकि जिस समय यह बैअत ली गई उस समय रसूले करीम (स.अ.व.) एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। जब तक उस बैअत में सम्मिलित होने वाला

अन्तिम व्यक्ति भी संसार में जीवित रहा वह गर्व से बैअत की चर्चा किया करता था; क्योंकि पन्द्रह सौ लोगों में से किसी एक व्यक्ति ने भी यह प्रतिज्ञा करने से संकोच नहीं किया था कि यदि शत्रु ने इस्लामी दूत को मार दिया है तो आज दो बातों में से एक बात अवश्य पैदा करके हटेंगे। या तो वे सायंकाल से पूर्व मक्का पर विजय प्राप्त करेंगे या सायंकाल से पूर्व रणभूमि में मारे जाएँगे, परन्तु मुसलमान अभी बैअत से निवृत्त ही हुए थे कि हज़रत उस्मान[रज़ि.] वापस आ गए और उन्होंने बताया कि मक्का वाले इस वर्ष तो 'उमरा' की अनुमति नहीं दे सकते परन्तु अगले वर्ष के लिए अनुमति देने को तैयार हैं। अतः इस बारे में समझौता करने के लिए उन्होंने अपने प्रतिनिधि नियुक्त कर दिए हैं। हज़रत उस्मान[रज़ि.] के आने के थोड़े ही समय पश्चात् मक्का का सुहैल नामक एक सरदार समझौता करने के लिए आप[स.] की सेवा में उपस्थित हुआ और यह समझौता लिखा गया।

हुदैबिया-संधि की शर्तें

ख़ुदा के नाम पर ये संधि की शर्तें इब्ने अब्दुल्लाह (स.अ.व.) तथा सुहैल बिन उमर (मक्का की सरकार का प्रतिनिधि) के मध्य तय हुई हैं। ☆-युद्ध दस वर्ष के लिए बन्द किया जाता है। ☆-जो व्यक्ति मुहम्मद (स.अ.व.) के साथ मिलना चाहे या उनके साथ इक़रारनामा करना चाहे वह ऐसा कर सकता है तथा जो व्यक्ति क़ुरैश के साथ मिलना चाहे या इक़रारनामा करना चाहे वह भी ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है। ☆-यदि कोई लड़का जिस का पिता जीवित हो या अभी छोटी आयु का हो वह अपने पिता या अपने अभिभावक की आज्ञा के बिना मुहम्मद (स.अ.व.) के पास जाए तो उसे उसके पिता या अभिभावक के पास वापस कर दिया जाएगा परन्तु यदि मुहम्मद (स.अ.व.) के साथियों में से कोई क़ुरैश की ओर जाए तो उसे वापस नहीं किया जाएगा। ☆-मुहम्मद (स.अ.व.)

इस वर्ष मक्का में प्रवेश किए बिना वापस चले जाएँगे परन्तु अगले वर्ष मुहम्मद (स.अ.व.) और उनके साथी मक्का में आ सकते हैं और तीन दिन ठहर कर काबा का तवाफ़ कर सकते हैं। इस तीन दिन की अवधि के लिए क़ुरैश शहर से बाहर पहाड़ी पर चले जाएँगे परन्तु यह शर्त होगी कि जब मुहम्मद (स.अ.व.) और उनके साथी मक्का में प्रवेश करें तो उनके पास कोई शस्त्र न हो उस शस्त्र के अतिरिक्त जो प्रत्येक यात्री अपने पास रखता है अर्थात् म्यान में डाली हुई तलवार।[1]

इस समझौते के समय दो विचित्र बातें हुईं। जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने शर्तें तय करने के बाद समझौता लिखवाना आरम्भ किया तो आपने फ़रमाया — "ख़ुदा के नाम से जो असीम कृपा करने वाला और बारम्बार दया करने वाला है।"

सुहैल ने इस पर आपत्ति की और कहा — ख़ुदा को तो हम जानते हैं परन्तु यह "असीम कृपा करने वाला और बारम्बार दया करने वाला" हम नहीं जानते कौन है। यह समझौता हमारे और आप के मध्य है और इसमें दोनों की आस्थाओं का सम्मान आवश्यक है। इस पर आपने उसकी बात स्वीकार कर ली और केवल इतना ही लिखवाया कि "ख़ुदा के नाम पर हम यह समझौता करते हैं।" फिर आप[स.] ने यह लिखवाया कि ये संधि की शर्तें मक्का वालों और मुहम्मद रसूलुल्लाह के मध्य हैं। इस पर पुनः सुहैल ने आपत्ति की और कहा कि यदि हम आपको ख़ुदा का रसूल मानते तो आप के साथ लड़ते क्यों? आप[स.] ने इस आपत्ति को भी स्वीकार कर लिया और मुहम्मद रसूलुल्लाह के स्थान पर "मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह" लिखवाया। चूंकि आप मक्का वालों की प्रत्येक बात स्वीकार करते जाते थे, सहाबा[रज़ि.] के हृदयों में अत्यधिक दुःख और खेद उत्पन्न हुआ तथा क्रोध से उनका ख़ून खौलने लगा, यहाँ तक कि हज़रत उमर[रज़ि.]

---

①-इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-180, बुख़ारी किताबुश्शुरूत।

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास उपस्थित हुए तथा उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या हम सच्चे नहीं ? आप ने फ़रमाया— हाँ ! फिर उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या आप को अल्लाह ने यह नहीं बताया था कि हम काबा का तवाफ़ करेंगे? आप[स.] ने फरमाया— हाँ ! इस पर हज़रत उमर[रज़ि.] ने कहा कि फिर आपने यह समझौता आज क्यों किया है? रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— उमर ! ख़ुदा तआला ने मुझे यह तो कहा था कि हम बैतुल्लाह (काबा) का तवाफ़ अमन के साथ करेंगे परन्तु यह तो नहीं कहा था कि हम इसी वर्ष करेंगे। यह तो मेरी अपनी विवृत्ति (इज्तिहाद) थी। इसी प्रकार कुछ अन्य सहाबा[रज़ि.] ने यह आपत्ति की कि यह वचन क्यों लिया गया है कि यदि मक्का के लोगों में से कोई युवक मुसलमान हुआ तो उसके पिता या अभिभावक की ओर वापस कर दिया जाएगा परन्तु जो मुसलमान मक्का वालों की ओर जाएगा उसे मक्का वाले वापस करने पर बाध्य न होंगे। रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— इस में कौन सी अपराध की बात है। प्रत्येक व्यक्ति जो मुसलमान होता है वह इस्लाम को सच्चा समझकर मुसलमान होता है, वह रीति-रिवाज के तौर पर मुसलमान नहीं होता। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी रहेगा वह इस्लाम का प्रचार करेगा और इस्लाम के प्रसार का कारण होगा परन्तु जो व्यक्ति इस्लाम से विमुख होता है हमें उसे अपने अन्दर रखकर क्या करना है। जो व्यक्ति हमारे धर्म को असत्य समझ बैठा है वह हमें क्या लाभ पहुँचा सकता है। आप[स.] का यह उत्तर उन इस्लामी शिक्षा से भटके हुए मुसलमानों के लिए भी उत्तर है जो कहते हैं कि इस्लाम में इस्लाम छोड़ने वाले का दण्ड क़त्ल है। यदि इस्लाम में इस्लाम से विमुख हो जाने वाले व्यक्ति का दण्ड वध कर देना होता तो रसूले करीम (स.अ.व.) इस बात पर आग्रह करते कि प्रत्येक इस्लाम से विमुख व्यक्ति वापस किया जाए ताकि उसे उसके अपराध का दण्ड दिया जाए। जिस समय समझौता

लेखन को अन्तिम रूप दे दिया गया और उस पर हस्ताक्षर कर दिए गए उसी समय अल्लाह तआला ने उस समझौते के औचित्य की परीक्षा की स्थिति पैदा कर दी। सुहैल जो मक्का वालों की ओर से समझौता करने का प्रतिनिधित्व कर रहा था उसका अपना बेटा रस्सियों से जकड़ा हुआ और घावों से चूर अवस्था में रसूले करीम (स.अ.व.) के सामने आकर गिरा और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं हृदय से मुसलमान हूँ और इस्लाम के कारण मेरा पिता मुझे ये कष्ट दे रहा है। मेरा पिता यहाँ आया तो मैं अवसर पाकर आप[स.] के पास पहुँचा हूँ। रसूले करीम (स.अ.व.) ने अभी उत्तर न दिया था कि उस के पिता सुहैल ने कहा कि समझौता हो चुका है, इस युवक को मेरे साथ वापस जाना होगा। अबू जन्दल की दशा उस समय मुसलमानों के सामने थी, वह अपने एक भाई को जो अपने पिता के हाथों इतना अत्याचार सहन कर रहा था वापस जाना नहीं देख सकते थे; उन्होंने म्यान से तलवारें निकाल लीं और संकल्प कर लिया कि वे मर जाएँगे परन्तु अपने भाई को उस कष्ट के स्थान पर पुनः नहीं जाने देंगे। स्वयं अबू-जंदल ने भी रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से कहा कि हे अल्लाह के रसूल ! आप मेरी दुर्दशा को देखते हैं क्या आप इस बात को पसन्द करेंगे कि मुझे फिर इन अत्याचारियों के सुपर्द कर दें ताकि मुझ पर वे पहले से भी अधिक अत्याचार करें। मुहम्मद (स.अ.व.) ने फ़रमाया— ख़ुदा के रसूल समझौते तोड़ा नहीं करते। अबूजन्दल ! हम समझौता कर चुके हैं तुम अब धैर्य से काम लो तथा ख़ुदा पर भरोसा रखो, वह तुम्हारे और तुम्हारे समान अन्य युवकों के लिए स्वयं ही सुरक्षा का कोई मार्ग निकाल देगा। इस समझौते के पश्चात् मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) वापस मदीना आ गए। जब आप मदीना पहुँचे तो मक्का का एक अन्य युवक 'अबू बसीर' आप के पीछे दौड़ता हुआ मदीना पहुँचा परन्तु आप[स.] ने उसे भी समझौते के अनुसार वापस जाने पर विवश किया परन्तु मार्ग में उसकी

अपने पकड़ने वालों से लड़ाई हो गई वह अपने एक पकड़ने वाले का वध करके भाग गया। मक्का वालों ने आप[स.] के पास आकर शिकायत की तो आप[स.] ने फ़रमाया— हमने तुम्हारा व्यक्ति तुम्हारे सुपुर्द कर दिया था। हम इस बात के उत्तरदायी नहीं कि वह जहाँ कहीं भी हो हम उसे पकड़ कर दोबारा तुम्हारे सुपुर्द कर दें। इस घटना के कुछ दिन पश्चात् एक स्त्री भागकर मदीना पहुँची। उसके परिजनों ने मदीना पहुँचकर उस की वापसी की माँग की परन्तु आप[स.] ने फ़रमाया — समझौते में पुरुषों की शर्त है स्त्रियों की शर्त नहीं। इसलिए हम स्त्री को वापस नहीं करेंगे।

राजाओं के नाम पत्र

मदीना पहुँचने के बाद मुहम्मद (स.अ.व.) ने यह इरादा किया कि आप[स.] अपने प्रचार को समस्त संसार में फैलाएं। जब आपने अपनी इस इच्छा को सहाबा के सामने प्रकट किया तो कुछ सहाबा[रज़ि.] ने जो राज-दरबारों से परिचित थे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से कहा — हे अल्लाह के रसूल ! राजा मुहर विहीन पत्र स्वीकार नहीं करते। इस पर आप[स.] ने एक मुहर बनवाई जिस पर "मुहम्मद रसूलुल्लाह"के शब्द ख़ुदवाए। अल्लाह तआला का नाम उसके सम्मान सूचक सर्वोच्च स्थान पर लिखवाया तथा उसके नीचे "रसूल" का फिर नीचे "मुहम्मद" का।

मुहर्रम 628 ई. में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पत्र लेकर विभिन्न सहाबा भिन्न-भिन्न देशों की ओर रवाना हो गए। उनमें से एक पत्र रूम के क़ैसर की ओर था, एक पत्र ईरान के महाराजा की ओर था, एक पत्र मिस्र के राजा की ओर था जो क़ैसर के अधीन था तथा एक पत्र हबशा के राजा नज्जाशी की ओर था। इसी प्रकार कुछ अन्य राजाओं की ओर आप[स.] ने पत्र लिखे।

क़ैसर-ए-रूम हिरक़्ल के नाम पत्र

रूम के बादशाह क़ैसर को दिहया क़ल्बी[रज़ि.] सहाबी के हाथ भेजा गया था और आप[स.] ने उसे निर्देश दिया था कि प्रथम वह बसरा के गवर्नर के पास जाए जो मूलतः अरब था उसके माध्यम से क़ैसर को पत्र पहुँचाए। जब दिहया कल्बी[रज़ि.] बसरा के गवर्नर के पास पत्र लेकर पहुँचे तो संयोग से उन्हीं दिनों क़ैसर शाम के दौरे पर आया हुआ था। अतः बसरा के गवर्नर ने दिहया[रज़ि.] को उसके पास पहुँचा दिया। जब दिहया[रज़ि.] बसरा के गवर्नर के द्वारा क़ैसर के पास पहुँचे तो दरबार के अफ़सरों ने उनसे कहा कि क़ैसर की सेवा में उपस्थित होने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह क़ैसर को सज्दह (दण्डवत्) करे। दिहया[रज़ि.] ने इन्कार किया और कहा— हम मुसलमान किसी मनुष्य को सज्दह नहीं करते। अतः बिना सज्दह किए आप उसके समक्ष गए और पत्र प्रस्तुत किया। बादशाह ने द्विभाषिया से पत्र पढ़वाया और फिर आदेश दिया कि कोई अरब का क़ाफ़िला (दल) आया हो तो उन लोगों को प्रस्तुत करो ताकि मैं उन से उस व्यक्ति के संबंध में जानकारी प्राप्त उन से मालूम करूँ। संयोग से अबू सुफ़यान एक व्यापारिक दल के साथ उस समय वहाँ आया हुआ था। दरबार के अफ़सर अबू सुफ़यान को बादशाह की सेवा में ले गए। बादशाह ने आदेश दिया कि अबू सुफ़यान को सब से आगे खड़ा किया जाए और उसके साथियों को उसके पीछे खड़ा किया जाए तथा निर्देश दिया कि यदि अबू सुफ़यान किसी बात में झूठ बोले तो उसके साथी तुरन्त उसका खण्डन करें। फिर उसने अबू सुफ़यान से प्रश्न किया कि—

बादशाह — यह व्यक्ति जो नबी होने का दावा करता है और जिसका पत्र मेरे पास आया है, क्या तुम जानते हो कि उसका ख़ानदान कैसा है?

अबू सुफ़यान ने कहा — वह अच्छे ख़ानदान का है और मेरे परिजनों में से है।

फिर उसने पूछा — क्या अरब में ऐसा दावा पहले भी किसी व्यक्ति ने किया है?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — नहीं।

फिर उसने पूछा — क्या तुम दावे से पूर्व उस पर झूठ बोलने का आरोप लगाया करते थे?

अबू सुफ़यान ने कहा — नहीं।

फिर उसने पूछा — क्या उसके बाप-दादों में से कोई बादशाह भी हुआ?

अबू सुफ़यान ने कहा — नहीं

फिर बादशाह ने पूछा — उसकी बुद्धि और उसकी राय कैसी है?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — हमने उसकी बुद्धि और राय में कभी कोई दोष नहीं देखा।

फिर क़ैसर ने पूछा — क्या बड़े-बड़े अभिमानी और शक्तिशाली लोग उसकी जमाअत (सम्प्रदाय) में सम्मिलित होते हैं अथवा निर्धन और असहाय लोग?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — निर्धन, असहाय और युवक लोग।

फिर उसने पूछा — वे घटते हैं या बढ़ते हैं?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — बढ़ते चले जाते हैं।

फिर क़ैसर ने पूछा — क्या उन में से कुछ लोग ऐसे हैं जो उसके धर्म को बुरा समझ कर उसके धर्म से विमुख हुए हों?

अबू सुफ़यान ने कहा — नहीं।

फिर उसने पूछा — क्या उसने कभी समझौते को भी तोड़ा है?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — आज तक तो नहीं परन्तु अब हमने एक नया समझौता किया है। देखें अब वह उस के संबंध में क्या करता है।

फिर उसने पूछा — क्या तुम्हारे और उसके मध्य कभी युद्ध भी हुआ है?

अबू सुफ़यान ने उत्तर दिया — हाँ।

इस पर बादशाह ने पूछा — फिर उन युद्धों का परिणाम क्या निकलता है?

अबू सुफ़यान ने कहा — घाट के डोलों जैसा हाल है। कभी हमारे हाथ में डोल होता है, कभी उसके हाथ में डोल होता है। एक बार बदर का युद्ध हुआ और मैं उसमें सम्मिलित नहीं था, इसलिए वह विजयी हो गया और दूसरी बार उहद में युद्ध हुआ। उस समय मैं सेनापति था। हमने उनके पेट फाड़े और उनके कान काटे और उनकी नाकें काटीं।

फिर क़ैसर ने पूछा — वह तुम्हें क्या आदेश देता है?

अबू सुफ़यान ने कहा — वह कहता है कि एक ख़ुदा की एक उपासना करो और उसके साथ किसी को भागीदार न बनाओ। हमारे पूर्वज जिन मूर्तियों को पूजा करते थे वह उनकी पूजा से रोकता है। हमें आदेश देता है कि हम ख़ुदा की उपासना करें

और सत्य बोला करें तथा दुष्कर्मों से बचा करें। हमें कहता है कि हम प्रेम और समझौते को निभाया करें तथा धरोहरों की अदायगी किया करें।①

क़ैसर-ए-रूम का परिणाम निकालना कि मुहम्मद (स.अ.व.) सच्चे नबी हैं।

इस पर क़ैसर ने कहा सुनो ! मैंने तुम से यह प्रश्न किया था कि उसका ख़ानदान (वंश) कैसा है, तो तुम ने कहा — वह वंश की दृष्टि से अच्छा है तथा नबी लोग ऐसे ही हुआ करते हैं। फिर मैंने तुम से पूछा कि क्या इस से पूर्व किसी व्यक्ति ने ऐसा दावा किया है तो तुमने कहा नहीं। यह प्रश्न मैंने इसलिए किया था कि निकट युग में इस से पूर्व ऐसा दावा किया होता तो मैं समझता कि यह भी उसकी नक़ल कर रहा है। फिर मैंने तुम से पूछा— कि क्या इस दावे से पूर्व उस पर झूठ का भी आरोप लगाया गया है। तुमने कहा— नहीं। तो मैंने समझ लिया कि जो व्यक्ति मनुष्यों के संबंध में झूठ नहीं बोलता वह ख़ुदा के संबंध में भी झूठ नहीं बोल सकता। फिर मैंने तुम से पूछा— उसके पूर्वजों में से कोई बादशाह भी था, तो तुम ने कहा— नहीं। तो मैंने समझ लिया कि उसके दावे का कारण यह नहीं कि इस बहाने से अपने पूर्वजों का देश वापस लेना चाहता है। फिर मैंने तुम से पूछा— क्या अभिमानी और शक्तिशाली लोग उसकी जमाअत में सम्मिलित होते हैं या निर्बल और असहाय लोग। तुम ने उत्तर दिया— निर्बल और असहाय लोग। अतः मैंने सोचा कि समस्त नबियों की जमाअत में अधिकतर असहाय और निर्धन लोग ही सम्मिलित हुआ करते हैं न कि अहंकारी और अभिमानी लोग। फिर मैंने तुम से पूछा कि क्या वे बढ़ते हैं या घटते हैं या तो तुमने कहा वे बढ़ते हैं और यही स्थिति नबियों

①-बुख़ारी जिल्द-प्रथम, पृष्ठ-4 बाब कैफ़ा काना बदउल वह्यी मुजतिबाई से प्रकाशित।

की जमाअत की हुआ करती है। जब तक वह पूर्णता को नहीं पहुँच जाती तब तक वह बढ़ती चली जाती है। फिर मैंने तुम से पूछ कि क्या कोई व्यक्ति उसके धर्म को अच्छा न समझ कर धर्म से विमुख भी होता है तो तुम ने कहा— नहीं। नबियों की जमाअत की यही स्थिति होती है। किसी अन्य कारण से कोई व्यक्ति निकले तो निकले, धर्म को बुरा समझ कर नहीं निकलता। फिर मैंने तुम से पूछा — क्या तुम्हारे मध्य कभी युद्ध भी हुआ है तथा उसका परिणाम क्या होता है? तो तुम ने कहा लड़ाई हमारे घाट के डोल की भांति है। नबियों की यही परिस्थिति होती है। प्रारम्भ में उनकी जमाअतों पर संकट आते हैं परन्तु अन्त में जीत उन्हीं की होती है। फिर मैंने तुम से पूछा — वह तुम्हें क्या शिक्षा देता है, तो तुम ने उत्तर दिया कि वह नमाज़ और सच्चाई, सतीत्व और समझौता पूर्ण करने और अमानतदार होने की शिक्षा देता है तथा इसी प्रकार मैंने तुम से पूछा कि वह धोखा भी देता है, तो तुम ने कहा नहीं और ये आचरण तो सदात्मा पुरुषों के ही हुआ करते हैं। अतः मैं समझता हूँ कि **वह नबी** होने के दावे में सच्चा है और मेरा स्वयं यह विचार था कि इस युग में वह नबी आने वाला है परन्तु यह विचार नहीं था कि वह अरबों में पैदा होने वाला है और तुम ने मुझे जो उत्तर दिए हैं यदि वे सच्चे हैं तो फिर मैं समझता हूँ कि वह इन देशों पर अवश्य अधिकार कर लेगा (बुख़ारी) उसकी इन बातों पर उसके दरबारी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने कहा — आप मसीही होते हुए एक दूसरी जाति के व्यक्ति की सच्चाई को स्वीकार कर रहे हैं तथा दरबार में विरोध के स्वर गूंजने लगे। इस पर दरबार के अफ़सरों ने बड़ी शीघ्रता से अबू सुफ़यान और उसके साथियों को दरबार से बाहर निकाल दिया।

हिरक़्ल के नाम हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के पत्र का लेख

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने जो पत्र क़ैसर-ए-रूम के नाम लिखा था उस की इबारत यह थी —

بسم اللّٰہ الرَّحمٰنِ الرَّحِیْم۔

مِنْ مُحَمَّد عبد اللّٰہ و رسوله اِلی ھر قل عَظیم الرّوم۔
سلام علی من اتبع الھدی اما بعد فانی ادعوک
بدعایة الاسلام اسلم تسلم یوتک اللّٰہ اجرک مَرّتَیْن
فان تولّیت فانّمَا علیک اثم الیریسین یا اھل الکتاب
تعالوا الی کلمةٍ سواء بیننا و بینکم الا نعبد الّا اللّٰہ ولا
نشرک به شیئًا ولَا یتّخذ بعضنا بعضًا اَرْ بابًا من دونِ
اللّٰہِ فان تو لّو افقُو لُوا اشھدوا بانّ مُسلِمُوْن

अर्थात् यह पत्र अल्लाह के बन्दे मुहम्मद की ओर से रूम के बादशाह हिरक़्ल की ओर लिखा जाता है। जो व्यक्ति भी ख़ुदा के बताए हुए मार्ग का अनुसरण करे, ईश्वर उसे दीर्घायु करे। तत्पश्चात् हे बादशाह ! मैं तुझे इस्लाम की ओर आमंत्रित करता हूँ (अर्थात् एक ख़ुदा और उसके रसूल मुहम्मद (स.अ.व.) पर ईमान लाने की ओर) हे बादशाह ! तू इस्लाम को स्वीकार कर ले, तो ख़ुदा तुझे समस्त उपद्रवों से बचा लेगा

①-बुख़ारी क़ैफ़ा काना बदउलवह्यी तथा ज़रक़ानी जिल्द-3 पृष्ठ-336

तथा तुझे दोगुना प्रतिफल प्रदान करेगा (अर्थात् ईसा पर ईमान लाने का भी और मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर ईमान लाने का भी) परन्तु यदि तू ने इस बात को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तो तुझ पर केवल तेरे अकेले का ही पाप नहीं होगा अपितु तेरी प्रजा के ईमान न लाने का पाप भी तुझ पर होगा। (अन्त में क़ुर्आन करीम की आयत लिखी हुई थी जिसका अर्थ यह है) अर्थात् हम ख़ुदा तआला के अतिरिक्त किसी की उपासना न करें तथा किसी वस्तु को उसका भागीदार न बनाएं और अल्लाह तआला के अतिरिक्त हम किसी बन्दे को भी इतना सम्मान न दें कि वह ख़ुदाई विशेषताओं का अधिष्ठाता जाने लगे। यदि अहले किताब (यहूदी-ईसाई) इस एकेश्वरवाद के निमंत्रण को स्वीकार न करें तो हे मुहम्मद अल्लाह के रसूल तथा उसके साथियो ! उन से कह दो कि हम तो ख़ुदा तआला के आज्ञाकारी हैं। (अर्थात् आपको ख़ुदा का सन्देश पहुँचा दिया है।)

कुछ इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि बादशाह के सामने जब यह पत्र प्रस्तुत हुआ तो दरबारियों में से कुछ ने कहा कि इस पत्र को फाड़ कर फेंक देना चाहिए; क्योंकि इसमें बादशाह का अपमान किया गया है और पत्र के ऊपर बादशाह-ए-रूम नहीं लिखा गया अपितु रूम का उत्तराधिकारी लिखा है परन्तु बादशाह ने कहा— यह बुद्धि संगत नहीं कि पत्र पढ़ने से पूर्व फाड़ दिया जाए तथा उस ने यह जो मुझे रूम का उत्तराधिकारी लिखा है यह उचित है। वास्तव में स्वामी तो ख़ुदा ही है, मैं उत्तराधिकारी ही हूँ। जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को इस घटना की सूचना मिली तो आप[स.] ने फ़रमाया— रूम के बादशाह ने जो व्यवहार किया है और जो ढंग अपनाया है उसके कारण उसका शासन सुरक्षित रहेगा और उस की सन्तान देर तक शासन करती रहेगी। अतः ऐसा ही हुआ। बाद के युद्धों में यद्यपि देश का बहुत सा क्षेत्र रसूले करीम (स.अ.व.) की एक अन्य भविष्यवाणी के अनुसार रूम के बादशाह के

हाथ से छीना गया, परन्तु इस घटना के छः सौ वर्ष तक उसके वंश का शासन क़ुस्तुनतुनिया में रहा। रूम के शासन में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का पत्र बहुत समय तक सुरक्षित रहा। अतः बादशाह मन्सूर क़लादून के कुछ दूत एक बार रूम के बादशाह के पास गए तो बादशाह ने उनको दिखाने के लिए एक छोटा सन्दूक मंगाया और कहा कि मेरे एक दादा के नाम तुम्हारे रसूल का एक पत्र आया था जो आज तक हमारे पास सुरक्षित है।

फ़ारस के बादशाह के नाम पत्र

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने जो पत्र फ़ारस के बादशाह के नाम लिखा था वह अब्दुल्लाह बिन हुज़ाफ़ा के द्वारा भिजवाया गया था उसके शब्द ये थे —

بسم اللّٰہ الرّحمٰن الرّحیم۔

مِنْ مُحَمَّد رَّسُوْل اللّٰہ اِلٰی کِسْریٰ عَظِیْم الْفَارس۔ سَلَامٌ عَلٰی مَنِ اتَّبَعَ الھُدٰی وامن باللّٰہ وَرَسُوْلِہٖ۔ واشھد اَنْ لّا اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہ وَحْدَہٗ لا شَرِیکَ لَہٗ وَانّ مُحمّدًا عَبْدہ وَ رَسُوْلہ۔ اَدْعُوْکَ بِدعَایَۃِ اللّٰہِ عزَّ وجلّ فَاِنّی اَنا رَسُوْلُ اللّٰہ اِلَی النَّاسِ کَافّۃ لا نذر مَنْ کانَ حَیًّا ویحق القول علی الکافرینَ۔ اسْلِمْ تسلم فَاِنْ اَبَیْتَ فَعَلَیْکَ اِثم الْمَجُوْس۔

अर्थात् अल्लाह का नाम लेकर जो असीम कृपा करने वाला तथा बार-बार दया करने वाला है। यह पत्र मुहम्मद रसूलुल्लाह ने फ़ारस के

①-ज़रक़ानी जिल्द-3, पृष्ठ-340 तथा तारीख़ुल ख़मीस जिल्द-2, पृष्ठ-38

सरदार किस्रा की ओर लिखा है। जो व्यक्ति सर्वथा सरल सन्मार्ग का अनुसरण करे तथा अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाए और गवाही दे कि अल्लाह एक है उसका कोई भागीदार नहीं तथा मुहम्मद उसके बन्दे और रसूल हैं उस पर ख़ुदा की सलामती हो। हे बादशाह ! मैं तुझे ख़ुदा के आदेशानुसार इस्लाम की ओर बुलाता हूँ क्योंकि मैं समस्त लोगों के लिए ख़ुदा की ओर से रसूल बना कर भेजा गया हूँ ताकि प्रत्येक व्यक्ति को सावधान करूँ और काफ़िरों को सचेत कर दूँ। हे सरदार ! तू इस्लाम स्वीकार कर ताकि तू प्रत्येक उपद्रव से सुरक्षित रहे। यदि तू इस निमंत्रण का इन्कार करेगा तो समस्त मजूस जाति (अग्नि पूजकों) का पाप तेरे ही सर पर होगा।

अब्दुल्लाह बिन हुज़ाफ़ा कहते हैं कि जब मैं किस्रा के दरबार में पहुँचा तो मैंने अन्दर आने की आज्ञा मांगी जो दी गई। जब मैंने बढ़ कर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का पत्र किस्रा के हाथों में दिया, तो उसने द्विभाषी को पढ़कर सुनाने का आदेश दिया। जब द्विभाषी ने उस पत्र को पढ़कर सुनाया तो किस्रा ने क्रोध से पत्र फाड़ दिया। जब अब्दुल्लाह बिन हुज़ाफ़ा ने आकर यह ख़बर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को सुनाई तो आप ने फ़रमाया— किस्रा ने जो कुछ हमारे पत्र के साथ किया ख़ुदा तआला उसकी बादशाहत के साथ भी ऐसा ही करेगा। किस्रा के इस प्रकार के व्यवहार का कारण यह था कि अरब के यहूदियों ने उन यहूदियों के द्वारा जो रूम की सरकार से भाग कर ईरान की सरकार में चले गए थे और रूमी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्रों में किस्रा का साथ देने के कारण बहुत मुँह चढ़े थे। किस्रा को मुहम्मद (स.अ.व.) के विरुद्ध अत्यधिक भड़का रखा था। वे जो शिकायतें कर रहे थे उस पत्र ने उनके विचारों की पुष्टि कर दी तथा उसने सोचा कि यह व्यक्ति मेरी सरकार पर दृष्टि रखता है। अतः उस पत्र के तुरन्त बाद किस्रा ने अपने यमन के गवर्नर को एक पत्र लिखा जिसका लेख यह था कि क़ुरैश में से एक व्यक्ति नबी होने

का दावा कर रहा है और अपने दावों में बहुत बढ़ता चला चा रहा है तू तुरन्त उसकी ओर दो व्यक्ति भेज जो उसे पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करें। अतः 'बाज़ान' ने जो किस्रा की ओर से यमन का गवर्नर था एक फ़ौजी अफ़सर और एक सवार मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की ओर भिजवाए तथा आप[स.] की ओर एक पत्र भी लिखा कि आप इस पत्र के मिलते ही तुरन्त इन लोगों के साथ किस्रा के दरबार में उपस्थित हो जाएं। वह अफ़सर पहले मक्का की ओर गया। तायफ़ के निकट पहुँचकर उसे ज्ञात हुआ कि आप[स.] मदीना में निवास करते हैं। अतः वह वहाँ से मदीना गया। मदीना पहुँच कर उसने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से कहा कि किस्रा ने यमन के गवर्नर बाज़ान को आदेश दिया है कि आप को पकड़ कर क्रिसा की सेवा में उपस्थित किया जाए यदि आप इस आदेश का इन्कार करेंगे तो यह आप का भी वध कर देगा तथा आप की जाति का भी विनाश कर देगा तथा आप के देश को भी ध्वस्त कर देगा। इसलिए आप हमारे साथ अवश्य चलें। रसूले करीम (स.अ.व.) ने उसकी बात सुनकर कहा— अच्छा कल पुनः तुम मुझ से मिलना। रात को आप[स.] ने ख़ुदा से दुआ की तथा प्रतापवान व तेजस्वी ख़ुदा ने आप को सूचना दी कि क्रिसा की उद्दण्डता के दण्डस्वरूप हम ने उसके बेटे को उस के राष्ट्र की बागडोर सोंप कर क्रिसा को उसके अधीन कर दिया है। अतः वह इसी वर्ष जमादिउल ऊला की दसवीं तिथि सोमवार के दिन उसका वध कर देगा और कुछ रिवायतों में है कि आप[स.] ने फ़रमाया— कि आज की रात उसने उसका वध कर दिया है। संभव है वह रात वही दस जमादिउल ऊला की रात हो। जब प्रात:काल का उदय हुआ तो रसूले करीम (स.अ.व.) ने उन दोनों को बुलाया और उन्हें इस भविष्यवाणी से अवगत किया फिर नबी करीम (स.अ.व.) ने बाज़ान को पत्र लिखा कि ख़ुदा ने मुझे सूचना दी है कि किस्रा का अमुक माह, अमुक दिन वध कर दिया जाएगा। जब यह

पत्र यमन के गवर्नर को पहुंचा तो उसने कहा— यदि यह सच्चा नबी है तो ऐसा ही हो जाएगा अन्यथा उसकी और उसके देश की कुशलता नहीं। कुछ ही समयोपरान्त ईरान का एक जहाज़ यमन की बन्दरगाह पर आकर ठहरा और गवर्नर को ईरान के बादशाह का एक पत्र दिया जिसकी मुहर देखते हुए यमन के गवर्नर ने कहा— मदीना के नबी ने सत्य कहा था। ईरान की बादशाहत परिवर्तित हो गई तथा इस पत्र पर एक अन्य बादशाह की मुहर है। जब उसने पत्र खोला तो उसमें लिखा हुआ था कि ईरान के किस्रा 'शेर दिया' की ओर से यमन के गवर्नर बाज़ान को यह पत्र लिखा जाता है। मैंने अपने पिता किस्रा पूर्व का वध कर दिया है, इसलिए कि उसने देश में रक्तपात का द्वार खोल दिया था और देश के सम्मानित लोगों का वध करता था तथा प्रजा पर अत्याचार करता था। जब मेरा यह पत्र तुम तक पहुँचे तो तुरन्त समस्त अफ़सरों से मेरी अधीनता का इक़रार लो तथा इस से पूर्व मेरे पिता ने अरब के एक नबी की गिरफ़्तारी का जो आदेश तुम्हें दिया था उसे निरस्त समझो①। यह पत्र पढ़कर बाज़ान इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसी समय वह और उसके अनेक साथियों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उसने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को अपने इस्लाम की सूचना दे दी।

हबशा के बादशाह नज्जाशी के नाम पत्र

आप[स.] ने तीसरा पत्र नज्जाशी के नाम लिखा जो उमर बिन उमैया ज़मरी[रज़ि.] के हाथ भिजवाया था। उसकी इबारत यह थी—

بِسْمِ اللّٰہ الرَّحْمٰن الرَّحِیْم۔ من محمد رسول اللّٰہ الی النجاشی
ملک الحبشه سلمٌ انت۔ اما بعد فانی احمد الیک اللّٰہ الَّذی
لا اِلا اِلٰہ الَّا ھو الْملک القدّوسُ السَّلام المؤمن الْمُھَیْمِن واشھد

①-तिबरी, जिल्द-3 पृष्ठ-1572 से 1574 तथा सीरतुन्नबी लिइब्ने हिशाम

ان عیسٰی ابن مریم روح اللّٰہ و کلمتہ القاھا الیٰ مریم البتول
و انی ادعوک الی اللّٰہ وحدہ لَا شَرِیکَ لہ والموالات علیٰ
طاعتہ۔ وان تَتَّبِعنی وَتومن بِالَّذی جاءنی فانی رسول اللّٰہ وانی
ادعوک و جنودک الَی اللّٰہ عزوجلَّ وقد بلغت و نصحت
فاقبلوا نصیحتی۔ والسلام علیٰ من اتبع الھُدٰی۔①

अर्थात् अल्लाह का नाम लेकर जो असीम कृपा करने वाला और बार-बार दया करने वाला है। मुहम्मद रसूलुल्लाह की ओर से हबशा के बादशाह नज्जशी की ओर पत्र लिखा जाता है। हे बादशाह ! तुझ पर ख़ुदा की सलामती हो रही है (चूंकि उस बादशाह ने मुसलमानों को शरण दी थी, इसलिए आप ने उसको सूचना दी कि तेरा यह कर्म ख़ुदा के निकट मान्य हुआ है और तू ख़ुदा की सुरक्षा में है) मैं उस ख़ुदा की स्तुति तेरे समक्ष वर्णन करता हूँ जिसके अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नहीं, जो सच्चा बादशाह है, जो समस्त पवित्रताओं का पुंज है, जो प्रत्येक दोष से रहित है तथा प्रत्येक दोष से बचाने और पवित्र करने वाला है, जो अपने बन्दों के लिए शान्ति के संसाधन पैदा करता है और अपनी सृष्टि की सुरक्षा करता है। मैं गवाही देता हूँ कि ईसा इब्ने मरयम ख़ुदा तआला की शिक्षा को संसार में फैलाने वाले थे और ख़ुदा तआला के उन वादों को पूरा करने वाले थे जो ख़ुदा ने मरयम[अ.] से जिसने अपना जीवन ख़ुदा के लिए समर्पित कर दिया था पहले से किए हुए थे और मैं तुझे एक ख़ुदा जिसका कोई भागीदार नहीं से संबंध पैदा करने और उस की जोड़ने और उसकी आज्ञाओं का पालन करने (के नियमों) आज्ञाकारिता पर परस्पर समझौता करने का निमंत्रण देता हूँ और मैं तुझे इस बात के लिए आमंत्रित करता हूँ कि तू मेरा अनुसरण करे और उस ख़ुदा पर ईमान लाए जिस ने मुझे भेजा है; क्योंकि मैं उसका रसूल हूँ और मैं तुझे दा'वत देता हूँ और तेरी

①-ज़रक़ानी जिल्द-3, पृष्ठ-342 तथा अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3 पृष्ठ-273

सेनाओं को भी ख़ुदा के धर्म में सम्मिलित होने की दा'वत देता हूँ। मैंने अपना दायित्व पूर्ण कर दिया है और ख़ुदा का सन्देश तुझ तक पहुँचा दिया है तथा तुम पर पूर्ण रूप से खोलकर वास्तविकता स्पष्ट कर दी है। अतः मेरी परिशुद्ध भावनाओं का सम्मान करो। प्रत्येक व्यक्ति जो ख़ुदा तआला के दर्शाए हुए सन्मार्ग का अनुसरण करता है उसे ख़ुदा तआला की ओर से सुरक्षा प्रदान की जाती है।

जब यह पत्र नज्जाशी को पहुँचा तो उसने सर्वथा सम्मानपूर्वक उस पत्र को अपनी आँखों से लगाया और राज-सिंहासन से नीचे उतर कर खड़ा हो गया और कहा कि हाथी दांत का एक डिब्बा लाओ। अतः एक डिब्बा लाया गया। उसने वह पत्र बड़े सम्मान के साथ उस डिब्बे में रख दिया और कहा— जब तक यह पत्र सुरक्षित रहेगा हबशा की सरकार सुरक्षित रहेगी। अतः नज्जाशी का यह विचार सही सिद्ध हुआ। एक हज़ार वर्ष तक इस्लाम समस्त संसार पर सागर की लहरों के समान लहरें मारता हुआ फैलता चला गया। हबशा के दाएँ से भी इस्लामी सेनाएं निकल गईं और हबशा के बाएँ से भी इस्लामी सेनाएं निकल गईं परन्तु उस उपकार के कारण जो हबशा के बादशाह ने इस्लाम के प्रारम्भिक मुहाजिरों (प्रवासियों) के साथ किया था तथा उस सम्मान के कारण जो नज्जाशी बादशाह ने हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पत्र का किया था उन्होंने हबशा की ओर दृष्टि उठा कर भी न देखा। क़ैसर जैसे बादशाह की सरकार के टुकड़े-टुकड़े हो गए, किस्रा जैसे बादशाह के शासन का नामो-निशान मिट गया, चीन और हिन्दुस्तान के शासन अस्त-व्यस्त कर दिए गए परन्तु हबशा की एक छोटी सरकार सुरक्षित रखी गई इसलिए कि उसने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के प्रारम्भिक साथियों के साथ एक उपकार तथा मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पत्र का आदर-सम्मान किया था। यह तो वह व्यवहार था जो छोटे से उपकार के फलस्वरूप

हबशा वालों से मुसलानों ने किया, परन्तु ईसाई जातियों ने जो एक गाल पर थप्पड़ खाकर दूसरा गाल भी फेर देने के दावेदार अपने ही धर्मावलम्बियों और अपनी ही नीतियों पर चलने वाले अपने सहधर्मी और सहवर्गीय हबशा के बादशाह तथा उसकी जाति के साथ इन दिनों जो व्यवहार किया है वह भी संसार के समक्ष स्पष्ट है। हबशा के शहरों को किस प्रकार बमबारी करके ध्वस्त कर दिया गया तथा बादशाह और उसकी सम्माननीय महारानी तथा उसके बच्चों को अपनी मातृभूमि छोड़ कर अन्य देशों में वर्षों शरणार्थी बन कर रहना पड़ा। क्या हबशा से ये दो प्रकार का व्यवहार— एक व्यवहार मुसलमानों का और एक ईसाइयों का उस पवित्र अलौकिक शक्ति को सिद्ध नहीं करता जो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) में पाई जाती थी जो आज तक भी जब कि मुसलमान धर्म से बहुत दूर जा चुके हैं उनके विचारों को भलाई और कृतज्ञता की ओर झुकाए रखती है।

मिस्र के बादशाह मक़ूक़स के नाम पत्र

आप[स.] ने चौथा पत्र मिस्र के राजा मक़ूक़श की ओर लिखा था। यह पत्र 'हातिब बिन अबी बल्ता[रज़ि.]' के द्वारा भिजवाया। इस पत्र का लेख यह था—

بسم اللّٰہ الرحمن الرحیم۔ من محمد رسول اللّٰہ الٰی المقوقس
عظیم القبط۔سلام علٰی من اتبع الھُدٰی۔ اما بعد فانی
ادعوک بدعایۃ الاسلام اسلِم تُسلم یوتیکَ اللّٰہ اجرک
مرتین فان تولّیت فَاِنّما علیک اثم القبط ویا اھل الکتاب
تعالوا اِلٰی کلمۃ سواء بیننا و بینکم اَلّا نعبد اِلّا اللّٰہ وَلا
نشرک بِہٖ شیئًا ولا یتّخذ بعضنا بعضنا اربابًا من دون فان
تولّو افقولوا شھدوا بِاَنّا مُسلمون۔①

①-ज़रक़ानी जिल्द-3, पृष्ठ-347, अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-275

यह पत्र बिल्कुल वैसा ही है जैसा रूम के बादशाह को लिखा गया था कि यदि तुमने स्वीकार न किया तो रूमी प्रजा के पापों का बोझ भी तुम पर होगा तथा इसमें यह था कि क़िब्तियों के पापों का बोझ तुम पर होगा। जब हातिब[रज़ि.] मिस्र पहुँचे तो उस समय मक़ूक़स अपनी राजधानी में नहीं था अपितु इस्कन्दरिया में था। हातिब[रज़ि.] इस्कन्दरिया गए जहाँ बादशाह ने समुद्र के किनारे एक सभा आयोजित की हुई थी। हातिब[रज़ि.] एक नौका में सवार हो कर उस स्थान तक गए। चूंकि चारों ओर पहरा था, उन्होंने दूर से पत्र को बन्द करके आवाज़ें देना आरम्भ किया। बादशाह ने आदेश दिया कि इस व्यक्ति को लाया जाए और उसके समक्ष उपस्थित किया जाए। बादशाह ने पत्र पढ़ा और हातिब से कहा— यदि यह सच्चा नबी है तो अपने शत्रुओं के विरुद्ध दुआ नहीं करता? हातिब[रज़ि.] ने कहा— तुम ईसा बिन मरयम पर तो ईमान लाते हो, यह क्या बात है कि ईसा को उनकी जाति ने दुःख दिया, परन्तु ईसा ने यह दुआ न की कि वे तबाह हो जाएँ। बादशाह ने सुन कर कहा— तुम एक बुद्धिमान की ओर से बुद्धिमान दूत हो और तुम ने श्रेष्ठ उत्तर दिया है। इस पर हातिब[रज़ि.] ने कहा— हे बादशाह ! तुझ से पूर्व एक बादशाह था जो कहा करता था कि मैं बड़ा रब्ब हूं अर्थात् फ़िरऔन। अन्ततः ख़ुदा ने उस पर प्रकोप उतारा। अतः तू अहंकार न कर और ख़ुदा के इस नबी पर ईमान ले आ। ख़ुदा की क़सम मूसा[अ.] ने ईसा के बारे में ऐसी सूचनाएं नहीं दीं जैसी ईसा[अ.] ने मुहम्मद (स.अ.व.) के बारे में दी हैं। हम तुम्हें उसी प्रकार मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की ओर बुलाते हैं जिस प्रकार तुम लोग यहूदियों को ईसा[अ.] की ओर बुलाते हो। हर नबी की एक उम्मत होती है और उसका कर्त्तव्य होता है कि उसकी आज्ञाओं का पालन करे। अतः जबकि तुम ने उस नबी का युग पाया है तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि उसे स्वीकार करो। हमारा धर्म मसीह के अनुसरण से नहीं रोकता अपितु हम तो दूसरों को भी आदेश देते

हैं कि मसीह पर ईमान लाएं। इस पर मक़्क़ूक़स ने कहा— मैंने उस नबी का हाल सुना और मैं यह महसूस करता हूँ कि वह किसी बुरी बात का आदेश नहीं देता और किसी शुभ कर्म से रोकता नहीं तथा मैंने मालूम किया है कि वह व्यक्ति जादूगरों तथा ज्योतिषियों की भांति नहीं है और मैंने उसकी कुछ भविष्यवाणियां सुनी हैं जो पूरी हुई हैं। फिर उसने हाथी दांत की एक डिबिया मंगवाई तथा उसमें रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का पत्र रख दिया और उस पर मुहर लगा दी तथा अपनी एक दासी के सुपुर्द कर दिया और फिर उसने रसूले करीम (स.अ.व.) के नाम यह पत्र लिखा—

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

क़िब्त का बादशाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह की ओर पत्र लिखता है कि आप पर सलामती हो। तत्पश्चात मैं यह कहता हूँ कि मैंने आप का पत्र पढ़ा है और आप ने उसमें जो कुछ लिखा है और जिन बातों की ओर बुलाया है उन पर विचार किया है और मुझे ज्ञात हुआ है कि इस्राईली भविष्यवाणियों के अनुसार एक नबी का आना अभी शेष है परन्तु मेरा विचार था कि वह शाम देश में प्रकट होगा। मैंने आप के दूत को बड़े सम्मान के साथ ठहराया है। मैंने उसे एक हज़ार पौण्ड और पाँच जोड़े शाही लिबास के उपहारस्वरूप दिए हैं और मैं दो मिस्री युवतियां आपके लिए बतौर भेंट भेज रहा हूँ। क़िब्ती जाति में उन युवतियों का बड़ा सम्मान है। उनमें से एक का नाम मारिया और एक का नाम सीरीन है तथा मिस्री कपड़े के उच्च कोटि के बीस जोड़े भी आप की सेवा में भिजवा रहा हूँ तथा इसी प्रकार एक खच्चर आप की सवारी के लिए भिजवा रहा हूँ। अन्त में पुनः दुआ करता हूँ कि ख़ुदा आप की रक्षा करे। ①

इस पत्र से विदित होता है कि यद्यपि मक़्क़ूक़स ने आप[स.] के पत्र से आदर-सम्मान का व्यवहार किया परन्तु इस्लाम नहीं लाया।

①-ज़रकानी जिल्द-2, पृष्ठ-349-350 तथा तिबरी जिल्द-3, पृष्ठ-1559

बहरैन के अमीर के नाम पत्र

आप[स.] ने पांचवां पत्र मुन्ज़िर तैमी की ओर जो बहरैन का अमीर था भेजा। यह पत्र अला बिन हज़रमी[रज़ि.] के द्वारा भिजवाया गया था। इस पत्र का लेख सुरक्षित नहीं। यह पत्र जब उसके पास पहुँचा तो वह ईमान ले आया और उसने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को लिखा कि मैं और मेरे बहुत से साथी आप[स.] पर ईमान ले आए हैं और कुछ ऐसे हैं जो इस्लाम में सम्मिलित नहीं हुए तथा मेरे देश में कुछ यहूदी और अग्निपूजक भी रहते हैं आप उनके बारे में मुझे आदेश दें कि मैं उन से क्या व्यवहार करूँ। आप[स.] ने उसे पत्र लिखा जिसकी इबारत यही थी—

हमें प्रसन्नता हुई है कि तुम ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है मेरी ओर से जो दूत आएं तुम उनके आदेशों का पालन किया करो क्योंकि जो उनका अनुसरण करेगा वह मेरा अनुसरण करेगा। जो मेरा दूत तुम्हारे पास गया था उसने तुम्हारी बहुत प्रशंसा की और बताया है कि तुम ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है। मैंने तुम्हारी जाति के बारे में ख़ुदा तआला से दुआ की है। अतः मुसलमानों में इस्लामी शिक्षाओं को जारी करो तथा उनकी धन-सम्पत्ति की रक्षा करो तथा किसी को चार पत्नियों से अधिक रखने की अनुमति न दे, मुसलमान होने वालों से जो पाप पहले हो चुके हैं वे उन्हें क्षमा कर दिए जाएँ। जब तक नेकी पर आचरण करते रहोगे तुम्हें तुम्हारे शासन से अपदस्थ नहीं किया जाएगा तथा जो यहूदी और अग्निपूजक हैं उन के लिए केवल एक कर का प्रावधान है उनसे अन्य कोई मांग न करना और अपने देश के लोगों के बारे में यह ध्यान रखो कि जिन लोगों के पास आजीविका के लिए भूमि नहीं है उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को चार दिरहम और लिबास दिया जाए।[1]

---

①-ज़रकानी जिल्द-3, पृष्ठ 352-353, अस्सीरतुल हलबिय्यह, जिल्द-3, पृष्ठ-278

इसके अतिरिक्त आप[स.] ने उम्मान के बादशाह और यमामा के सरदार, ग़स्सान के बादशाह, यमन के बनी नहद क़बीले के सरदार, यमन के हमदान क़बीले के सरदार, बनी अलीम के सरदार और हज़रमी क़बीले के सरदार की ओर भी पत्र लिखे जिनमें से अधिकांश लोग मुसलमान हो गए। इन पत्रों का लिखना बताता है कि आप[स.] ख़ुदा तआला पर कितना अटल विश्वास रखते थे तथा किस प्रकार आरम्भ से ही आप[स.] को यह विश्वास था कि आप किसी एक जाति की ओर नबी बना कर नहीं भेजे गए अपितु आप समस्त जातियों की ओर नबी बना कर भेजे गए हैं। निःसंदेह जिन बादशाहों और अमीरों को पत्र लिखे गए थे उन में से कुछ ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, कुछ ने सम्मानपूर्वक पत्र तो स्वीकार कर लिए परन्तु इस्लाम को स्वीकार न किया, कुछ ने साधारण सभ्यता का परिचय दिया तथा कुछ ने अभिमान और अहंकार का प्रदर्शन किया परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं तथा विश्व का इतिहास इस पर साक्षी है कि परमेश्वर उनमें प्रत्येक बादशाह और जाति के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसा उसने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पत्रों के साथ व्यवहार किया।

ख़ैबर के क़िले पर विजय

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है यहूदी और अरब के काफ़िर लोग मुसलमानों के विरुद्ध आस-पास के कबीलों को उकसा रहे थे। अब यह देखकर कि अरब में इतनी शक्ति शेष नहीं रही कि वे मुसलमानों को नष्ट कर सकें अथवा मदीना पर जाकर आक्रमण कर सकें। यहूदियों ने एक ओर तो रूमी शासन की दक्षिणी सीमा पर रहने वाले अरब क़बीलों को जो धर्म की दृष्टि से ईसाई थे उकसाना आरम्भ किया तथा दूसरी ओर अपने उन सहधर्मियों को जो इराक़ में रहते थे रसूले करीम (स.अ.व.) के विरुद्ध पत्र लिखने आरम्भ किए ताकि वे किस्रा बादशाह को मुसलमानों

के विरुद्ध भड़काएँ। मैं ऊपर यह भी बता कर चुका हूँ कि इस चपलता के परिणामस्वरूप किस्रा मुसलमानों के विरुद्ध अत्यधिक भड़क चुका था तथा उसने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की गिरफ़्तारी के लिए यमन के गवर्नर को आदेश भी दे दिया था परन्तु अल्लाह तआला ने अपनी विशेष कृपा से मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को सुरक्षित रखा तथा किस्रा और यहूदियों के षड्यन्त्रों को असफल कर दिया। स्पष्ट है कि यदि ख़ुदा तआला की विशेष कृपा न होती तो जहाँ तक भौतिक संसाधनों का संबंध है मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) एक ओर किस्रा दूसरी ओर क़ैसर की सेनाओं का क्या मुकाबला कर सकते थे। ख़ुदा ही था जिसने किस्रा को मार दिया तथा उसके पुत्र से यह आदेश जारी करवाया कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के बारे में कोई कार्यवाही न की जाए। इस निशान को देख कर यमन के अधिकारी-गण ईमान ले आए और यमन का प्रान्त बिना किसी सैनिक कार्यवाही के इस्लामी शासन में सम्मिलित हो गया। ये यहूद की पैदा की हुई परिस्थितियां इस बात की मांग करती थीं कि यहूद को मदीना से और भी अधिक दूर ढकेल दिया जाए क्योंकि यदि वे मदीना के निकट रहते तो निश्चय ही और अधिक रक्तपात, उपद्रवों तथा षड्यन्त्रों के दोषी होते। अतः मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने हुदैबिया-संधि से वापस आने के लगभग पाँच माह पश्चात् यह निर्णय किया कि यहूदी ख़ैबर से जो मदीना से कुछ मील की दूरी पर था, जहां से मदीना के विरुद्ध बड़ी सरलता से षड्यन्त्र किए जा सकते थे निकाल दिए जाएं। अतः आप[स.] ने सोलह सौ सहाबा के साथ अगस्त 623 ई. में ख़ैबर की ओर कूच किया ख़ैबर एक क़िला बन्द नगर था; उसके चारों ओर चट्टानों के ऊपर क़िले बने हुए थे। इतने सुदृढ़ नगर को इतने कम सैनिकों के साथ विजय कर लेना कोई आसान कार्य न था। आस-पास की छोटी-छोटी चौकियां तो छोटी-छोटी लड़ाइयों के द्वारा ही विजय हो गईं परन्तु जब यहूदी एकत्र

हो कर नगर के मुख्य क़िले में आ गए तो उस पर विजय प्राप्त करने के समस्त उपाय व्यर्थ जाने लगे। एक दिन ख़ुदा तआला ने रसूले करीम (स.अ.व.) को बताया कि इस नगर की विजय हज़रत अली[रज़ि.] के हाथ पर निश्चित है। आप[स.] ने प्रात:काल यह घोषणा की कि मैं इस्लाम का काला झण्डा आज उसके हाथ में दूँगा जिसे ख़ुदा और उसका रसूल तथा मुसलमान प्यार करते हैं; ख़ुदा तआला ने इस क़िले की विजय उसके हाथ पर निश्चित की है। तत्पश्चात् दूसरे दिन प्रात: आप[स.] ने हज़रत अली[रज़ि.] को बुलाया और झण्डा उन के सुपुर्द किया जिन्होंने सहाबा की सेना को साथ लेकर किले पर आक्रमण किया। इसके बावजूद कि यहूदी क़िलाबन्द थे। अल्लाह तआला ने हज़रत अली[रज़ि.] तथा दूसरे सहाबा[रज़ि.] को उस दिन ऐसी शक्ति प्रदान की कि सायंकाल से पूर्व किला विजय हो गया तथा इस बात पर संधि हुई कि समस्त यहूदी और उनके परिवार ख़ैबर छोड़ कर मदीना से दूर चले जाएँगे और उनके समस्त माल मुसलानों के पक्ष में दण्ड के तौर पर ज़ब्त (क़ुर्क़) होंगे और यह कि जो व्यक्ति इस बारे में झूठ से काम लेगा तथा कोई माल या अनाज छुपा कर रखेगा वह इस समझौते की सुरक्षा के अन्तर्गत नहीं आएगा तथा विश्वासघात के दण्ड का अधिकारी होगा।

तीन अद्भुत घटनाएँ

इस युद्ध में तीन अद्भुत घटनाएँ सामने आईं। उनमें से एक तो ख़ुदा तआला के एक निशान को सिद्ध करती है और दो घटनाएँ रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के उच्च शिष्टाचार को उन दो निशानों में से एक निशान तो यह है कि इस युद्ध के पश्चात् जब ख़ैबर के सरदार किनाना की पत्नी सफ़िया मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के निकाह में आईं तो आप[स.] ने देखा कि उनके चेहरे पर लम्बे-लम्बे निशान हैं। आप[स.] ने पूछा सफिया ! तुम्हारे ये निशान कैसे हैं? उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! एक दिन मैंने

एक स्वप्न देखा कि चन्द्रमा गिर कर मेरी झोली में आ पड़ा है। मैंने दूसरे दिन यह स्वप्न अपने ख़ानदान वालों को सुनाया। मेरे पति ने कहा— यह बड़ा विचित्र स्वप्न है, तुम्हारा पिता बड़ा विद्वान पुरुष है चल कर उसे यह स्वप्न सुनाते हैं। अत: मैंने अपने पिता से इस की चर्चा की तो स्वप्न के सुनते ही उस ने ज़ोर से मेरे मुख पर थप्पड़ मारा और कहा— मूर्ख क्या तू अरब के बादशाह से विवाह करना चाहती है[1]। यह उस ने इसलिए कहा कि अरब का राष्ट्रीय निशान चन्द्रमा था। यदि कोई स्वप्न में यह देखता कि चन्द्रमा उसकी झोली में आ गिरा है तो उसका अर्थ यह समझा जाता था कि अरब के बादशाह के साथ उसका संबंध हो गया है और यदि कोई स्वप्न में यह देखता कि चन्द्रमा फट गया है या गिर गया है तो उसका अर्थ यह लिया जाता था कि अरब के शासन में फूट पड़ गई है या वह नष्ट हो गया है। यह स्वप्न रसूले करीम (स.अ.व.) की सच्चाई का एक निशान है और इस बात का भी निशान है कि ख़ुदा तआला अपने बन्दों को परोक्ष की सूचनाएं देता रहता है। यद्यपि मोमिनों को अधिक और अन्य लोगों को कम। हज़रत सफ़िया[रज़ि.] अभी यहूदी ही थीं कि उन्हें ख़ुदा तआला ने उन्हें इस उज्ज्वल परोक्ष की सूचना प्रदान की, जिसके अनुसार उनका पति समझौते की अवज्ञा करने के दण्ड में मारा गया और इसके बावजूद कि वह एक अन्य सहाबी की क़ैद में गई थीं, कुछ लोगों के आग्रह पर बाद में रसूले करीम (स.अ.व.) के निकाह में आईं और इस प्रकार वह परोक्ष के बारे में स्वप्न द्वारा दी गई सूचना पूरी हुई जो ख़ुदा तआला ने दी थी।

दूसरी उल्लेखनीय घटना यह है कि ख़ैबर की घेराबन्दी के दिनों में एक यहूदी सरदार का चरवाहा जो उसकी बकरियां चराया करता था मुसलमान हो गया। मुसलमान होने के पश्चात् उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं अब उन लोगों में तो जा नहीं सकता। ये उस यहूदी की

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह- जिल्द-3, पृष्ठ-50

बकरियां मेरे पास अमानत हैं। अब मैं क्या करूँ? आप[स.] ने फ़रमाया— बकरियों का मुख क़िले की ओर कर दो और उन्हें उसी ओर ढकेल दो, ख़ुदा तआला उन्हें उनके स्वामी के पास पहुँचा देगा। अतः उसने इसी प्रकार किया तथा बकरियां क़िले के पास पहुँच गईं। जहाँ से क़िले वालों ने उन्हें क़िले के अन्दर ले लिया①। इस घटना से विदित होता है कि रसूले करीम स.अ.व. अमानत की अदायगी के सिद्धान्त पर कितनी दृढ़ता के साथ कार्यरत थे और दूसरों को भी इस नियम के पालन करने की प्रेरणा देते थे। लड़ने वालों की सामग्री और माल युद्ध में आज भी वैध समझे जाते हैं। क्या ऐसी घटना वर्तमान युग में जो सभ्यता का युग समझा जाता है कभी हुई है कि शत्रु सेना के पशु हाथ आ गए हों तो उनके क़िले में वापस जाने के फलस्वरूप शत्रु के लिए महीनों की आजीविका का सामान हो जाता था जिस पर निर्भर रहकर वह एक लम्बी अवधि तक घेरा बन्दी को जारी रख सकता था। आप[स.] ने उन बकरियों को क़िले में वापस करवा दिया ताकि ऐसा न हो कि उस मुसलमान की ईमानदारी में कुछ अन्तर आए जिसके सुपुर्द बकरियां थीं।

तीसरी घटना यह कि एक यहूदी स्त्री ने सहाबा[रज़ि.] से पूछा कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को जानवर के किस भाग का गोश्त अधिक पसन्द है? सहाबा[रज़ि.] ने बताया आप[स.] को बकरी के अगले बाज़ू का गोश्त अधिक पसन्द है। इस पर उसने बकरा ज़िब्ह किया तथा पत्थरों पर उसके कबाब बनाए और फिर उस गोश्त में विष मिला दिया विशेषकर बाज़ुओं में जिसके संबंध में उसे बताया था कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) यहाँ का गोश्त अधिक पसन्द करते हैं।

सूर्य अस्त होने के पश्चात् जब रसूले करीम (स.अ.व.) सायंकाल की नमाज़ पढ़कर अपने डेरे की ओर आ रहे थे तो आपने देखा कि आप

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह-जिल्द-3, पृष्ठ-44

के तम्बू के पास एक स्त्री बैठी है। आप[स.] ने उस से पूछा— बीबी तुम्हारा क्या काम है? उसने कहा— हे अबू क़ासिम ! मैं आपके लिए एक भेंट लाई हूँ। आप[स.] ने किसी साथी सहाबी से फ़रमाया— यह स्त्री जो वस्तु देती है उस से ले लो। तत्पश्चात् आप खाने के लिए बैठे तो भोजन में वह भुना हुआ बाज़ू का गोश्त भी रखा गया। आप[स.] ने उसमें से एक ग्रास खाया तथा आप[स.] के एक सहाबी बशीर बिन अलबरा बिन अलमा'रूर ने भी एक ग्रास खाया इतने में अन्य सहाबा ने भी गोश्त खाने के लिए हाथ बढ़ाया तो आप[स.] ने फ़रमाया— न खाओ क्योंकि इस हाथ ने मुझे सूचना दी है कि गोश्त में विष मिला हुआ है (इस का अर्थ यह नहीं कि आपको इस बारे कोई इल्हाम हुआ था अपितु अरब का यह मुहावरा है और इसके अर्थ ये हैं कि इसका गोश्त चख कर मुझे ज्ञात हुआ है। अतः क़ुर्आन करीम में मूसा[अ.] के युग की घटना का वर्णन करते हुए एक दीवार के बारे में आता है कि वह गिरना चाहती है जिसका अर्थ मात्र यह है कि उसमें गिरने के लक्षण पैदा हो चुके थे। अतः यहां पर भी यह अभिप्राय नहीं कि आप ने फ़रमाया कि वह बकरी का बाज़ू बोला अपितु तात्पर्य यह है कि उसका गोश्त चखने पर मुझे ज्ञात हुआ है। अतः अगला वाक्य इन अर्थों को स्पष्ट कर देता है) इस पर बशीर ने कहा— कि जिस ख़ुदा ने आप को सम्मानित किया है, मैं उसकी सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि मुझे इस ग्रास में विष का आभास हुआ है। मेरा हृदय चाहता था कि मैं इसे फेंक दूँ परन्तु मैंने सोचा कि यदि मैंने ऐसा किया तो कदाचित आप[स.] की तबियत को बुरा लगे तथा आप का भोजन ख़राब हो जाए और फिर जब आपने ग्रास निगला तो मैंने भी आप के अनुसरण में वह ग्रास निगल लिया, यद्यपि मेरा हृदय कह रहा था कि चूंकि मुझे सन्देह है कि इसमें विष है, इसलिए काश रसूलुल्लाह (स.अ.व.) यह ग्रास न निगलें। इस के कुछ समय के बाद ही बशीर की तबियत ख़राब हो गई तथा कुछ का कथन यह है कि वहीं

ख़ैबर में उनका निधन हो गया तथा कुछ का कथन है कि वह कुछ समय तक बीमार रह कर परलोक सिधार गए। इस पर रसूले करीम (स.अ.व.) ने उसका कुछ गोश्त एक कुत्ते के आगे डलवा दिया जिसके खाने से वह मर गया। तब आप[स.] ने उस स्त्री को बुलाया और फ़रमाया— तुम ने इस बकरी के गोशत में विष मिलाया है? उसने कहा— आप को यह किसने बताया है। आप के हाथ में उस समय बकरी का वह भुना हुआ बाज़ू था आप ने कहा इस बाज़ू ने मुझे बताया है। इस पर वह स्त्री समझ गई कि आप पर यह भेद प्रकट हो गया है; उसने स्वीकार कर लिया कि उसने विष मिलाया है। इस पर आप[स.] ने उस से पूछा कि इस घृणित कृत्य पर तुम्हें किस बात ने प्रेरित किया? उसने उत्तर दिया कि मेरी जाति से आप का युद्ध हुआ था उस युद्ध में मेरे परिजन मारे गए थे। मेरे हृदय में यह विचार आया कि मैं इनको विष दे दूँ। यदि इन का कार्य मानव-निर्मित कार्य होगा तो हमें इन से मुक्ति मिल जाएगी और यदि यह यथार्थ में नबी होंगे तो ख़ुदा तआला इन्हें बचा लेगा। रसूले करीम (स.अ.व.) ने उसकी यह बात सुनकर उसे क्षमा कर दिया[①]। इस कृत्य का दण्ड निश्चित रूप से मृत्यु दण्ड था परन्तु आप[स.]ने क्षमा कर दिया। यह घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि रसूले करीम (स.अ.व.) किस प्रकार अपने मारने वालों और अपने मित्रों के मारने वालों को क्षमा कर दिया करते थे और वास्तव में आप[स.] दण्ड उसी समय दिया करते थे जब किसी व्यक्ति का जीवित रहना भविष्य में बहुत से उपद्रवों का कारण बन सकता था।

काबे का तवाफ़ (परिक्रमा)

हिजरत के सातवें वर्ष फरवरी 629 ई. में समझौते के अनुसार रसूले करीम (स.अ.व.) को तवाफ़ के लिए मक्का जाना था। अतः जब वह

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-61

समय आया तो रसूले करीम (स.अ.व.) दो हज़ार लोगों के साथ काबा के तवाफ़ के लिए निकल पड़े। जब आप 'मुरुज़्जुहरान' तक पहुँचे जो मक्का से कुछ दूरी पर है तो समझौते के अनुसार आप[स.] ने समस्त भारी शस्त्र और कवच वहाँ एकत्र कर दिए तथा स्वयं आप ने सहाबा[रज़ि.] के साथ समझौते के अनुसार केवल म्यान में बन्द तलवारों के साथ हरम[※] में प्रवेश किया। सात वर्ष के देश निष्कासन के पश्चात् प्रवासियों (मुहाजिरों) का मक्का में प्रवेश कोई साधारण बात नहीं थी उनके हृदय एक ओर उन लम्बे अत्याचारों को स्मरण करके, जो उन पर मक्का में किए जाते थे रक्त के आँसू बहा रहे थे और दूसरी ओर ख़ुदा तआला की उस कृपा को देखकर कि ख़ुदा तआला ने उन्हें पुनः काबा के तवाफ़ का अवसर प्रदान किया है। वे प्रसन्न भी हो रहे थे। मक्का के लोग मक्का से निकल कर पहाड़ की चोटियों पर खड़े हो कर मुसलमानों को देख रहे थे। मुसलमानों का हृदय चाहता था कि आज उन पर प्रकट कर दें कि ख़ुदा तआला ने उन्हें पुनः मक्का में प्रवेश करने की सामर्थ्य प्रदान की या नहीं। अतः अब्दुल्लाह बिन रवाहा[रज़ि.] ने इस अवसर पर वीररस-गीत गाने आरम्भ किए, परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) ने उन्हें रोक दिया और फ़रमाया— ऐसे गीत न गाओ अपितु यों कहो कि ख़ुदा के अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नहीं। वह ख़ुदा ही है जिस ने अपने रसूल की सहायता की तथा मोमिनों को अधमतापूर्ण जीवन से निकाल कर सम्मान प्रदान किया, केवल ख़ुदा ही है जिसने शत्रुओं को उनके सामने से भगा दिया। 'काबा' का तवाफ़ तथा 'सफ़ा' और मरवह की सई[✲] से निवृत्त हो कर आप सहाबा के साथ तीन दिन मक्का में ठहरे। हज़रत अब्बास[रज़ि.] की पत्नी की बहन मैमूना जो लम्बे समय से विधवा थीं मक्का में थीं। हज़रत अब्बा ने इच्छा प्रकट की

※-मक्का शहर की वह निर्धारित सीमा जिसमें किसी का वध करना निषिद्ध है। (अनुवादक)
✲-'सफ़ा' और 'मरवह' की दोनों पहाडियों के मध्य नियमानुसार दौड़ना। (अनुवादक)

कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) उस से विवाह कर लें। आप[स.] ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। चौथे दिन मक्का वालों ने मांग की कि आप समझौते के अनुसार मक्का से निकल जाएँ। आप[स.] ने उसी समय समस्त सहाबा को आदेश दिया कि तुरन्त मक्का छोड़ कर मदीना की ओर प्रस्थान करें। मक्का वालों की भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए नव-विवाहिता मैमूना को भी पीछे छोड़ दिया कि वह बाद में सामान की सवारियों के साथ आ जाएँ और स्वयं अपनी सवारी दौड़ा कर हरम की सीमा से बाहर निकल गए और वहीं पर सायंकाल आप की पत्नी मैमूना पहुँचा दी गईं। हज़रत मैमूना पहली रात वहीं जंगल में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हुईं।

मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के बहुविवाह पर आरोप का उत्तर

यह घटना ऐसी नहीं है कि उसका ऐसी संक्षिप्त जीवनी में वर्णन किया जाता जिस प्रकार का जीवन-चरित्र इस समय मैं लिख रहा हूँ परन्तु इस घटना का एक ऐसा पक्ष भी है जो मुझे विवश करता है कि इस साधारण घटना को यहाँ लिख दूँ और वह यह है कि आप[स.] पर आरोप लगाया जाता है कि उनकी कई पत्नियां थीं और आप[स.] का यह कृत्य (ख़ुदा की पनाह) भोग विलास पर आधारित था परन्तु जब हम आप के साथ आपकी पत्नियों का लगाव और प्रेम देखते हैं जो हमें स्वीकार करना पड़ता है कि आप का संबंध ऐसा पवित्र, नि:स्वार्थ तथा आध्यात्मिक था कि किसी एक पत्नीव्रत पुरुष का भी अपनी पत्नी से ऐसा नहीं होता। यदि रसूले करीम (स.अ.व.) का अपनी पत्नियों से संबंध भोग-विलास का होता तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होना चाहिए था कि आप[स.] की पत्नियों के हृदय किसी आध्यात्मिक भावना से प्रभावित न होते, परन्तु आपकी

पत्नियों के हृदय में आप का जो प्रेम था तथा आपका उन पर जो अच्छा प्रभाव पड़ा था वह ऐसी बहुत सी घटनाओं से प्रकट होता है कि आप के निधन के पश्चात् आपकी पत्नियों के संबंध में इतिहास से सिद्ध होता है। उदाहरणतया यही घटना कितनी साधारण थी कि मैमूना रसूले करीम (स.अ.व.) से पहली बार हरम से बाहर एक तम्बू में मिलीं। यदि उनसे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का संबंध कोई शारीरिक संबंध होता और यदि आप[स.] कुछ पत्नियों को कुछ अन्य पत्नियों पर प्रधानता देने वाले होते तो मैमूना[रज़ि.] इस घटना को अपने जीवन की कोई सुखद घटना न समझतीं अपितु प्रयास करतीं कि यह घटना उनके मस्तिष्क से विस्मृत हो जाए, परन्तु मैमूना[रज़ि.] मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के निधन के पश्चात् पचास वर्ष जीवित रहीं तथा अस्सी वर्ष की आयु में निधन हुआ परन्तु इस बरकत वाले संबंध को वह जीवन-पर्यन्त भुला न सकीं। अस्सी वर्ष की आयु में जब जवानी की भावनाएँ शान्त हो चुकी होती हैं रसूले करीम (स.अ.व.) के निधन के पचास वर्ष के पश्चात् जो अवधि एक पर्याप्त आयु कहलाने योग्य है मैमूना का निधन हुआ तथा उस समय उन्होंने अपने आस-पास के लोगों को वसीयत की कि जब मैं मर जाऊँ तो मक्का के बाहर एक कोस की दूरी पर उस स्थान पर जहां रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का तम्बू था और जहाँ पहली बार आप की सेवा में उपस्थित की गई थी मेरी क़ब्र बनाई जाए तथा उसमें मुझे दफ़्न किया जाए[1]। संसार में सच्ची अद्भुत घटनाएँ भी होती हैं और कपोल कल्पित गाथाएँ भी परन्तु सच्ची अद्भुत घटनाओं में से भी तथा कपोल कल्पित गथाओं में से भी क्या कोई घटना इस अगाध प्रेम से अधिक प्रभावशाली प्रस्तुत की जा सकती है?

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह, जिल्द-3, पृष्ठ-73

ख़ालिद बिन वलीद और उमर बिन अलआस का इस्लाम स्वीकार करना

काबा-दर्शन से वापसी के बाद शीघ्र ही इस्लाम में दो ऐसे व्यक्तियों ने प्रवेश किया जो इस्लामी युद्धों के आदि से लेकर इस समय तक काफ़िरों के महान सेनापतियों में से थे और जो इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात् इस्लाम के ऐसे प्रसिद्ध सेनापति सिद्ध हुए कि इस्लामी इतिहास उन लोगों का नाम विस्मृत नहीं कर सकता। अर्थात् ख़ालिद बिन वलीद जिन्होंने बाद में रोम की नींवे हिला दीं और अनन्य दोशों पर विजय प्राप्त करके इस्लामी शासन का अंग बना दिया। उमर बिन अलआस जिन्होंने मिस्त्र पर विजय प्राप्त करके उसे इस्लामी शासन में सम्मिलित कर दिया।

मौतः का युद्ध

जब आप काबा के दर्शन करने के उपरान्त मदीना आए तो आपको समाचार मिलने लगे कि शाम देश की सीमा पर अरब के ईसाई क़बीले यहूदियों और काफ़िरों के उकसाने पर मदीना पर आक्रमण की तैयारियां कर रहे हैं। अतः आप[स.] ने पन्द्रह लोगों का एक दल शाम की सीमा पर इस उद्देश्य से भिजवाया कि वे जांच-पड़ताल करें कि ये अफ़वाहें कहां तक सत्य हैं। जब ये लोग शाम की सीमा पर पहुँचे तो वहां देखा कि एक सेना संगठित हो रही है। इन लोगों का कर्त्तव्य था कि ये लोग वापस आकर रसूले करीम (स.अ.व.) को सूचना देते परन्तु प्रचार का जोश उस युग में मोमिन का वास्तविक लक्षण हुआ करता था उन की इस्लाम के प्रचार की भावना प्रबल हो गई और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ उन लोगों को इस्लाम की दा'वत देना आरम्भ कर दिया। जो लोग शत्रु के उकसाए

हुए मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के देश पर आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त करने के अभिलाषी थे, वे इन लोगों की एकेश्वरवादी शिक्षा से भला कहां प्रभावित होने वाले थे। इन लोगों ने उन्हें ज्यों ही इस्लामी शिक्षा सुनाने का आरम्भ किया, सिपाहियों ने चारों ओर से धनुष-बाण संभाल लिए और इन पर बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। जब मुसलमानों ने देखा कि हमारे प्रचार का उत्तर तर्क और प्रमाण प्रस्तुत करने के स्थान पर ये लोग तो तीर फेंक रहे हैं तो वे भागे नहीं तथा इस सैकड़ों-हज़ारों लोगों की भीड़ से उन्होंने अपने प्राण नहीं बचाए अपितु सच्चे मुसलमानों की भांति वे पन्द्रह लोग उन सैकड़ों सहस्रों लोगों के मुक़ाबले पर डट गए और सारे के सारे वहीं मर कर ढेर हो गए। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने चाहा कि एक और सेना भेजकर उन लोगों को दण्ड देने की कार्यवाही करें जिन्होंने ऐसी अत्याचारपूर्ण कार्यवाही की थी। इतने में आपको सूचना प्राप्त हुई कि शत्रु के लोग जो वहाँ एकत्र हो रहे थे तितर-बितर हो गए हैं। अतः आप[स.] ने कुछ समय के लिए इस इरादे को स्थगित कर दिया।

इसी मध्य रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने ग़स्सान क़बीले के सरदार को जो रूमी सरकार की ओर से बसरा का अधिकारी था या स्वयं रूम के क़ैसर को पत्र लिखा। कदाचित इस पत्र में उपरोक्त घटना की शिकायत होगी कि कुछ शाम के क़बीले इस्लामी क्षेत्र पर आक्रमण करने की तैयारियां कर रहे हैं तथा उन्होंने अकारण पन्द्रह मुसलमानों का वध कर दिया है। यह पत्र अलहरस नामक एक सहाबी के हाथ भिजवाया गया था। वह शाम की ओर जाते हुए मौतः नामक एक स्थान पर ठहरे, जहाँ ग़स्सान क़बीले का शरजील नामक सरदार जो क़ैसर के नियुक्त किए अधिकारियों में से था उन्हें मिला। उसने इनसे पूछा कि तुम कहां जा रहे हो? कदाचित तुम मुहम्मद रसूलुल्लाह के संदेशवाहक हो? इन्होंने कहा— हाँ ! इस पर उसने इन्हें गिरफ़्तार कर लिया तथा रस्सियों से बांध कर पीट-पीट

कर उन्हें मार डाला। यद्यपि इतिहास में इसका विवरण नहीं मिलता परन्तु यह घटना प्रकाश डालती है कि जिस सेना ने इस से पूर्व पन्द्रह सहाबियों का वध किया था यह व्यक्ति उस सेना के लीडरों में से होगा। अतः उस का यह प्रश्न करना कि कदाचित तुम मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के सन्देशवाहकों में से हो इस ओर संकेत करता है कि उसे भय था कि मुहम्मद रसूलुल्लाह क़ैसर के पास शिकायत करेंगे कि तुम्हारे प्रदेश के लोग हमारे प्रदेश के लोगों पर आक्रमण करते हैं और वह भयभीत होगा कि कदाचित बादशाह इसके कारण हम से पूछ-ताछ न करे। अतः उसने अपना हित इसी में समझा कि संदेशवाहक का वध कर दे ताकि न सन्देश पहुँचे और न कोई छान-बीन हो परन्तु अल्लाह तआला ने इन के बुरे इरादों को पूर्ण न होने दिया। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को हरस के मारे जाने की सूचना किसी न किसी प्रकार पहुँच ही गई। आप[स.] ने उस पूर्व घटना तथा इस घटना का दण्ड देने के लिए तीन हज़ार की सेना तैयार करके ज़ैद बिन हारिस (जो आप[स.] के आज़ाद किए हुए दास थे जिनका आपके मक्का के जीवन में वर्णन आ चुका है) के नेतृत्व में शाम की ओर भिजवाया और आदेश दिया कि ज़ैद बिन हारिस सेना के सेनापति होंगे, यदि वह मारे गए तो जा'फ़र बिन अबी तालिब[रज़ि.] सेनापति होंगे और यदि वह मारे गए तो अब्दुल्लाह बिन रवाहा[रज़ि.] सेनापति होंगे और यदि वह भी मारे जाएँ तो मुसलमान अपने में से किसी का चयन करके अपना अफ़सर बना लें। उस समय आप की सभा में एक यहूदी बैठा हुआ था। उसने कहा— हे अबूक़ासिम ! यदि आप सच्चे हैं तो ये तीनों व्यक्ति अवश्य मारे जाएंगे क्योंकि अल्लाह तआला अपने नबियों के मुख से निकली हुई बातों को पूरा कर दिया करता है। फिर वह ज़ैद की ओर सम्बोधित हुआ और कहा— मैं तुम से सच-सच कहता हूँ यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ख़ुदा के सच्चे नबी हैं तो तुम कभी जीवित वापस नहीं आओगे। ज़ैद ने

उत्तर में कहा— मैं वापस आऊँ या न आऊँ परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ख़ुदा के सच्चे नबी हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल इस सेना ने कूच किया और रसूले करीम (स.अ.व.) तथा सहाबा उसे छोड़ने के लिए गए। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के जीवन में आप के नेतृत्व के बिना इतनी विशाल सेना किसी मुसलमान सेनापति के अधीन किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए नहीं गई। रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम इस सेना के साथ चलते जाते थे और उन्हें नसीहतें करते जाते थे। अन्ततः मदीना के बाहर उस स्थान पर जा कर जहाँ से आप ने मदीना में प्रवेश किया था और जिस स्थान पर सामान्यतया मदीने के लोग अपने यात्रियों को विदाई दिया करते थे आप[स.] खड़े हो गए और कहा— मैं तुम्हें अल्लाह के संयम की नसीहत करता हूँ और तुम्हारे साथ जितने मुसलमान हैं उन से सद्व्यवहार करने की। तुम अल्लाह का नाम लेकर युद्ध पर जाओ तथा तुम्हारे और ख़ुदा के शत्रु जो शाम में हैं उन से युद्ध करो। जब तुम शाम में पहुँचोगे तो तुम्हें वहां ऐसे लोग मिलेंगे जो उपासना स्थलों में बैठ कर ख़ुदा का नाम लेते हैं तुम उन से किसी प्रकार का झगड़ा न करना और न उन्हें कष्ट पहुँचाना, और न शत्रु के देश में किसी स्त्री को मारना, और न किसी अन्धे को मारना, और न किसी वृद्ध को मारना, न कोई वृक्ष काटना, न कोई इमारत गिराना। रसूले करीम (स.अ.व.) ये उपदेश देकर वहां से वापस लौटे तथा इस्लामी सेना शाम की ओर कूच कर गई। यह पहली सेना थी जो इस्लाम की ओर से ईसाइयत के मुकाबले के लिए निकली। जब यह सेना शाम की सीमा पर पहुँची तो उसे ज्ञात हुआ कि कैसर भी उस ओर आया हुआ है और एक लाख रूमी सेना उसके साथ है तथा एक लाख के लगभग अरब के ईसाई क़बीलों के सिपाही भी उसके साथ हैं। इस पर मुसलमानों ने चाहा कि वे मार्ग में डेरा डाल दें और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को सूचित करें ताकि यदि आप[स.] ने कोई अतिरिक्त सहायता भेजनी हो तो भेज दें और यदि

कोई आदेश देना हो तो उस से सूचित करें। जब यह विचार-विमर्श चल रहा था कि अब्दुल्लाह बिन रवाहा[रज़ि.] जोश से खड़े हो गए और कहा— हे लोगो ! तुम अपने घरों से ख़ुदा के मार्ग में शहीद होने के लिए निकले थे और जिस कार्य के लिए तुम निकले थे अब तुम उस से घबरा रहे हो और हम, लोगों से अपनी संख्या अपनी शक्ति, के कारण तो युद्ध नहीं करते रहे। हम तो उस धर्म की सहायता के लिए शत्रुओं का सामना करते रहे हैं जिसे ख़ुदा तआला ने अपनी कृपा से हमारे लिए उतारा है। यदि शत्रु संख्या में अधिक है तो हुआ करे। हमें दो शुभ कर्मों से एक अवश्य प्राप्त होगा। या तो हम विजयी होंगे या हम ख़ुदा के मार्ग में शहीद हो जाएँगे। लोगों ने उनकी यह बात सुन कर कहा— इब्ने रवाहा[रज़ि.] बिल्कुल सच कहते हैं और तुरन्त कूच करने का आदेश दे दिया गया। जब वे आगे बढ़े तो रूमी सेना उन्हें अपनी ओर बढ़ती हुई दिखाई दी तो मुसलमानों ने मौतः के स्थान पर अपनी सेना को पंक्तिबद्ध कर लिया और युद्ध आरम्भ हुआ। थोड़ी ही देर में ज़ैद बिन हारिसा जो मुसलमानों के सेनापति थे मारे गए। तब इस्लामी सेना का झण्डा जा'फ़र बिन अबी तालिब रसूल करीम (स.अ.व.) के चचेरे भाई ने अपने हाथ में ले लिया और सेना का नेतृत्व संभाल लिया और जब उन्होंने देखा कि शत्रु की सेना का दबाव बढ़ता चला जाता है और मुसलमान अपनी सेना की संख्या की कमी के कारण उनके दबाव को सहन नहीं कर सकते तो आप जोश से घोड़े से कूद पड़े और अपने घोड़े की टांगे काट दीं जिसका अर्थ यह था कि कम से कम मैं तो इस रणभूमि से भागने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं मृत्यु को पसन्द करूँगा परन्तु मैदान छोड़ने को पसन्द नहीं करूँगा। यह एक अरब की प्रथा थी कि वे घोड़े की टांगे इसलिए काट देते थे ताकि वे बिना सवार के इधर-उधर भाग कर सेना में तबाही न मचाए। थोड़ी देर की लड़ाई में आप का दायां बाज़ू कट गया, तब आप ने बाएं हाथ में झण्डा पकड़ लिया। फिर आप

का बायां हाथ भी काटा गया तो आपने दोनों हाथों के टुण्डों से झण्डे को अपने सीने से लगा लिया और रणभूमि में खड़े रहे, यहाँ तक कि आप शहीद हो गए तब अब्दुल्लाह बिन रवाहा ने रसूले करीम (स.अ.व.) के आदेश के अनुसार झण्डे को पकड़ लिया तथा वह भी शत्रु से लड़ते-लड़ते मारे गए। उस समय मुसलमानों के लिए कोई अवसर न था कि वे विचार-विमर्श करके किसी को अपना सरदार नियुक्त करते। निकट था कि शत्रु की अधिकता के कारण मुसलमान मैदान छोड़ जाते कि ख़ालिद बिन वलीद ने एक मित्र की प्रेरणा पर झण्डा पकड़ लिया और सायंकाल तक शत्रु का मुकाबला करते रहे।

दूसरे दिन फिर ख़ालिद अपनी थकी हुई सेना को लेकर शत्रु का सामना करने के लिए निकले तथा उन्होंने यह होशियारी की कि सेना के अगले भाग को पीछे कर दिया और पिछले भाग को आगे कर दिया तथा दाएँ को बाएँ तथा बाएँ को दाएँ और इस प्रकार जयघोष लगाए कि शत्रु समझा कि मुसलमानों को अतिरिक्त सहायता पहुँच गई है। इस पर शत्रु पीछे हट गया और ख़ालिद इस्लामी सेना को बचा कर वापस ले आए[①]।

अल्लाह तआला ने रसूले करीम (स.अ.व.) को इस घटना से वह्यी (ईशवाणी) के द्वारा उसी दिन अवगत कर दिया और आप[स.] ने घोषणा करके सब मुसलमानों को मस्जिद में एकत्र किया। जब आप मंच पर चढ़े तो आप[स.] की आखों से आँसू बह रहे थे। आप ने फ़रमाया — हे लोगो ! मैं तुम्हें उस युद्ध पर जाने वाली सेना के बारे में सूचना देता हूँ। वह सेना यहाँ से जा कर शत्रु के सामने खड़ी हुई। युद्ध आरम्भ होते ही पहले ज़ैद शहीद हो गए। अतः तुम लोग ज़ैद[रज़ि] के लिए दुआ करो। फिर झण्डा ज़ा'फ़र[रज़ि] ने ले लिया और शत्रु पर आक्रमण किया, यहां तक कि वह भी शहीद हो गए। अतः तुम उनके लिए भी दुआ करो, फिर झण्डा अब्दुल्लाह बिन

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह, जिल्द-3 पृष्ठ-75

रवाहा ने लिया और बड़ी निर्भीकता के साथ सेना को लड़ाया परन्तु अन्त में वह भी शहीद हो गए। अतः तुम उनके लिए भी दुआ करो। फिर झण्डा ख़ालिद बिन वलीद ने लिया। उसे मैंने सेनापति नियुक्त नहीं किया था परन्तु उसने स्वयं ही स्वयं को सेनापति नियुक्त कर लिया परन्तु वह ख़ुदा की तलवारों में से एक तलवार है। अतः वह ख़ुदा तआला की सहायाता से इस्लामी सेना को सुरक्षित वापस ले आया। आप के इस भाषण के कारण ख़ालिद[रज़ि.] का नाम मुसलमानों में 'सैफ़ुल्लाह' अर्थात् ख़ुदा की तलवार प्रसिद्ध हो गया। चूंकि ख़ालिद[रज़ि.] बुहत बाद में ईमान लाए थे। कुछ सहाबा को मनोविनोद के तौर पर या किसी झगड़े के अवसर पर कटाक्ष कर दिया करते थे। एक बार किसी ऐसी ही बात पर हज़रत अबदुर्रहमान बिन औफ़[रज़ि.] से उनका विवाद हो गया, उन्होंने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से ख़ालिद[रज़ि.] की शिकायत की। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— ख़ालिद ! तुम इस व्यक्ति को जो कि बदर युद्ध के समय से इस्लाम की सेवा कर रहा है क्यों दुःख देते हो। यदि तुम उहद पर्वत के भार के बराबर सोना व्यय करो तो ख़ुदा तआला से इसके बराबर इनाम प्राप्त नहीं कर सकते। इस पर ख़ालिद[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह मुझ पर कटाक्ष करते हैं तो फिर मैं भी उत्तर दे देता हूँ। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— तुम लोग ख़ालिद[रज़ि.] को कष्ट न दिया करो, यह अल्लाह तआला की तलवारों में से एक तलवार है जो ख़ुदा तआला ने काफ़िरों का विनाश करने के लिए खींची है।[1]

यह भविष्यवाणी कुछ ही वर्षों के पश्चात् अक्षरशः पूरी हुई। जब ख़ालिद[रज़ि.] अपनी सेना को वापस लाए तो मदीने के सहाबा[रज़ि.] जो साथ नहीं गए थे उन्होंने इस सेना के सैनिकों को भगोड़े कहना आरम्भ किया। अभिप्राय यह था कि तुम्हें वहीं लड़ कर मर जाना चाहिए था, वापस नहीं

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2, पृष्ठ-77

आना चाहिए परन्तु रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— ये भगोड़े नहीं, शत्रु पर बार-बार लौट कर आक्रमण करने वाले सैनिक हैं। इस प्रकार आप[स.] ने उन भावी युद्धों की भविष्यवाणी की जो मुसलमानों को शाम देश के साथ सामने आने वाले थे।

मक्का-विजय

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) रमज़ान सन् 8 हिज्री मुताबिक दिसम्बर 629 ई. को इस अन्तिम युद्ध के लिए रवाना हुए जिस ने अरब में इस्लाम की स्थापना कर दी। यह घटना इस प्रकार हुई कि हुदैबिया की संधि के अवसर पर यह निर्णय हुआ था कि अरब क़बीलों में से जो चाहें मक्का वालों से मिल जाएँ और जो चाहें मुहम्मद (रसूलुल्लाह (स.अ.व.)) के साथ मिल जाएँ। द्वितीय— दस वर्ष तक दोनों पक्षों को एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध की अनुमति नहीं होगी सिवाए इसके कि एक पक्ष दूसरे पर आक्रमण करके समझौता भंग कर दे। इस समझौते के अन्तर्गत अरब का बनू बिक्र क़बीला मक्का वालों के साथ मिला था और ख़ुज़ाआ क़बीला मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथ। अरब के काफ़िर समझौते की पाबन्दी का कम ही ध्यान रखते थे विशेषकर मुसलमानों के मुकाबले में। जैसा कि बनू बिक्र का बनू ख़ुज़ाआ से पुराना झगड़ा था। हुदैबिया संधि पर कुछ समय बीत जाने के पश्चात् उन्होंने मक्का वालों से विचार विमर्श किया कि ख़ुज़ाआ तो समझौते के कारण बिल्कुल सन्तुष्ट हैं। अब अवसर है कि हम लोग उन से बदला लें। अतः मक्का के क़ुरैश और बनू बिक्र ने मिलकर रात के समय बनू ख़ुज़ाआ पर छापा मारा और उनके बहुत से लोग मार दिए। जब ख़ुज़ाआ को ज्ञात हुआ कि क़ुरैश ने बनू बिक्र से मिलकर यह आक्रमण किया है तो उन्होंने इस समझौते को तोड़ने की सूचना देने के लिए चालीस लोग तीव्रगामी ऊँटनियों पर तुरन्त

मदीना रवाना किए तथा रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से मांग की कि परस्पर समझौते की दृष्टि से अब आप का कर्त्तव्य है कि हमारा बदला लें और मक्का पर चढ़ाई करें। जब यह दल आप[स.] के पास पहुँचा तो आप[स.] ने फ़रमाया— तुम्हारा दुःख मेरा दुःख है। मैं अपने समझौते पर दृढ़ संकल्प हूँ। यह जो बादल सामने बरस रहा है (उस समय वर्षा हो रही थी) जिस प्रकार इसमें से वर्षा हो रही है इसी प्रकार शीघ्र ही तुम्हारी सहायता के लिए इस्लामी सेनाएं पहुँच जाएँगी। जब मक्का वालों को इस दल का ज्ञान हुआ तो वे बहुत घबराए और उन्होंने अबू सुफ़यान को मदीना भेजा ताकि वह किसी प्रकार मुसलमानों को आक्रमण से रोके। अबू सुफ़यान ने मदीना पहुँच कर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर ज़ोर देना आरम्भ किया कि चूंकि हुदैबिया की संधि के समय मैं उपस्थित न था, इसलिए नए सिरे से समझौता किया जाए परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) ने इस बात का कोई उत्तर न दिया क्योंकि उत्तर देने से भेद प्रकट हो जाता था। अबू सुफ़यान ने निराश हो कर घबराहट में मस्जिद में ख़ड़े हो कर घोषणा की। हे लोगो ! मैं मक्का वालों की ओर से नए सिरे से अमन की घोषणा करता हूँ। यह बात सुनकर मुसलमान उसकी मूर्खता पर हँस पड़े तथा रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— अबू सुफ़यान ! यह बात तुम एक पक्षीय कह रहे हो, हम ने तुम से ऐसा कोई समझौता नहीं किया।

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने इसी मध्य चारों ओर के मुसलमान क़बीलों की ओर संदेशवाहक भेज दिए। जब ये सूचनाएँ आ गईं कि मुसलमान क़बीले एकत्र हो चुके हैं तथा मक्का की ओर जाते हुए मार्ग में मिलते जाएँगे तो आप[स.] ने मदीना के लोगों को सशस्त्र होने का आदेश दिया।

प्रथम जनवरी 630 ई. को इस सेना ने मदीना से कूच किया तथा मार्ग में चारों ओर से मुसलमान क़बीले आ आ कर सेना में सम्मिलित होते गए। कुछ ही कोस जाने के पश्चात् जब इस सेना ने फारान के जंगल में प्रवेश

किया तो उसकी संख्या सुलैमान[अ.] नबी की भविष्यवाणी के अनुसार दस हज़ार तक पहुँच चुकी थी। इधर यह सेना मक्का की ओर मार्च करती चली जा रही थी उधर मक्का वाले इस ख़ामोशी के कारण जो वातावरण पर व्याप्त थी अधिकाधिक भयभीत होते जाते थे। अन्त में उन्होंने विचार-विमर्श करके अबू सुफ़यान को पुनः इस बात पर तैयार किया कि वह मक्का से बाहर निकल कर मालूम तो करे कि मुसलमान क्या करना चाहते हैं। मक्का से एक कोस बाहर निकलने पर ही अबू सुफ़यान ने रात के समय जंगल को आग से प्रकाशित पाया। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने आदेश दे दिया था कि समस्त तम्बुओं के सामने आग जलाई जाए। जंगल में दस हज़ार लोगों के लिए तम्बुओं के आगे भड़कती हुई आग एक भयानक दृश्य प्रदर्शित कर रही थी। अबू सुफ़यान ने अपने साथियों से पूछा— यह क्या है? क्या आकाश से कोई सेना उतरी है; क्योंकि अरब की किसी जाति की सेना इतनी विशाल नहीं है। उसके साथियों ने भिन्न-भिन्न क़बीलों के नाम लिए, परन्तु उसने कहा- नहीं-नहीं। अरब के क़बीलों में से किसी की भी सेना इतनी विशाल कहाँ हो सकती है। वह यह बात कर ही रहा था कि अन्धकार में से आवाज़ आई— अबू हन्ज़ला ! (यह अबू सुफ़यान का उपनाम था) अबू सुफ़यान ने कहा— अब्बास तुम यहां कहाँ? उन्होंने उत्तर दिया- मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सेना सामने डेरा डाले हुए है और यदि तुम लोगों ने शीघ्र कोई उपाय नहीं किया तो पराजय और अपमान तुम्हारे लिए बिलकुल निश्चित है। चूंकि अब्बास अबू सुफ़यान के पुराने मित्र थे, इसलिए यह बात करने के बाद उन्होंने अबू सुफ़यान से आग्रह किया कि वह उनके साथ सवारी पर बैठ जाए और रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हो। अतः उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर अपने साथ बैठा लिया और ऊँट को एड़ लगा कर रसूले करीम (स.अ.व.) की सभा में जा पहुँचे। हज़रत अब्बास को भय

था कि हज़रत उमर[रज़ि.] जो उन के साथ पहरे पर नियुक्त थे कहीं उसका वध न कर दें परन्तु आप[स.] पहले से ही आदेश दे चुके थे कि यदि अबू सुफ़यान तुम में से किसी को मिल जाए तो उसका वध न करना। यह सारा दृश्य अबूसुफ़यान के हृदय में एक महान् परिवर्तन को जन्म दे चुका था। अबू सुफ़यान ने देखा कि कुछ ही वर्ष पूर्व हम ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को केवल एक साथी के साथ मक्का से निकलने पर विवश कर दिया था परन्तु अभी सात वर्ष ही गुज़रे हैं कि वह दस हज़ार कुद्दूसियों के साथ मक्का पर बिना अत्याचार और बिना जब्र वैध तौर पर आक्रमणकारी हुआ है और मक्का वालों की शक्ति नहीं कि उसे रोक सकें। अतः मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सभा तक पहुँचते-पहुँचते कुछ इन विचारों के कारण और कुछ भय और डर के कारण अबू सुफ़यान कुछ स्तब्ध सा हो चुका था रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने उस की यह दशा देखी तो हज़रत अब्बास[रज़ि.] से फ़रमाया— कि अबू सुफ़यान को अपने साथ ले जाओ और रात को अपने पास रखो। प्रातः इसे मेरे पास लाना। अतः अबू सुफ़यान रात को हज़रत अब्बास के साथ रहा। जब प्रातः उसे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास लाए तो फ़ज्र की नमाज़ का समय था। मक्का के लोग प्रातः उठ कर नमाज़ पढ़ने को क्या जानते थे, उसने इधर-उधर मुसलमानों को पानी से भरे हुए लोटे लेकर आते -जाते देखा और उसे दिखाई दिया कि कोई वुज़ू कर रहा है, कोई नमाज़ के लिए एकत्र हो रहे लोगों को पंक्तिबद्ध कर रहा है तो अबू सुफ़यान ने समझा कि कदाचित मेरे लिए कोई नए प्रकार का दण्ड प्रस्तावित हुआ है। अतः उसने घबराकर हज़रत अब्बास से पूछा कि ये लोग इतनी सुबह यह क्या कर रहे हैं? हज़रत अब्बास ने कहा— तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं। ये लोग नमाज़ पढ़ने लगे हैं। तत्पश्चात अबू सुफ़यान ने देखा कि हज़ारों लोग महुम्मद रसूलुल्लाह के पीछे खड़े हो गए हैं और आप जब रुकू करते हैं तो सब

के सब रकू करते हैं और जब आप सज्दह करते हैं तो सब के सब सज्दह करते हैं। हज़रत अब्बास चूंकि पहरे पर होने कारण नमाज़ में सम्मिलित नहीं हुए थे। अबू सुफ़यान ने उस से पूछा— अब ये क्या कर रहे हैं? मैं देखता हूँ कि जो कुछ मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) करते हैं वही ये लोग भी करने लग जाते हैं। अब्बास[रज़ि.] ने कहा— तुम किन विचारों में पड़े हो; यह तो नमाज़ पढ़ी जा रही है परन्तु यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इन को आदेश दें कि खाना-पीना छोड़ दो तो ये लोग खाना-पीना भी छोड़ दें। अबू सुफ़यान ने कहा— मैंने किस्रा बादशाह का दरबार भी देखा है और क़ैसर का दरबार भी देखा है परन्तु उनके लोगों को उनका इतना आसक्त नहीं देखा जितना मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) का समुदाय उसका आसक्त है। अब अब्बास[रज़ि.] ने कहा— क्या यह नहीं हो सकता कि तुम मुहम्मद (रसूलुल्लाह स.अ.व.) से स्वयं यह निवेदन करो कि आप[स.] अपनी क़ौम से क्षमा का व्यवहार करें। जब नमाज़ समाप्त हो चुकी तो हज़रत अब्बास अबू सुफ़यान को लेकर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हुए। आप[स.] ने फ़रमाया— अबू सुफ़यान ! क्या अभी समय नहीं आया कि तुम पर यह वास्तविकता प्रकट हो जाए कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई अन्य उपास्य नहीं ? अबू सुफ़यान ने कहा— मेरे माता-पिता आप पर न्योछावर हों, आप नितान्त सुशील,नितान्त सभ्य और परिजनों के साथ दया-व्यवहार करने वाले व्यक्ति हैं। मैं अब यह बात तो समझ चुका हूँ कि यदि ख़ुदा के अतिरिक्त कोई अन्य उपास्य होता तो हमारी कुछ तो सहायता करता। तत्पश्चात् रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— हे अबू सुफ़यान ! क्या अभी समय नहीं आया कि तुम समझ सको कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ? अबू सुफ़यान ने कहा— मेरे माता-पिता आप पर बलिहारी, इस बारे में अभी मेरे हृदय में कुछ संदेह हैं परन्तु अबू सुफ़यान की दुविधा के बावजूद उसके दोनों साथी जो उसके साथ ही

मक्का से बाहर मुसलमानों की सेना की सूचना लेने के लिए आए हुए थे, जिनमें से एक हकीम बिन हिज़ाम थे वे मुसलमान हो गए। तत्पश्चात् अबू सुफ़यान ने भी इस्लाम स्वीकार कर लिया परन्तु उसका हृदय कदाचित मक्का-विजय के पश्चात् पूरी तरह सन्तुष्ट हुआ। ईमान लाने के बाद हकीम बिन हिज़ाम ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या यह सेना आप अपनी जाति के विनाश के लिए ले आए हैं? रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— इन लोगों ने अत्याचार किया, इन लोगों ने पाप किया और तुम लोगों ने हुदैबिया में किए हुए समझौते को भंग किया तथा ख़ुज़ाआ के विरुद्ध अत्याचारपूर्ण युद्ध किया उस पवित्र स्थान पर युद्ध किया जिसे ख़ुदा ने अमन प्रदान किया हुआ था। हकीम ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! बिल्कुल सत्य है। आप की क़ौम ने निःसंदेह ऐसा ही किया है परन्तु आप को चाहिए था कि मक्का पर आक्रमण करने की बजाए हवाज़न पर आक्रमण करते। आपस॰ ने फ़रमाया— वह क़ौम भी अत्याचारी है परन्तु मैं ख़ुदा तआला से आशा करता हूँ कि वह मक्का पर विजय और हवाज़न की पराजय ये सारी बातें मेरे ही हाथ पर पूरी करेगा। इस के बाद अबू सुफ़यान ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यदि मक्का के लोग तलवार न उठाएँ तो क्या वे अमन में होंगे? आपस॰ ने फ़रमाया— हाँ ! ☆- प्रत्येक व्यक्ति जो अपने घर का द्वार बन्द कर ले उसे अमन दिया जाएगा। हज़रत अब्बासरज़ि॰ ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! अबू सुफ़यान अभिमानी व्यक्ति है। इसका उद्देश्य यह है कि मेरे सम्मान का भी कुछ ध्यान रखा जाए। आपस॰ ने फ़रमाया— बहुत उचित। ☆- जो व्यक्ति अबू सुफ़यान के घर में चला जाए उसे भी अमन दिया जाएगा। ☆- जो व्यक्ति हकीम बिन हिज़ाम के घर में चला जाए उसे भी अमन दिया जाएगा ☆- जो व्यक्ति काबा की मस्जिद में प्रवेश कर जाए उसे भी अमन दिया जाएगा। ☆- जो व्यक्ति अपना द्वारा बन्द करके बैठ रहे उसे भी अमन दिया

जाएगा। ✰- जो व्यक्ति अपने शस्त्र फेंक दे उसे भी अमन दिया जाएगा। इसके पश्चात् अबू रवीहा (RAVEEHA)[रज़ि.] जिनको आप[स.] ने बिलाल हबशी का भाई बनाया हुआ था उस के बारे में आप[स.] ने फ़रमाया — हम इस समय अबू रवीहा[रज़ि.] को अपना झण्डा देते हैं। ✰- जो व्यक्ति अबू रवीहा के झण्डे के नीचे खड़ा होगा उसे भी अमन दिया जाएग। बिलाल[रज़ि.] को कहा तुम साथ-साथ यह घोषणा करते जाओ कि जो व्यक्ति अबू रवीहा के झण्डे के नीचे आ जाएगा उसे अमन दिया जाएगा[1]। इस आदेश में एक महत्त्वपूर्ण रहस्य निहित था। मक्का के लोग बिलाल[रज़ि.] के पैरों में रस्सी डाल कर उसे गलियों में खींचा करते थे, मक्का की गलियां, मक्का के मैदान बिलाल[रज़ि.] के लिए अमन का स्थान नहीं थे अपितु प्रताड़ना, अपमान और उपहास के स्थान थे। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने सोचा कि आज बिलाल[रज़ि.] का हृदय बार-बार प्रतिशोध की ओर जाता होगा। इस वफ़ादार साथी का प्रतिशोध लेना भी नितान्त आवश्यक है परन्तु यह भी आवश्यक है कि हमारा प्रतिशोध इस्लाम की प्रतिष्ठा के अनुकूल हो। अतः आप[स.] ने बिलाल[रज़ि.] का प्रतिशोध इस प्रकार न लिया कि तलवार द्वारा उसके शत्रुओं की गर्दनें काट दी जाएँ अपितु उसके भाई के हाथ में एक बड़ा झण्डा देकर उसे खड़ा कर दिया और बिलाल[रज़ि.] को इस उद्देश्य के लिए नियुक्त कर दिया कि वह घोषणा कर दे कि जो कोई मेरे भाई के झण्डे के नीचे आ खड़ा होगा उसे अमन दिया जाएगा। कितना शानदार प्रतिशोध था, कैसा सुन्दर प्रतिशोध था जब बिलाल[रज़ि.] उच्च स्वर में यह घोषणा करता होगा कि हे मक्का वालो ! आओ मेरे भाई के झण्डे के नीचे खड़े हो जाओ तुम्हें अमन दिया जाएगा तो उसका हृदय स्वयं ही प्रतिशोध की भावनाओं से खाली होता जाता होगा और उसने महसूस कर लिया होगा कि जो प्रतिशोध मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मेरे लिए प्रस्तावित

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-91

किया है उस से अधिक शानदार और उससे अधिक सुन्दर प्रतिशोध मेरे लिए और कोई नहीं हो सकता। जब सेना मक्का की ओर अग्रसर हुई तो रसूले करीम (स.अ.व.) ने हज़रत अब्बास[रज़ि.] को आदेश दिया कि किसी सड़क के कोने पर अबू सुफ़ियान और उसके साथियों को लेकर खड़े हो जाओ ताकि वह इस्लामी सेना और उसकी वफ़ादारी को देख सकें। हज़रत अब्बास[रज़ि.] ने ऐसा ही किया। अबू सुफ़यान और उसके साथियों के सामने से एक-एक करके अरब के वे क़बीले गुज़रने आरम्भ हुए जिनकी सहायता पर मक्का भरोसा कर रहा था परन्तु वे आज कुफ्र का झण्डा नहीं लहरा रहे थे आज वे इस्लाम का झण्डा लहरा रहे थे तथा उन के मुख पर सर्व शक्ति सम्पन्न ख़ुदा के एकेश्वरवाद की घोषणा थी वे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के प्राण लेने के लिए आगे नहीं बढ़ रहे थे जैसा कि मक्का वाले आशान्वित थे अपितु वे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के लिए अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक बहाने के लिए तत्पर थे तथा उनकी सर्वाधिक इच्छा यही थी कि एक ख़ुदा का एकेश्वरवाद तथा उसके प्रचार को संसार में स्थापित कर दें। सेना के बाद सेना गुज़र रही थी कि इतने में अश्जअ क़बीले की सेना गुज़री। इस्लाम के प्रेम तथा उसके लिए बलिदान हो जाने का जोश उनके चेहरों से प्रकट और उनके उद्घोषों से स्पष्ट था। अबू सुफ़यान ने कहा— अब्बास ये कौन हैं? अब्बास ने कहा— यह अश्जअ क़बीला है। अबू सुफ़यान ने बड़े आश्चर्य से अब्बास[रज़ि.] का मुख देखा और कहा— सारे अरब में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का इनसे अधिक कोई शत्रु नहीं था। अब्बास[रज़ि.] ने कहा— यह ख़ुदा की कृपा है, जब उसने चाहा उनके हृदयों में इस्लाम का प्रेम प्रवेश कर गया। सब से अन्त में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मुहाजिरों और अन्सार (मदीना वाले) की सेना लिए हुए गुज़रे। ये लोग दो हज़ार की संख्या में थे और सर से पैर तक कवचों आदि में छुपे हुए थे । हज़रत

उमर[रज़ि.] उन की पंक्तियों को ठीक करते जाते थे तथा कहते जाते थे कदमों को संभाल कर चलो ताकि पंक्तियों की दूरी ठीक रहे। इन इस्लाम के पुराने प्राणपण लोगों का जोश तथा उन का संकल्प तथा उनका उत्साह उनके चेहरों से टपका पड़ता था। अबू सुफ़यान ने जब उन्हें देखा तो उस का हृदय दहल गया। उसने पूछा अब्बास ये कौन लोग हैं? उन्होंने कहा— रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अन्सार (मदीना वासी) और मुहाजिरों (मक्का के प्रवासी) की सेना में जा रहे हैं। अबू सुफ़यान ने कहा— संसार में इस सेना का सामना करने की किस में शक्ति है। फिर वह पुनः अब्बास से सम्बोधित होते हुए बोला— अब्बास ! तुम्हारे भाई का बेटा आज संसार में सब से बड़ा बादशाह हो गया है। अब्बास[रज़ि.] ने कहा— क्या अब भी तेरे हृदय के नेत्र नहीं खुले। यह बादशाहत नहीं यह तो नुबुव्वत है। अबू सुफ़यान ने कहा— हाँ-हाँ नुबुव्वत ही सही। जिस समय यह सेना अबू सुफ़यान के सामने से गुज़र रही थी, अन्सार के सेनापति सअद बिन उबादा[रज़ि.] ने अबू सुफ़यान को देखकर कहा— आज ख़ुदा तआला ने हमारे लिए मक्का में प्रवेश करना तलवार के बल पर वैध कर दिया है। आज क़ुरैश जाति अपमानित कर दी जाएगी। जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अबू सुफ़यान के पास से गुज़रे तो उसने उच्च स्वर में कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या आप[स.] ने अपनी जाति के वध की आज्ञा दे दी है। अभी-अभी अन्सार के सरदार सअद[रज़ि.] और उनके साथी ऐसा-ऐसा कह रहे थे। उन्होंने ऊँचे स्वर में यह कहा है— आज युद्ध होगा तथा मक्का की पवित्रता आज हमें युद्ध से नहीं रोक सकेगी और क़ुरैश को हम अपमानित करके छोड़ेंगे। हे अल्लाह के रसूल ! आप तो संसार में सर्वाधिक सदाचारी, सबसे अधिक दयालु अपने परिजनों के साथ सब से अधिक सद्व्यवहार करने वाले व्यक्ति हैं। क्या आज अपनी जाति के अत्याचारों को भूल न जाएँगे? अबू सुफ़यान की यह शिकायत और याचना सुनकर वे मुहाजिर

(प्रवासी) भी जिन्हें मक्का की गलियों में पीटा और मारा जाता था, जिन्हें घरों और जायदादों के अधिकार से पृथक कर दिया जाता था, तड़प गए और उनके हृदयों में भी मक्का के लोगों के लिए दया की भावना पैदा हो गई। उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! अन्सार ने मक्का वालों के जो अत्याचारपूर्ण वृत्तान्त सुने हुए हैं आज उन के कारण हम नहीं जानते कि वे क़ुरैश के साथ क्या व्यवहार करें। आप[स.] ने फ़रमाया— अबू सुफ़यान ! सअद ने ग़लत कहा है। **आज दया करने का दिन है।** आज अल्लाह तआला क़ुरैश और काबा को सम्मान प्रदान करने वाला है। फिर आप[स.] ने एक व्यक्ति को सअद[रज़ि.] की ओर भिजवाया और फ़रमाया— अपना झण्डा अपने बेटे क़ैस को दे दो कि वह तुम्हारे स्थान पर अन्सार की सेना का सेनापति होगा[1]। इस प्रकार आप ने मक्का वालों का भी दिल रख लिया और अन्सार के हृदयों को भी आघात पहुँचने से सुरक्षित रखा तथा रसूले करीम (स.अ.व.) को क़ैस पर पूर्ण विश्वास भी था। क़ैस नितान्त सज्जन स्वभाव के युवक थे, ऐसे सज्जन कि इतिहास में उल्लेख है कि उन के निधन के निकट जब कुछ लोग उन के स्वास्थ्य का हाल पूछने के लिए आए और कुछ लोग न आए तो उन्होंने अपने मित्रों से पूछा— क्या कारण है कि कुछ मेरे परिचित भी हाल पूछने नहीं आए। उनके मित्रों ने कहा— आप बड़े दानशील पुरुष हैं। आप प्रत्येक व्यक्ति को उसके कष्ट के समय क़र्ज़ा दे देते हैं। नगर के बहुत से लोग आप के क़र्ज़दार हैं वे आप का हाल पूछने के लिए इसलिए नहीं आए कि कदाचित आप को आवश्यकता हो और आप उन से रुपया मांग बैठें। आपने कहा— मुझे खेद है मेरे मित्रों को अकारण कष्ट हुआ। मेरी ओर से पूरे नगर में घोषणा करा दो कि प्रत्येक व्यक्ति जिस पर क़ैस का क़र्ज़ा है वह उसे माफ़ है। इस पर उनका हाल पूछने के लिए इतने अधिक लोग आए कि उनके घर

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-93

की सीढ़ियां टूट गईं। जब सेना गुज़र चुकी तो अब्बास[रज़ि.] ने अबू सुफ़यान से कहा— अब अपनी सवारी दौड़ा कर मक्का पहुँचो और उन लोगों को सूचना दे दो कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) आ गए हैं और उन्होंने इस-इस रूप में मक्का के लोगों को अमन प्रदान किया है, जब कि अबू सुफ़यान अपने हृदय में प्रसन्न था कि मैंने मक्का के लोगों की मुक्ति का मार्ग निकाल लिया है। उसकी पत्नी हिन्दा ने जो इस्लाम के प्रारम्भ से लोगों को इस्लाम के विरुद्ध द्वेष और बैर रखने की शिक्षा देती चली आई थी और काफ़िर होने के बावजूद वास्तव में एक बहादुर स्त्री थी, आगे बढ़कर अपने पति की दाढ़ी पकड़ ली और मक्का वालों को आवाज़ें देना शुरू किया कि आओ इस वृद्ध मूर्ख का वध कर दो कि बजाए इस के कि तुम्हें यह नसीहत करता कि जाओ और अपने प्राणों और नगर के सम्मान के लिए युद्ध करते हुए मारे जाओ। यह तुम में अमन की घोषणा कर रहा है। अबू सुफ़यान ने उस की इस हरकत पर कहा— मूर्ख यह इन बातों का समय नहीं। जा और अपने घर में छुप जा। मैं उस सेना को देख कर आया हूँ जिस सेना का सामना करने की शक्ति सारे अरब में नहीं है। फिर अबू सुफ़यान ने उच्च स्वर में अमन (शान्ति) की शर्तों का वर्णन करना आरम्भ किया और लोग बड़ी तीव्रता के साथ उन स्थानों और घरों की ओर दौड़ पड़े जिनके संबंध में अमन की घोषणा की गई थी। केवल ग्यारह पुरुष और चार स्त्रियाँ ऐसी थीं जिनके बारे में कठोर अत्याचार पूर्ण वध और उपद्रव पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुके थे वे मानों युद्ध-अपराधी थे तथा रसूले करीम (स.अ.व.) का उनके बारे में आदेश था कि वध कर दिए जाएँ; क्योंकि वे केवल कुफ़्र और लड़ाई के ही दोषी नहीं अपितु युद्ध अपराधी हैं।

इस अवसर पर रसूले करीम (स.अ.व.) ने ख़ालिद बिन वलीद[रज़ि.] को बड़ी सख़्ती से आदेश दे दिया था कि जब तक कोई व्यक्ति लड़ाई न करे तुम नहीं लड़ोगे परन्तु जिस ओर से ख़ालिद[रज़ि.] ने नगर में प्रवेश किया

उस ओर अभी शान्ति के सन्देश की घोषणा नहीं पहुँची थी। इस क्षेत्र की सेना ने ख़ालिद[रज़ि.] का मुकाबला किया और चौबीस लोग मारे गए। चूंकि ख़ालिद[रज़ि.] का स्वभाव बड़ा जोशीला था, किसी ने दौड़ कर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को सूचना पहुँचा दी और विनती की कि ख़ालिद[रज़ि.] को रोका जाए अन्यथा वह समस्त मक्का वालों का वध कर देगा। आप[स.] ने ख़ालिद[रज़ि.] को तुरन्त बुलवाया और फ़रमाया— क्या मैंने तुम्हें लड़ाई से मना नहीं किया था? ख़ालिद ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप ने मना किया था परन्तु उन लोगों ने पहले हम पर आक्रमण किया और बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। मैं कुछ देर तक रुका और मैंने कहा— हम तुम पर आक्रमण करना नहीं चाहते, तुम ऐसा न करो, परन्तु जब मैंने देखा कि ये किसी प्रकार भी रुकने को तैयार नहीं तो फिर मुझे उन से लड़ना पड़ा और ख़ुदा ने उन्हें चारों ओर तितर-बितर कर दिया। बहरहाल इस छोटी सी घटना के अतिरिक्त अन्य कोई घटना नहीं हुई तथा मक्का पर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का अधिकार हो गया। जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मक्का में प्रवेश किया तो आप[स.] से लोगों ने पूछा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या आप आपने घर में ठहरेंगे? आप ने फ़रमाया— क्या अक़ील ने (यह आप के चाचा के बेटे थे) हमारे लिए कोई घर छोड़ा भी है? अर्थात् मेरे प्रवास के पश्चात् मेरे परिजन मेरी समस्त सम्पत्ति को बेच कर खा चुके हैं अब मक्का में मेरे लिए कोई ठिकाना नहीं। फिर आप ने फ़रमाया— हम 'ख़ैफ़ बनी किनाना' में ठहरेंगे। यह मक्का का एक मैदान था जहाँ कुरैश और किनाना क़बीले ने मिलकर क़समें खाई थीं कि जब तक बनू हाशिम और बनू अब्दुल-मुत्तलिब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को पकड़ कर हमारे सुपुर्द न कर दें और उनका साथ न छोड़ दें, हम न उन से शादी-विवाह करेंगे न क्रय-विक्रय का मामला करेंगे इस संकल्प के पश्चात् रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और आप के चाचा अबू तालिब

और आपकी जमाअत के समस्त लोगों ने अबूतालिब-घाटी में शरण ली थी तथा तीन वर्ष के कठोर कष्ट उठाने के पश्चात् ख़ुदा तआला ने उन्हें मुक्ति दिलाई थी। मुहम्मद रसूलुल्लाह का उस ख़ैफ के स्थान का चयन करना कितना महत्त्वपूर्ण था। मक्का वालों ने उसी स्थान पर क़समें खाई थीं कि जब तक मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) हमारे सुपुर्द न कर दिए जाएँ, हम आप के क़बीले से संधि नहीं करेंगे। आज मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) उसी मैदान में जाकर उतरे और मक्का वालों से जैसे यह कहा कि जहाँ तुम चाहते थे मैं वहाँ आ गया हूँ परन्तु बताओ तो सही— क्या तुम में शक्ति है कि आज मुझे अपने अत्याचारों का निशाना बना सको, वही स्थान जहाँ तुम मुझे तिरस्कृत और कोप-ग्रस्त अवस्था में देखना चाहते थे और चाहते थे कि मेरी जाति के लोग मुझे पकड़ कर तुम्हारे सुपुर्द कर दें, वहाँ मैं ऐसी अवस्था में आया हूँ कि मेरी जाति ही नहीं समस्त अरब भी मेरे साथ है और मेरी जाति ने मुझे तुम्हारे सुपुर्द नहीं किया अपितु मेरी जाति ने तुम्हें मेरे सुपुर्द कर दिया है। ख़ुदा तआला की क़ुदरत है कि यह दिन भी सोमवार का दिन था वही दिन जिस दिन मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ग़ारे सौर (सौर नामक गुफ़ा) से निकल कर केवल अबू बक्र[रज़ि.] के साथ मदीना की ओर हिजरत (प्रवास) कर गए थे, वही दिन जिसमें आपने बड़े दु:ख के साथ सौर की पहाड़ी के ऊपर से मक्का की ओर देख कर कहा था— हे मक्का ! तू मुझे संसार की समस्त बस्तियों से अधिक प्रिय है परन्तु तेरे लोग मुझे यहाँ रहने नहीं देते।

मक्का में प्रवेश करते समय हज़रत अबू बकर[रज़ि.] आप[स.] की ऊँटनी की रकाब पकड़े हुए आप[स.] के साथ बातें भी करते जा रहे थे और सूरह 'अलफ़त्ह' जिसमें 'मक्का-विजय' की सूचना दी गई थी वह भी पढ़ते जाते थे। आप[स.] सीधे काबा की ओर आए और ऊँटनी पर बैठे हुए ही सात बार काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) किया। उस समय आप[स.] के हाथ में एक

छड़ी थी। आप[स.] काबा के गिर्द, जिसे हज़रत इब्राहीम[अ.] और उनके पुत्र हज़रत इस्माईल[अ.] ने एक ख़ुदा की उपासना के लिए बनाया था और जिसे बाद में उनकी पथभ्रष्ट सन्तान ने मूर्तियों का भण्डार बना कर रख दिया था परिक्रमा (तवाफ़) की तथा वे तीन सौ साठ मूर्तियां जो वहाँ रखी हुई थी। आप उनमें से प्रत्येक पर छड़ी मारते जाते थे और यह कहते जाते थे—

جَآءَ الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ ۖ اِنَّ الْبَاطِلَ كَانَ زَهُوْقًا

यह वह आयत है जो हिजरत से पूर्व सूरह बनी इस्राईल में आप[स.] पर उतरी थी। जिसमें हिजरत और फिर मक्का-विजय की सूचना दी गई थी। यूरोपियन लेखक इस बात पर सहमत हैं कि यह हिजरत से पहले की सूरह है। इस सूरह में यह वर्णन किया गया था कि—

وَقُلْ رَّبِّ اَدْخِلْنِىْ مُدْخَلَ صِدْقٍ وَّاَخْرِجْنِىْ مُخْرَجَ صِدْقٍ وَّاجْعَلْ لِّىْ

مِنْ لَّدُنْكَ سُلْطٰنًا نَّصِيْرًا ○ وَقُلْ جَآءَ الْحَقُّ وَزَهَقَ الْبَاطِلُ ۖ اِنَّ الْبَاطِلَ

كَانَ زَهُوْقًا ○ (बनी इस्राईल-81-82)

अर्थात् तू कह हे मेरे रब्ब ! मुझे इस शहर अर्थात् मक्का में मुबारक तौर पर प्रवेश कराना अर्थात् हिजरत के पश्चात् विजय और प्रभुत्व प्रदान करके तथा इस शहर से कुशलतापूर्वक ही निकालना अर्थात् हिजरत के समय और स्वयं अपने पास से मुझे प्रभुत्व और सहायता के संसाधन उपलब्ध करना। यह भी कहो कि सत्य आ गया और असत्य अर्थात् द्वैतवाद परास्त होकर पलायन कर गया है तथा असत्य अर्थात् द्वैतवाद के लिए पराजित हो कर भागना तो हमेशा के लिए प्रारब्ध था। इस भविष्यवाणी के अक्षरशः पूर्ण होने और हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] के उस आयत को पढ़ते समय मुसलमानों और काफ़िरों के हृदयों में जो भावनाएं पैदा हुई होंगी वे शब्दों में वर्णन नहीं हो सकतीं। अतः उस दिन इब्राहीम का स्थान पुनः एक ख़ुदा की उपासना के लिए विशेष्य कर दिया गया और

मूर्तियां हमेशा के लिए तोड़ी गईं। जब रसूले करीम (स.अ.व.) ने 'हुबुल नामक मूर्ति के ऊपर अपनी छड़ी मारी और वह अपने स्थान से गिर कर टूट गई तो हज़रत ज़ुबैर[रज़ि.] ने अबू सुफ़यान की ओर मुस्करा कर देखा और कहा— अबू सुफ़यान ! स्मरण है जब उहद-युद्ध के दिन मुसलमान घावों से निढाल एक ओर खड़े हुए थे तुम ने अपने अहंकार में यह घोषणा की — أُعلُ هُبُل أُعلُ هُبل हुबुल की जय, हुबुल की जय तथा यह कि हुबुल ने ही तुम्हें उहद के दिन मुसलमानों पर विजय दी थी। आज देखते हो वे सामने हुबुल के टुकड़े पड़े हैं। अबू सुफ़यान ने कहा— ज़ुबैर ! ये बातें जाने भी दो। आज हमें अच्छी तरह दिखाई दे रहा है कि यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह के ख़ुदा के अतिरिक्त कोई अन्य ख़ुदा भी होता तो आज जो कुछ हम देख रहे हैं इस प्रकार कभी न होता। तत्पश्चात् आप[स.] ने काबा के अन्दर हज़रत इब्राहीम के जो चित्र बने हुए थे उन्हें मिटाने का आदेश दिया और काबा में ख़ुदा के वादे पूर्ण होने की कृतज्ञता में दो रकअत नमाज़ अदा की। रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने काबा के अन्दर बनाए गए चित्रों को मिटाने के लिए हज़रत उमर[रज़ि.] को नियुक्त किया था, उन्होंने इस विचार से कि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को तो हम भी नबी मानते हैं, हज़रत इब्राहीम[अ.] के चित्र को यथावत् रहने दिया रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने जब उस चित्र को यथावत् देखा तो फ़रमाया— उमर ! तुम ने यह क्या किया? क्या ख़ुदा ने यह नहीं फ़रमाया कि—

مَا كَانَ اِبْرٰهِيْمُ يَهُوْدِيًّا وَّلَا نَصْرَانِيًّا وَّلٰكِنْ كَانَ حَنِيْفًا مُّسْلِمًا ط

وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ (सूरह आले इमरान-68)

अर्थात् इब्राहीम न यहूदी था न ईसाई अपितु वह ख़ुदा तआला का पूर्ण आज्ञाकारी तथा ख़ुदा तआला की समस्त सत्यताओं को मानने वाला तथा ख़ुदा का एकेश्वरवादी बन्दा था। अतः आप[स.] के आदेश से यह चित्र भी

मिटा दिया गया। ख़ुदा तआला के चमत्कार देख कर उस दिन मुसलमानों के हृदय ईमान से इतने ओत-प्रोत हो रहे थे तथा मुहम्मद रसूलुल्लाह की शान पर उन का विश्वास इस प्रकार उन्नति कर रहा था कि जब रसूले करीम (स.अ.व.) ने ज़मज़म के झरने से (जो इस्माईल पुत्र इब्राहीम[अ.] के लिए ख़ुदा तआला ने बतौर चमत्कार जारी किया था) पानी पीने के लिए मंगवाया तथा उसमें से कुछ पानी पी कर शेष पानी से आप[स.] ने वुज़ू किया तो आप के शरीर से पानी की कोई बूंद पृथ्वी पर नहीं गिर सकी कि मुसलमान तुरन्त उसे उचक लेते और प्रसाद के तौर पर अपने शरीर पर मल लेते थे तथा मुश्रिक कह रहे थे कि हम ने संसार में ऐसा कोई बादशाह नहीं देखा जिसके साथ उसके लोगों का इतना प्रेम हो। जब आप इन कामों से निवृत्त हुए और मक्का वाले आपकी सेवा में उपस्थित किए गए तो आप[स.] ने फ़रमाया— हे मक्का के लोगो ! तुम ने देख लिया कि ख़ुदा तआला के चमत्कार किस प्रकार अक्षरश: पूरे हुए हैं। अब बताओ कि तुम्हारे उन अत्याचारों और उपद्रवों का क्या दण्ड दिया जाए जो तुम ने एक ख़ुदा की उपासना करने वाले निर्धन बन्दों पर किए थे। मक्का के लोगों ने कहा— हम आप से उसी आचरण की आशा रखते हैं जो यूसुफ ने अपने भाइयों से किया था। यह ख़ुदा की क़ुदरत थी कि मक्का वालों के मुख से वही शब्द निकले जिनकी भविष्यवाणी ख़ुदा तआला ने सूरह 'यूसुफ़' में पहले से कर रखी थी तथा मक्का-विजय से दस वर्ष पूर्व बता दिया था कि तू मक्का वालों से वैसा ही व्यवहार करेगा जैसा यूसुफ़ ने अपने भाइयों से किया था। अत: जब मक्का वालों के मुख से इस बात की पुष्टि हो गई कि रसूले करीम (स.अ.व.) यूसुफ़ के प्रारूप थे तथा यूसुफ़ के समान अल्लाह तआला ने उन्हें अपने भाइयों पर विजय प्रदान की थी आप[स.] ने भी घोषणा कर दी कि تَاللّٰهِ لَا تَثْرِيْبَ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ ख़ुदा की क़सम आज तुम्हें किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जाएगा और न किसी

प्रकार से डांटा जाएगा। जब रसूले करीम (स.अ.व.) काबा के दर्शन से संबंधित उपासनाओं में व्यस्त थे और अपनी क़ौम के साथ क्षमा और दया का मामला कर रहे थे तो अन्सार के हृदय अन्दर ही अन्दर बैठे जा रहे थे और वे एक-दूसरे को संकेतों में कह रहे थे— कदाचित आज हम ख़ुदा के रसूल को अपने से पृथक कर रहे हैं; क्योंकि उनका शहर ख़ुदा तआला ने उन के हाथ पर विजय कर दिया है और उनका क़बीला उन पर ईमान ले आया है। उस समय अल्लाह तआला ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को वह्यी (ईशवाणी) के द्वारा अन्सार की उन आशंकाओं की सूचना दे दी। आप[स.] ने सर उठाया, अन्सार की ओर देखा और फ़रमाया- हे अन्सार ! तुम समझते हो कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को अपने शहर का प्रेम व्याकुल करता होगा तथा अपनी जाति का प्रेम उसके हृदय को गुदगुदाता होगा। अन्सार ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह सही है। हमारे हृदय में ऐसा विचार पैदा हुआ। आप[स.] ने फ़रमाया— तुम जानते हो कि मेरा नाम क्या है। मतलब यह कि मैं अल्लाह का बन्दा हूँ और उसका रसूल कहलाता हूँ फिर कैसे हो सकता है कि तुम लोगों को जिन्होंने इस्लाम धर्म की दयनीय अवस्था में अपने प्राणों को बलिदान किया छोड़कर किसी अन्य स्थान पर चला जाऊँ। पुनः फ़रमाया— हे अन्सार ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल हूँ। मैंने ख़ुदा के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़ा था। तत्पश्चात् अब मैं अपनी मातृभूमि में वापस नहीं आ सकता, मेरा जीवन तुम्हारे जीवन से है, मेरी मृत्यु तुम्हारी मृत्यु से सम्बद्ध है। मदीना के लोग आप[स.] की ये बातें सुनकर तथा आप के प्रेम और आप की वफ़ा को देख कर आँसू बहाते हुए आगे बढ़े और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! ख़ुदा की क़सम हम ने ख़ुदा और उसके रसूल पर बदगुमानी की। वास्तविकता यह है कि हमारे हृदय इस बात को सहन नहीं कर सके कि ख़ुदा का रसूल हमें और हमारे

शहर को छोड़ कर कहीं और चला जाए। आप[स.] ने फ़रमाया— अल्लाह और उसका रसूल तुम्हें निर्दोष समझते हैं और तुम्हारी वफ़ादारी की पुष्टि करते हैं। जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और मदीना के लोगों में जब ये प्यार और मुहब्बत की बातें हो रही होंगी, यदि मक्का के लोगों ने आँसू नहीं बहाए होंगे तो उन के हृदय निश्चय ही आँसू बहा रहे होंगे कि वह बहुमूल्य हीरा जिससे अधिक मूल्यवान कोई वस्तु इस संसार में पैदा नहीं हुई, ख़ुदा ने उन्हें दिया था परन्तु उन्होंने उसे अपने घरों से निकाल कर फेंक दिया और अब जब कि वह ख़ुदा की कृपा और उसकी सहायता के साथ दोबारा मक्का में आया था वह अपना वादा निभाने के लिए अपनी सहमति और अपनी ख़ुशी से मक्का छोड़ कर मदीना वापस जा रहा है।

जिन लोगों के बारे में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फैसला किया था① कि उनकी कुछ अत्याचारपूर्ण हत्याओं तथा वीभत्स अत्याचारों के कारण उन का वध किया जाए। उनमें से अधिकांश को कुछ मुसलमानों की सिफ़ारिश पर आप[स.] ने छोड़ दिया। उन्हीं लोगों में से अबू जहल का बेटा 'इकरिमा' भी था। इसकी पत्नी हृदय से मुसलमान थी। उसने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से विनती की हे अल्लाह के रसूल ! इकरिमा को भी क्षमा कर दें। आप[स.] ने फ़रमाया— हाँ-हाँ हम उसे क्षमा करते हैं। इकरिमा भाग कर यमन की ओर जा रहा कि पत्नी अपने पति के प्रेम में पीछे-पीछे उस की खोज में गई । जब वह समुद्र के तट पर नौका में बैठे हुए अरब को हमेशा के लिए छोड़ने पर तैयार थे कि पत्नी बिखरे बालों और अस्त-व्यस्त अवस्था में घबराई हुई पहुँची और कहा— हे मेरे चाचा के बेटे (अरब स्त्रियां अपने पतियों को चाचा का बेटा कहा करती थीं) इतने सुशील और दयावान मनुष्य को छोड़ कर कहाँ जा रहे हो। इकरिमा ने स्तब्ध हो कर अपनी पत्नी से पूछा— क्या मेरी उन समस्त शत्रुताओं के पश्चात्

①-ज़रक़ानी जिल्द-2, तथा अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3 तथा अस्सीरतुन्नबविय्यह, अस्सीरतुलहलबिय्यह जिल्द के हाशिए पर।

रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मुझे क्षमा कर देंगे? इकरिमा की पत्नी ने कहा— हाँ, हाँ ! मैंने उनसे वचन ले लिया है और उन्होंने तुम्हें क्षमा कर दिया है। जब वह रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के सामने उपस्थित हुए तो कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरी पत्नी कहती है कि आप ने मुझ जैसे मनुष्य को भी क्षमा कर दिया है। आप ने फ़रमाया— तुम्हारी पत्नी सच कहती है, हम ने तुम्हें क्षमा कर दिया है। इकरिमा ने कहा— जो मनुष्य इतने कट्टर शत्रुओं को क्षमा कर सकता है वह झूठा नहीं हो सकता। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह एक है तथा उसका कोई भागीदार नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि हे मुहम्मद (स.अ.व.)! तुम उसके बन्दे और उसके रसूल हो और फिर शर्म से अपना सर झुका लिया। आप[स.] ने उस की लज्जा की अवस्था को देखकर उसके हृदय की सन्तुष्टि के लिए फ़रमाया— इकरिमा ! हम ने तुम्हें क्षमा ही नहीं किया अपितु इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि यदि आज तुम मुझ से कोई ऐसी वस्तु मांगो जिसके देने की मुझ में सामर्थ्य हो तो मैं वह तुम्हें दे दूँगा। इकरिमा ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! इस से अधिक मेरी क्या अभिलाषा हो सकती है कि आप[स.] ख़ुदा तआला से यह दुआ करें कि मैंने जो आप से शत्रुताएं की हैं वह मुझे क्षमा कर दे। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अल्लाह तआला को सम्बोधित करके फ़रमाया— हे मेरे अल्लाह ! वे समस्त शत्रुताएं जो इकरिमा ने मुझ से की हैं उसे क्षमा कर दे और वे समस्त गालियाँ जो उसके मुख से निकली हैं वे उसे माफ़ कर दे। फिर आप[स.] उठे और अपनी चादर उतार कर उसके ऊपर डाल दी और फ़रमाया— जो व्यक्ति अल्लाह पर ईमान लाते हुए हमारे पास आता है हमारा घर उसका घर है तथा हमारा स्थान उसका स्थान है।

इकरिमा के ईमान लाने से वह भविष्यवाणी पूरी हुई जो वर्षों पूर्व

---

①-अस्सीरतुल हलबिय्यह, जिल्द-3, पृष्ठ-104

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अपने सहाबा से बयान की थी कि मैंने स्वप्न में देखा है कि जैसे मैं स्वर्ग में हूँ। वहाँ मैंने अंगूर का एक गुच्छा देखा और लोगों से पूछा— यह किस के लिए है? तो किसी उत्तर देने वाले ने कहा— अबू जहल के लिए। यह बात मुझे बड़ी विचित्र लगी तथा मैंने कहा— स्वर्ग में तो मोमिन के अतिरिक्त और कोई प्रवेश नहीं कर सकता फिर स्वर्ग में अबू जहल के लिए अंगूर कैसे उपलब्ध किए गए हैं। जब इकरिमा ईमान लाया तो आप[स.] ने फ़रमाया— वह गुच्छा इकरिमा का था। ख़ुदा ने पुत्र के स्थान पर पिता का नाम प्रकट किया जैसा कि स्वप्नों में प्रायः हो जाया करता है।[①]

वे लोग जिनका वध करने का आदेश दिया गया था उनमें वह व्यक्ति भी था जो रसूले करीम (स.अ.व.) की बेटी हज़रत ज़ैनब[रज़ि.] की मृत्यु का कारण हुआ था। उस व्यक्ति का नाम हिबार था। उसने हज़रत ज़ैनब[रज़ि.] के ऊँट की रस्सी काट दी थी और हज़रत ज़ैनब[रज़ि.] ऊँट से नीचे जा पड़ी थीं, जिसके कारण उनका गर्भपात हो गया और कुछ समय के पश्चात् उन का निधन हो गया। अन्य अपराधों के अतिरिक्त यह अपराध भी उसे दण्डनीय बनाता था। यह व्यक्ति भी रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा में उपस्थित हुआ तथा उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं आप[स.] से भाग कर ईरान की ओर चला गया था। फिर मैंने सोचा कि अल्लाह तआला ने अपने नबी के द्वारा हमारी द्वैतवादी विचारधारा को दूर किया है और हमें आध्यात्मिक मृत्यु से बचाया है। मैं ग़ैर लोगों में जाने की बजाए क्यों न उसके पास जाऊँ और अपने पापों का इक़रार करके उस से क्षमा माँगूं। रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— हिबार ! जब ख़ुदा ने तुम्हारे हदय में इस्लाम का प्रेम पैदा कर दिया है तो मैं तुम्हारे पापों को क्यों न क्षमा करूँ। जाओ मैंने तुम्हें क्षमा किया। इस्लाम ने तुम्हारे पहले समस्त अपराध मिटा दिए हैं। यहाँ इतनी समाई नहीं कि मैं इस लेख को विस्तारपूर्वक लिखूं अन्यथा

उन ख़तरनाक अपराधियों में से जिन्हें रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने साधारण बहानों पर क्षमा कर दिया। अधिकांश लोगों की घटनाएँ ऐसी भयानक तथा रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की दया को दर्शाने वाली हैं कि एक क्रूर हृदय मनुष्य भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

हुनैन का युद्ध

चूंकि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का मक्का में अचानक प्रवेश हुआ इसलिए मक्का से थोड़ी दूरी पर जो क़बीले रहते थे विशेषकर वे जो दक्षिण की ओर रहते थे, उन्हें मक्का पर आक्रमण की सूचना उसी समय हुई जब आप[स.] मक्का में प्रवेश कर चुके थे। इस सूचना को सुनते ही उन्होंने अपनी सेनाएं संगठित करना प्रारम्भ कर दिया और मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के मुकाबले की तैयारी करने लगे। हवाज़न और सक़ीफ़ दो अरब क़बीले स्वयं को विशेष तौर पर बहादुर समझते थे, उन्होंने तुरन्त परस्पर परामर्श करके अपने लिए एक सरदार का चयन कर लिया तथा मालिक बिन औफ़ नामक एक व्यक्ति को अपना रईस नियुक्त कर लिया। तत्पश्चात् उन्होंने आस-पास के क़बीलों को आमंत्रित किया कि वे भी आकर उनके साथ सम्मिलित हो जाएँ। उन्हीं क़बीलों में बनू सअद बिन बुकैर भी थे। आप की धात्री हलीमा भी इसी क़बीले में से थीं और मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने बाल्यकाल की आयु इसी कबीले में व्यतीत की थी। इन लोगों ने संगठित हो कर मक्का की ओर प्रस्थान किया तथा उन्होंने अपने साथ अपने माल, अपनी पत्नियों तथा अपनी सन्तानों को भी ले लिया। जब उन के सरदारों से पूछा गया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया है? तो उन्होंने उत्तर दिया— इसलिए ताकि सिपाहियों को यह ध्यान रहे कि यदि हम भागे तो हमारी पत्नियां और हमारी सन्तानें बन्धक बना ली जाएँगी तथा हमारे माल लूट लिए जाएँगे इस से विदित होता है कि वे मुसलमानों

का विनाश करने के लिए कितने दृढ़ संकल्प के साथ निकले थे। अन्ततः यह सेना रौतास की घाटी में आकर उतरी जो युद्ध की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए नितान्त उत्तम श्रेणी की घाटी थी; क्योंकि उसमें शरण के स्थान भी थे तथा पशुओं के लिए चारा और मनुष्यों के लिए पानी भी उपलब्ध था तथा घोड़े दौड़ाने के लिए भूमि भी बहुत उचित थी। जब रसूले करीम (स.अ.व.) को इसकी सूचना मिली तो आप[स.] ने अब्दुल्लाह बिन अबी हदरद[रज़ि.] नामक सहाबी को वस्तु-स्थिति ज्ञात करने के लिए भेजा। अब्दुल्लाह ने आकर सूचना दी कि वास्तव में उनकी सेना एकत्र है और वह लड़ने-मरने पर तत्पर है। चूंकि यह जाति धनुर्विद्या में बहुत निपुण थी। जिस स्थान पर उसने डेरा डाला वह स्थान ऐसा था कि केवल एक सीमित स्थान पर युद्ध किया जा सकता था तथा उस स्थान पर भी आक्रमणकारी बड़ी सफाई के साथ तीरों का लक्ष्य बनता था। मुहम्मद (स.अ.व.) ने मक्का के सरदार सफ़वान से जो बहुत धनाढ्य और व्यापारी थे, इस युद्ध के लिए शस्त्र और कुछ रुपया मांगा। सफ़वान ने कहा हे मुहम्मद (स.अ.व.) ! क्या आप अपने शासन के बल पर मेरा धन छीनना चाहते हैं? आप[स.] ने फ़रमाया— नहीं, हम छीनना नहीं चाहते अपितु तुम से अस्थायी तौर पर मांगते हैं तथा उसकी ज़मानत देने को तैयार हैं। इस पर उसने कहा तब कोई हानि नहीं। आप मुझ से ये वस्तुएँ ले लें तथा उसने सौ कवच और उनके साथ उचित शस्त्र अस्थायी तौर पर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को दिए, इसके अतिरिक्त तीन हज़ार रुपया बतौर क़र्ज़ दिया। इसी प्रकार आप ने अपने चाचा के बेटे नौफ़िल बिन हारिस से तीन हज़ार भाले अस्थायी तौर पर लिए। जब यह सेना हवाज़न की ओर चली तो मक्का वालों ने इच्छा प्रकट की कि यद्यपि हम मुसलमान नहीं हैं परन्तु अब चूंकि इस्लामी शासन में सम्मिलित हो चुके हैं हमें भी युद्ध में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाए। अतः आप[स.] के साथ मक्का से दो हज़ार

लोग रवाना हुए मार्ग में अरब का एक प्रसिद्ध दर्शन-स्थल पड़ता था जिसे 'ज़ाते अन्वात' कहते थे। यह एक पुराना बेरी का वृक्ष था जिसे अरब के लोग शुभ समझते थे और अरब के योद्धा जब कोई शस्त्र खरीदते तो पहले 'ज़ाते अन्वात' में जाकर लटकाते थे ताकि उसे बरकत प्राप्त हो जाए। जब सहाबा उसके पास से गुज़रे तो कुछ लोगों ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! हमारे लिए भी आप[स.] एक ज़ाते अन्वात निर्धारित करें। आप[स.] ने फ़रमाया— अल्लाह बड़ा है। यह तो वही मूसा[अ.] की जाति वाली बात हुई कि जब वे किन्आन की ओर रवाना हुए तथा उन्होंने किन्आन के क़बीलों को मूर्ति-पूजा करते देखा तो मूसा[अ.] को सम्बोधित करते हुए कहा—

يٰمُوسَى اجْعَلْ لَّنَآ اِلٰهًا كَمَا لَهُمْ اٰلِهَةٌ ط

(सूरह आ'राफ़- 139)

हे मूसा ! जिस प्रकार इन के उपास्य हैं हमारे लिए भी कोई उपास्य बना दीजिए। फ़रमाया— ये तो मूर्खतापूर्ण बातें हैं। मैं डरता हूँ कि इस प्रकार के भ्रमों के कारण कहीं तुम में से भी एक गिरोह ऐसी गतिविधियों में लिप्त न हो जाए।

हवाज़न और उनके सहयोगी क़बीलों ने एक मोर्चा मुसलमानों पर आक्रमण करने के लिए बना रखा था जैसा कि आजकल युद्ध के मैदान में गुप्त मोर्चे होते हैं। जब इस्लामी सेना हुनैन के स्थान पर पहुँची तो उनके सामने छोटी-छोटी मुंडेरें बना कर उन के पीछे बैठ गए और मध्य में मुसलमानों के लिए एक संकीर्ण मार्ग छोड़ दिया। अधिकांश सैनिक तो उन टीलों के पीछे छुप कर बैठ गए और कुछ सैनिक ऊँटों आदि के सामने पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो गए। मुसलमानों ने यह समझ कर कि सेना वही है जो सामने खड़ी है आगे बढ़ कर उस पर आक्रमण कर दिया। जब मुसलमान काफ़ी आगे बढ़ चुके तथा मोर्चों में छुपे सैनिकों ने देखा कि हम उचित प्रकार से आक्रमण कर सकते हैं। अतः आगे खड़ी सेना ने सामने

से आक्रमण कर दिया और दोनों ओर से धनुर्धरों ने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। मक्का के लोग जो यह समझ कर सम्मिलित हुए थे कि आज हमें भी वीरता के जौहर दिखाने का अवसर प्राप्त होगा। इस दो तरफ़ा आक्रमणों को सहन न कर सके तथा वापस मक्का की ओर भागे। मुसलमान यद्यपि ऐसे कष्ट सहन करने के अभ्यस्त थे परन्तु जब दो हज़ार घोड़े और ऊँट उनकी पंक्तियों से बड़ी तेज़ी से दौड़ते हुए निकले तो उनके घोड़े और ऊँट भी डर गए और समस्त सेना बड़ी तीव्र गति से पीछे की ओर दौड़ पड़ी। तीन ओर के आक्रमण में केवल रसूलुल्लाह (स.अ.व.) और आप[स.] के साथ बारह सहाबी खड़े रहे, परन्तु इस का तात्पर्य यह नहीं कि समस्त सहाबा भाग गए थे अपितु सौ के लगभग और लोग भी मैदान में खड़े रहे थे परन्तु रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से दूरी पर थे। आपके पास एक दर्जन के लगभग लोग रह गए। एक सहाबी कहते हैं— मैं और मेरे साथी बहुत ज़ोर लगाते थे कि किसी प्रकार हमारी सवारी के पशु रणभूमि की ओर आएँ परन्तु दो हज़ार ऊँटों के भागने के कारण वे ऐसे बिदक गए थे कि हमारे हाथ बाघें खींचते-खींचते घायल हो-हो जाते थे परन्तु ऊँट और घोड़े वापस लौटने का नाम नहीं लेते थे। कई बार हम बाघें इतनी ज़ोर से खींचते थे कि सवारी का सर उसकी पीठ से लग जाता था, परन्तु फिर जब एड़ देकर हम उसे पीछे युद्ध के मैदान की ओर मोड़ते तो वह पीछे लौटने के स्थान पर और भी तेज़ी के साथ आगे की ओर भागता। हमारा हृदय धड़क रहा था कि पीछे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की क्या दशा होगी, परन्तु हम बिल्कुल विवश थे। इधर तो सहाबा की यह दशा थी और उधर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) केवल कुछ लोगों के साथ युद्ध के मैदान में खड़े थे। दाएँ, बाएँ और सामने तीनों ओर से तीर बरस रहे थे तथा पीछे की ओर केवल एक तंग मार्ग था जिसमें एक समय में कुछ लोग ही गुज़र सकते थे, परन्तु फिर भी इस मार्ग के अतिरिक्त बचाव का कोई मार्ग नहीं था। उस समय

हज़रत अबू बक्र[रज़ि] ने अपनी सवारी से उतर कर रसूले करीम (स.अ.व.) के खच्चर की नकेल पकड़ ली और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! थोड़ी देर के लिए पीछे हट आएँ यहाँ तक कि इस्लामी सेना संगठित हो जाए। आप[स.] ने फ़रमाया— अबू बकर मेरे ख़च्चर की नकेल छोड़ दो और फिर खच्चर को एड़ लगाते हुए आपने उस तंग मार्ग पर बढ़ना आरम्भ किया जिसके दाएँ-बाएं मोर्चों में बैठे हुए सैनिक तीर बरसा रहे थे। फ़रमाया—

اَنَا النَّبِیُّ لا کذب انا ابن عبد المطّلِب

मैं ख़ुदा का नबी हूँ, मैं झूठा नहीं हूँ परन्तु यह भी स्मरण रखो कि इस समय ख़तरे के स्थान पर खड़े हुए भी मैं जो शत्रु के आक्रमण से सुरक्षित हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि मेरे अन्दर ख़ुदाई का कोई तत्त्व पाया जाता है अपितु मैं मानव ही हूँ और अब्दुल मुत्तलिब का पौत्र हूँ। फिर आप[स.] ने हज़रत अब्बास[रज़ि.] को जिन की आवाज़ बहुत ऊँची थी आगे बुलाया और कहा— अब्बास[रज़ि.] उच्च स्वर में पुकार कर कहो— हे वे सहाबा ! जिन्होंने हुदैबिया के दिन वृक्ष के नीचे बैअत की थी और हे वे लोगो ! जो सूरह बक़रह के समय से मुसलमान हो, तुम्हें ख़ुदा का रसूल बुलाता है। हज़रत अब्बास[रज़ि.] ने नितान्त उच्च स्वर में जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का यह सन्देश सुनाया तो उस समय सहाबा[रज़ि.] की जो दशा हुई उसका अनुमान केवल उन्हीं के मुख से वृत्तान्त सुनकर लगाया जा सकता है। वही सहाबी जिनकी मैंने ऊपर चर्चा की है वह कहते हैं कि हम ऊँटों और घोड़ों को वापस लाने में प्रयासरत थे कि अब्बास[रज़ि.] का स्वर हमारे कानों से टकराया, उस समय हमें ऐसा लगा कि हम इस संसार में नहीं अपितु प्रलय के दिन ख़ुदा तआला के समक्ष उपस्थित हैं और उसके फरिश्ते हमें हिसाब देने के लिए बुला रहे हैं। तब हम में से कुछ ने अपनी तलवारें और ढालें अपने हाथों में ले लीं और ऊँटों से कूद पड़े और भयभीत ऊँटों को खाली छोड़ दिया कि वे जिधर चाहें चले जाएँ और कुछ ने अपनी

तलवारों से अपने ऊँटों की गर्दनें काट दीं और स्वयं पैदल रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की ओर दौड़े। वह सहाबी कहते हैं कि उस दिन अन्सार रसूले करीम (स.अ.व.) की ओर इस प्रकार दौड़े जा रहे थे जिस प्रकार ऊँटनियाँ और गाएँ अपने बच्चे के चीखने की आवाज़ सुनकर उसकी ओर दौड़ पड़ती हैं तथा थोड़े ही समय में सहाबा और विशेषकर अन्सार रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चारों ओर एकत्र हो गए तथा शत्रु पराजित हो गया।

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की पवित्र अलौकिक शक्ति का यह चमत्कार है कि वह व्यक्ति जो कुछ ही दिन पूर्व आप के प्राण का दुश्मन था और आप के मुक़ाबले पर काफ़िरों की सेनाओं का नेतृत्व किया करता था अर्थात् अबू सुफ़यान वह आज हुनैन के दिन रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथ था। जब काफ़िरों के ऊँट पीछे की और दौड़े तो अबू सुफ़यान जो नितान्त निपुण और दक्ष व्यक्ति था उसने यह समझ कर कि मेरा घोड़ा भी बिदक जाएगा, तुरन्त अपने घोड़े से कूदा और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के घोड़े की रकाब पकड़े हुए पैदल आप[स.] के साथ चल पड़ा। अबू सुफ़यान का बयान है कि उस समय नंगी तलवार मेरे हाथ में थी और मुझे अल्लाह ही की सौगन्ध है जो हृदयों के रहस्य जानता है कि मैं उस समय दृढ़ संकल्प के साथ मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के साथ पहलू में खड़ा था कि कोई व्यक्ति मुझे मारे बिना रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास नहीं पहुँच सकता था। उस समय रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मुझे आश्चर्य के साथ देख रहे थे। कदाचित आप सोच रहे थे कि आज से केवल दस-पन्द्रह दिन पूर्व यह व्यक्ति वध करने के लिए अपनी सेना को लेकर मक्का से निकलने वाला था परन्तु कुछ ही दिनों में ख़ुदा तआला ने उसके अन्दर परिवर्तन पैदा कर दिया है कि मक्का का सेनापति एक साधारण सिपाही की हैसियत से मेरे ख़च्चर की रकाब पकड़े खड़ा है और उसका चेहरा बता रहा है कि यह आज अपनी मृत्यु से अपने पापों का निवारण करेगा।

अब्बास[रज़ि.] ने जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को आश्चर्य से अबू सुफ़यान की ओर देखते हुए देखा तो कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह अबू सुफ़यान आप के चाचा का बेटा और आप का भाई है आज तो आप इस से प्रसन्न हो जाएं। आप[स.] ने फ़रमाया— अल्लाह तआला इसकी वे समस्त शत्रुताएँ क्षमा करे जो इसने मुझ से की हैं। अबू सुफ़यान कहते हैं उस समय रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मेरी ओर सम्बोधित हुए और फ़रमाया— हे भाई ! तब मैंने इस प्रेम पूर्ण सम्बोधन पर भाव विभोर होकर प्रेमावेग में आप के उस पैर को जो खच्चर की रकाब में था चूम लिया।

मक्का विजय के उपरान्त जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने वह युद्ध सामग्री जो आप ने अस्थायी तौर पर ली थी उस के मालिकों को वापस किया और उसके साथ बहुत सा इनाम आदि भी दिया तो हम लोगों ने यह महसूस किया कि यह व्यक्ति इस समय के सामान्य व्यक्तियों के समान नहीं। अतः सफ़वान ने उसी समय इस्लाम को स्वीकार कर लिया।

इस युद्ध की एक और विचित्र घटना का इतिहास की पुस्तकों में उल्लेख मिलता है। शैबा नामक एक व्यक्ति जो मक्कानिवासी थे, जो काबा की सेवा के लिए नियुक्त थे वह कहते हैं— मैं भी इस युद्ध में शामिल हुआ परन्तु मेरी नीयत यह थी कि जिस समय सेनाएँ परस्पर भिड़ेंगी तो मैं अवसर पाकर रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का वध कर दूँगा तथा मैंने सोचा कि अरब और ग़ैर अरब तो अलग रहे यदि समस्त संसार भी मुहम्मद (रसूलुल्लाह (स.अ.व.)) के धर्म में प्रवेश कर गया तो भी मैं इस्लाम में प्रवेश नहीं करूँगा। जब युद्ध तीव्र हुआ और इधर के लोग उधर के लोगों में मिल गए तो मैंने तलवार खींची तथा रसूले करीम (स.अ.व.) के समीप होना आरम्भ किया। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे और आप[स.] के मध्य आग का एक शोला उठ रहा है जो निकट है कि मुझे भस्म कर दे। उस समय मुझे रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की आवाज़ सुनाई

दी कि शैबा ! मेरे समीप आ जाओ मैं जब आप के समीप गया, आप ने मेरे सीने पर हाथ फेरा और कहा— हे अल्लाह ! शैबा को शैतानी विचारों से मुक्ति प्रदान कर। शैबा कहते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के हाथ फेरने के साथ ही मेरे हृदय से समस्त शत्रुताएँ और वैर जाते रहे। उस समय से रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मुझे अपनी आँखों से, अपने कानों से और अपने हृदय से अधिक प्रिय हो गए। फिर आप[स.] ने फरमाया— शैबा आगे बढ़ो और लड़ो। तब मैं आगे बढ़ा और उस समय मेरे हृदय में इसके अतिरिक्त कोई इच्छा नहीं थी कि मैं अपने प्राण बलिदान करके रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की रक्षा करूँ। यदि उस समय मेरा पिता जीवित होता और मेरे सामने आ जाता तो मैं अपनी तलवार उसके सीने में उतार देने में क्षण भर के लिए भी संकोच न करता।

इसके बाद आप[स.] ने तायफ़ की ओर कूच किया। वही शहर जिस के निवासियों ने पथराव करते हुए मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को अपने शहर से निकाल दिया था। उस शहर की आप ने कुछ समय तक घेराबन्दी की परन्तु फिर कुछ लोगों के परामर्श पर कि इनकी घेराबन्दी करके समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। सम्पूर्ण अरब में अब केवल यह शहर कर ही क्या सकता है, आप घेराबन्दी छोड़कर चले आए तथा कुछ समय के पश्चात् तायफ़ के लोग भी मुसलमान हो गए।

मक्का की विजय और हुनैन-युद्ध के पश्चात्

इन युद्धों से निवृत्त होने के पश्चात वह धन-दौलत जो पराजित शत्रुओं के जुर्मानों तथा रणभूमि में छोड़ी हुई वस्तुओं आदि से एकत्र हुई थी। शरीअत के आदेशानुसार रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को इस्लामी सेना में वितरित करना था परन्तु इस अवसर पर आप ने इन मालों को मुसलमानों में बांटने की बजाए मक्का और आस-पास के लोगों में बांट दिया। इन

लोगों के अन्दर अभी ईमान तो पैदा नहीं हुआ था बहुत से तो अभी काफ़िर ही थे वे भी नए-नए मुसलमान हुए थे। यह उनके लिए बिल्कुल नई बात थी कि जाति अपना माल दूसरे लोगों में बांट रही है। इस माल के वितरण से उनके हृदय में नेकी और संयम पैदा होने की बजाए लालसा और अधिक बढ़ गई। उन्होंने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के चारों ओर जमघट लगा लिया तथा अतिरिक्त मांगों के साथ आप स॰ को तंग करने लगे, यहां तक कि वे ढकेलते हुए आप को एक वृक्ष तक ले गए और एक व्यक्ति ने तो आप की चादर जो आप के कंधों पर रखी हुई थी पकड़ कर इस प्रकार मरोड़ना शुरू किया कि आप की साँस रुकने लगी। आप स॰ ने फ़रमाया— हे लोगो ! यदि मेरे पास कुछ और होता तो मैं वह भी तुम्हें दे देता, तुम मुझे कभी कंजूस और संकुचित हृदय वाला नहीं पाओगे। फिर आप अपनी ऊँटनी के पास गए और उसका एक बाल तोड़ा और उसे ऊँचा करते हुए फ़रमाया— मुझे तुम्हारे बालों में से इस बाल के बराबर भी आवश्यकता नहीं उस पांचवें भाग के अतिरिक्त जो अरब के नियमानुसार सरकार का भाग है और वह पांचवां भाग भी मैं स्वयं पर खर्च नहीं करता अपितु वह तुम्हीं लोगों के कार्यों पर व्यय किया जाता है। स्मरण रखो अमानत में बेईमानी करने वाला मनुष्य प्रलय के दिन ख़ुदा के सामने उस बेईमानी के कारण अपमानित होगा[1]।

लोग कहते हैं कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) बादशाहत के अभिलाषी थे। क्या बादशाहों और जनसामान्य का ऐसा ही संबंध हुआ करता है? क्या किसी में शक्ति होती है कि बादशाह को इस प्रकार ढकेलता हुआ ले जाए और उसके गले में पटका डाल कर उसका गला घोंटे। अल्लाह के रसूलों के अतिरिक्त यह आदर्श कौन प्रदर्शित कर सकता है। परन्तु समस्त मालों को गरीबों में इस प्रकार बांटने के बावजूद फिर भी ऐसे क्रूर

---

①-अस्सीरतुलहलबिय्यह, जिल्द-3, पृष्ठ-135

लोग मैजूद थे जो आप[स.] के इस माल-वितरण को न्यायसंगत नहीं समझते थे। अतः ज़ुलख़ुवैसरा नामक एक व्यक्ति रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास आया और उस ने कहा— हे मुहम्मद (स.अ.व.) जो कुछ आप ने आज किया है वह मैंने देखा है। आप[स.] ने फ़रमाया— तुम ने क्या देखा है? उसने आज कहा— मैंने यह देखा कि आप[स.] ने आज अन्याय किया है तथा न्याय से काम नहीं लिया। आपने फ़रमाया— तुम पर खेद ! यदि मैंने न्याय नहीं किया तो फिर संसार में और कौन मनुष्य न्याय करेगा। उस समय सहाबा जोश में ख़ड़े हो गए और जब यह व्यक्ति मस्जिद से उठ कर गया तो उन में से कुछ ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह व्यक्ति वध करने योग्य है क्या आप हमें आज्ञा देते हैं कि हम इस का वध कर दें। आप ने फ़रमाया— यदि यह व्यक्ति कानून की पाबन्दी करता है तो हम उसे किस प्रकार मार सकते हैं सहाबा ने कहा हे अल्लाह के रसूल ! एक व्यक्ति प्रकट कुछ और करता है तथा उसके हृदय में कुछ और होता है। क्या ऐसा व्यक्ति दण्ड का पात्र नहीं? आप[स.] ने फ़रमाया— मुझे ख़ुदा ने यह आदेश नहीं दिया कि मैं लोगों से उन के हृदय के विचारों के अनुसार व्यवहार करूँ, मुझे तो यह आदेश दिया गया है कि मैं लोगों से उनके प्रत्यक्ष को दृष्टिगत रखते हुए निर्णय करूँ। फिर आप ने फ़रमाया— यह और इसके साथी एक दिन इस्लाम से विद्रोह करेंगे। अतः हज़रत अली के ख़िलाफ़त-काल में यह व्यक्ति और इसके कबीले के लोग उन विद्रोहियों के सरदार थे जिन्होंने हज़रत अली[रज़ि.] से विद्रोह किया तथा आज तक 'ख़वारिज' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हवाज़न से निवृत्त हो कर आप[स.] मदीना चले गए। मदीना वालों के लिए फिर एक नया खुशी का दिन था। एक बार ख़ुदा के रसूल ने मक्का वालों के अत्याचारों से विवश होकर मदीना की ओर प्रस्थान किया था और आज ख़ुदा का रसूल मक्का-विजय के पश्चात् अपनी ख़ुशी से और अपना वचन निभाने के लिए पुनः मदीना में प्रवेश कर रहा था।

तबूक का युद्ध

जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने मक्का-विजय किया तो अबू-आमिर मदनी जो ख़ज़रज क़बीले में से था तथा यहूद और ईसाइयों से मेल-मिलाप के कारण ख़ुदा की स्तुति और किसी जप करने का अभ्यस्त था, जिसके कारण लोग उसे राहिब (ईसाई सन्यासी) कहते थे, परन्तु धर्म की दृष्टि से वह ईसाई नहीं था। यह व्यक्ति आप[स.] के मदीना पहुँचने के बाद मक्का की ओर भाग गया था, जब मक्का भी विजय हो गया तो यह सोचने लगा कि अब मुझे इस्लाम के विरुद्ध उपद्रव पैदा करने के लिए कोई अन्य उपाय करना चाहिए। अन्ततः उसने अपना नाम और अपनी जीवन-पद्धति परिवर्तित कर ली तथा मदीना के पास क़बा नामक गांव में जाकर रहने लगा। वर्षों बाहर रहने के कारण तथा कुछ रूप और वेष भूषा-परिवर्तन के कारण मदीना के लोग उसे सामान्य तौर पर न पहचान सके। केवल वही मुनाफ़िक (कपटी) लोग उसे जानते थे जिन के साथ उसने अपने संबंध बना लिए थे। उसने मदीना के मुनाफ़िकों के साथ मिल कर यह योजना बनाई कि मैं शाम देश में जाकर ईसाई सरकार और अरब के ईसाई क़बीलों को भड़काता हूँ और उन्हें मदीना पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करता हूँ। इधर तुम यह बात फैला दो कि शाम की सेनाएं मदीना पर आक्रमण करने आ रही हैं। यदि मेरी योजना सफल हो गई तो फिर भी इन दोनों की मुठभेड़ हो जाएगी और यदि मेरी योजना असफल रही तो इन अफ़वाहों के कारण मुसलमान शायद शाम पर स्वयं आक्रमण कर दें और इस प्रकार क़ैसर की सरकार और उनमें लड़ाई आरम्भ हो जाएगी और हमारा काम बन जाएगा। अतः यह प्रेरणा दे कर यह व्यक्ति शाम की ओर कूच कर गया। मदीना के मुनाफ़िकों ने मदीना में प्रतिदिन ऐसी अफ़वाहें फैलाना शुरू कर दीं कि हमें अमुक दल मिला था, उसने बताया कि शाम

की सेना मदीना पर आक्रमण करने की तैयारी कर रही है। दूसरे दिन पुनः कह देते थे कि अमुक-अमुक काफ़िले के लोग हमें मिले थे उन्होंने कहा था कि शाम की सेना मदीना पर चढ़ाई करने वाली है। यह समाचार इतनी तीव्रता से फैले कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने उचित समझा कि आप[स.] इस्लामी सेना लेकर स्वयं शाम की सेनाओं के मुकाबले के लिए जाएँ। यह समय मुसलमानों के लिए नितान्त कष्टदायक था। दुर्भिक्ष का वर्ष था। गत मौसम में अनाज और फल की फसल बहुत कम हुई थी तथा इस मौसम की फ़सलें अभी पैदा नहीं हुई थीं। सितम्बर या अक्टूबर का प्रारम्भ था जब आप इस संग्राम के लिए निकले। मुनाफ़िक़ तो जानते थे कि यह सब छल है और यह समस्त छल इसलिए किया है कि यदि शाम की सेना आक्रमणकारी न हुई तो मुसलमान स्वयं शामी सेना से जा भिड़ें और इस प्रकार तबाह हो जाएँ। मौता-युद्ध की परिस्थितियां उनके सामने थीं। उस समय मुसलमानों को इतनी विशाल सेना का सामना करना पड़ा था कि वे बहुत कुछ हानि उठाकर बड़ी कठिनाई से बचे थे। अब वे एक दूसरा 'मौता' अपनी आँखों से देखना चाहते थे जिसमें स्वयं रसूलुल्लाह (स.अ.व.) नऊज़ुबिल्लाह शहीद हो जाएँ। इसलिए एक ओर तो मुनाफ़िक़ प्रतिदिन ये समाचार फैला रहे थे कि अमुक माध्यम से ज्ञान हुआ है कि शाम की सेनाएं आ रही हैं और दूसरी ओर लोगों को भयभीत कर रहे थे कि इतनी विशाल सेना का मुकाबला आसान नहीं। तुम्हें युद्ध के लिए नहीं जाना चाहिए। इन कार्यवाहियों से उनका उद्देश्य यह था कि मुसलमान शाम पर आक्रमण करने के लिए जाएँ तो सही परन्तु जहाँ-जहाँ तक संभव हो कम से कम संख्या में जाएँ ताकि उनकी पराजय और अधिक निश्चित हो जाए परन्तु मुसलमान रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की इस घोषणा पर कि हम शाम की ओर जाने वाले हैं वफ़ादारी और जोश से अग्रसर होकर क़ुरबानियां दे रहे थे। निर्धन मुसलमानों के पास युद्ध सामग्री

थी कहां? सरकारी ख़ज़ाना भी ख़ाली था। उनके समृद्धिशाली भाई ही उनकी सहायता के लिए आ सकते थे। अतः प्रत्येक व्यक्ति क़ुर्बानी में परस्पर प्रतिस्पर्धा कर रहा था। हज़रत उस्मान[रज़ि.] ने उस दिन अपने धन का अधिकांश भाग रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सेवा में प्रस्तुत कर दिया जो एक हज़ार स्वर्ण दीनार था अर्थात् पच्चीस हज़ार रुपए। इसी प्रकार अन्य सहाबा ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनुदान दिए और ग़रीब मुसलमानों के लिए सवारियां या तलवारें या बर्छे उपलब्ध किए गए। सहाबा में क़ुर्बानी का इतना जोश था कि यमन के कुछ लोग जो मुसलमान होकर हिजरत करके मदीना आए थे और बहुत ही दीन अवस्था में थे उनके कुछ लोग आप[स.] की सेवा में उपस्थित हुए और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! हमें भी अपने साथ ले चलिए हम कुछ और नहीं चाहते, हम केवल यह चाहते हैं कि हमें वहाँ तक पहुँचने का सामान मिल जाए। क़ुर्आन करीम में इन लोगों का वर्णन इन शब्दों में आता है—

وَّلَا عَلَى الَّذِيْنَ اِذَا مَاۤ اَتَوْكَ لِتَحْمِلَهُمْ قُلْتَ لَاۤ اَجِدُ مَاۤ اَحْمِلُكُمْ عَلَيْهِ

تَوَلَّوْا وَّاَعْيُنُهُمْ تَفِيْضُ مِنَ الدَّمْعِ حَزَنًا اَلَّا يَجِدُوْا مَا يُنْفِقُوْنَ

(सूरह तौबा-92)

अर्थात् इस युद्ध में भाग न लेने का उन लोगों पर कोई पाप नहीं जो तेरे पास इसलिए आते हैं कि तू उनके लिए ऐसा सामान उपलब्ध कर दे कि जिसके द्वारा वे वहाँ पहुँच सकें परन्तु तू ने उन से कहा कि मेरे पास तो तुम्हें वहाँ पहुँचाने का कोई सामान नहीं तब वे तेरी सभा से उठ कर चले गए इस अवस्था में कि इस खेद से उनकी आखों से आँसू जारी थे कि खेद कि उनके पास कोई धन नहीं जिसे व्यय करके आज वे इस्लाम की सेवा कर सकें। अबू मूसा इन लोगों के सरदार थे। जब उन से पूछा गया कि आप ने इस समय रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से क्या मांगा था? तो

उन्होंने कहा— ख़ुदा की क़सम ! हमने ऊँट नहीं माँगे, हमने घोड़े नहीं मांगे, हमने केवल यह कहा था कि हम नंगे पैर हैं और इतनी यात्रा पैदल नहीं कर सकते। यदि हमें केवल जूतों के जोड़े मिल जाएँ तो हम जूते पहन कर ही भागते हुए अपने भाइयों के साथ इस युद्ध में भाग लेने के लिए पहुँच जाएँगे। चूंकि सेना को शाम की ओर जाना था तथा मौता-युद्ध का दृश्य मुसलमानों की आँखों के सामने था। इसलिए प्रत्येक मुसलमान के हृदय में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के प्राणों की रक्षा का विचार सब विचारों पर प्रमुख था। स्त्रियां तक भी इस ख़तरे को महसूस कर रही थीं और अपने पतियों तथा अपने बेटों को युद्ध पर जाने की नसीहत कर रही थीं। वह वफ़ादारी और जोश का अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है कि एक सहाबी जो किसी कार्य के लिए बाहर गए हुए थे उस समय वापस लौटे जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) सेना-सहित मदीना से प्रस्थान कर चुके थे। एक लम्बे समय के वियोग के पश्चात् जब उन्होंने इस विचार से अपने घर में प्रवेश किया कि अपनी प्रिय पत्नी को जाकर देखेंगे और प्रसन्न होंगे। उन्होंने अपनी पत्नी को घर के आंगन में बैठे देखा, बड़े प्रेम से गले लगाने और प्यार करने के लिए शीघ्रता से उनकी ओर आगे बढ़े। जब वह अपनी पत्नी के निकट गए तो पत्नी ने दोनों हाथों से धक्का देकर पीछे हटा दिया। उस सहाबी ने आश्चर्य से अपनी पत्नी का मुँह देखा और पूछा इतने समय के पश्चात् मिलने पर ऐसा व्यवहार क्यों? पत्नी ने कहा— क्या तुम्हें शर्म नहीं आती ख़ुदा का रसूल उस ख़तरे के स्थान पर जा रहा है और तुम अपनी पत्नी से प्रेम करने के लिए आ रहे हो। पहले जाओ अपना कर्त्तव्य पूरा करो, ये बातें उसके बाद देखी जाएँगी। वह सहाबी तुरन्त घर से बाहर निकल गए, अपनी सवारी पर काठी कसी और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से तीन कोस पर जा कर मिल गए।

काफ़िर तो यह समझते थे कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इन अफ़वाहों

के आधार पर बिना सोचे-समझे शाम की सेनाओं पर आक्रमण कर देंगे, परन्तु आप[स.] तो इस्लामी आचरणों की पाबन्दी करने वाले थे। जब आप शाम देश के निकट 'तबूक' के स्थान पर पहुँचे तो आप ने इधर-उधर लोगों को भेजा ताकि पता लगाएँ कि वस्तु स्थिति क्या है। ये दूत सर्वसम्मति से यह समाचार लाए कि कोई शामी सेना इस समय एकत्र नहीं हो रही। इस पर आप[स.] वहाँ कुछ दिन ठहरे तथा आस-पास के कुछ क़बीलों से समझौते करके बिना किसी युद्ध के वापस आ गए।

आप की यह यात्रा दो-ढाई माह की थी। जब मदीना के मुनाफ़िकों को मालूम हुआ कि युद्ध आदि तो कुछ नहीं हुआ और आप[स.] कुशलतापूर्वक आ रहे हैं तो वे समझ गए कि हमारे छल-कपट से परिपूर्ण षड्यंत्रों का भेद अब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर प्रकट हो गया है और कदाचित अब हम दण्ड से नहीं बच सकेंगे। तब उन्होंने मदीना से कुछ दूरी पर कुछ लोग एक ऐसे मार्ग पर बैठा दिए जो बहुत तंग था, जिस पर केवल एक सवार गुज़र सकता था। जब आप[स.] उस स्थान के समीप पहुँचे तो आप[स.] को अल्लाह तआला ने वह्यी के द्वारा बता दिया कि आगे शत्रु मार्ग के दोनों ओर छुपा बैठा है। आप[स.] ने एक सहाबी को आदेश दिया— जाओ और वहाँ जाकर देखो। वह सवारी को तेज़ी के साथ चला कर वहाँ पहुँचे तो उन्होंने वहाँ कुछ लोग छुपे हुए देखे जो इस प्रकार छुपे बैठे थे जैसा कि आक्रमणकारी बैठा करते हैं। इन के पहुँचने पर वे वहाँ से भाग गए, परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) को उन का पीछा करना उचित मालूम न हुआ। जब आप[स.] मदीना पहुँचे तो मुनाफ़िकों ने जो इस युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए थे तरह-तरह के बहाने बनाने लगे तथा आपने उन्हें स्वीकार कर लिया परन्तु अब समय आ गया था कि मुसलमानों पर मुनाफ़िकों

की वास्तविकता प्रकट कर दी जाए। अतः रसूले करीम (स.अ.व.) को ख़ुदा तआला ने वह्यी के द्वारा आदेश दिया कि 'क़बा' की वह मस्जिद जो मुनफ़िक़ों ने इसलिए बनाई थी कि नमाज़ के बहाने से वहाँ, एकत्र हुआ करेंगे और छल-कपट पूर्ण विचार-विमर्श किया करेंगे। वह गिरा दी जाए और उन्हें बाध्य किया जाए कि वे मुसलमानों की दूसरी मस्जिदों में नमाज़ पढ़ा करें परन्तु इतने बड़े षड्यंत्र के बावजूद उन्हें कोई शारीरिक या आर्थिक दण्ड न दिया गया।

तबूक से वापसी के पश्चात् तायफ़ के लोगों ने भी आकर आप का आज्ञापालन स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् अरब के विभिन्न क़बीलों ने पृथक-पृथक आकर इस्लामी सरकार में प्रवेश करने की आज्ञा चाही और थोड़े ही समय में सम्पूर्ण अरब पर इस्लामी झण्डा लहराने लगा।

हज्जतुल वदाअ तथा हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का ख़ुत्बा (भाषण)

हिजरत के नौवें वर्ष में आप ने मक्का में जाकर हज किया और उस दिन आप पर क़ुर्आन करीम की यह प्रसिद्ध आयात उतरी कि—

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ وَاَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِيْ وَرَضِيْتُ
لَكُمُ الْاِسْلَامَ دِيْنًا ؕ (सूरह माइदह-4)

अर्थात् आज मैंने तुम्हारे धर्म को तुम्हारे लिए पूर्ण कर दिया है और जितने आध्यात्मिक इनाम ख़ुदा तआला की ओर से बन्दों पर हो सकते हैं वे सब मैंने तुम्हारी उम्मत को प्रदान कर दिए हैं और इस बात का निर्णय कर दिया है कि तुम्हारा धर्म शुद्ध रूप से ख़ुदा की आज्ञाकारिता पर आधारित हो।

यह आयत आप ने मुज़दलिफ़ा के मैदान में जब लोग हज के लिए

एकत्र होते हैं सब लोगों के सामने उच्च स्वर में पढ़ कर सुनाई। मुज़दलिफ़ा से लौटने पर हज के नियमों के अनुसार आप मिना में ठहरे और ग्यारहवीं ज़ुलहज्ज को आपने समस्त मुसलमानों के सामने खड़े होकर एक भाषण दिया, जिसका विषय यह था—

> हे लोगो ! मेरी बात को ठीक प्रकार से सुनो क्योंकि मैं नहीं जानता कि इस वर्ष के पश्चात् मैं तुम लोगों के मध्य कभी भी इस मैदान में खड़े होकर कोई भाषण दूँगा। तुम्हारे प्राणों और तुम्हारी धन-सम्पत्तियों को ख़ुदा तआला ने एक-दूसरे के आक्रमण से प्रलय के दिन तक के लिए सुरक्षित कर दिया है। ख़ुदा तआला ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए पैतृक सम्पति में उस का भाग निर्धारित कर दिया है। कोई ऐसी वसीयत वैध नहीं जो दूसरे उत्तराधिकारी के अधिकार को हानि पहुँचाए, जो बच्चा जिसके घर में पैदा होगा वह उसका समझा जाएगा और यदि दुराचार के कारण उस बच्चे का दावा करेगा तो वह स्वयं शरीअत के दण्ड का पात्र होगा, जो व्यक्ति किसी के पिता की ओर स्वयं को सम्बद्ध करता है या किसी को झूठे तौर पर अपना स्वामी बताता है, ख़ुदा और उसके फ़रिश्तों तथा उस पर सभी लोगों की ला'नत है। हे लोगो ! तुम्हारे कुछ अधिकार तुम्हारी पत्नियों पर हैं तथा तुम्हारी पत्नियों के कुछ अधिकार तुम पर हैं। उन पर तुम्हारा अधिकार यह है कि वे सतीत्त्व का जीवन व्यतीत करें और ऐसी अधमता का ढंग धारण न करें जिस से पतियों का लोगों के मध्य अपमान हो। यदि वे ऐसा करें तो तुम (जैसा कि क़ुर्आन करीम का निर्देश है कि नियमानुसार छान-बीन और अदालत के निर्णय के पश्चात् ऐसा किया जा सकता है) उन्हें दण्ड दे सकते हो परन्तु इसमें भी कठोरता न करना परन्तु यदि वे ऐसा कार्य नहीं करतीं जो ख़ानदान और

पति के सम्मान को बट्टा लगाने वाला हो तो तुम्हारा काम है कि तुम अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार उन के भोजन और लिबास आदि का प्रबन्ध करो और स्मरण रखो कि अपनी पत्नियों से सदैव सद्व्यवहार करना; क्योंकि ख़ुदा तआला ने उन की देखभाल का दायित्व तुम्हें दिया है, स्त्री एक कमज़ोर हस्ती होती है, वह अपने अधिकारों की स्वयं रक्षा नहीं कर सकती। जब तुम ने उन से विवाह किया तो ख़ुदा तआला को उनके अधिकारों का प्रतिभू (ज़ामिन) बनाया था और ख़ुदा तआला के क़ानून के अनुसार तुम उन्हें अपने घरों में लाए थे। (अतः ख़ुदा तआला की ज़मानत का तिरस्कार न करना और स्त्रियों के अधिकारों को अदा करने का सदैव ध्यान रखना) हे लोगो ! तुम्हारे हाथों में अभी कुछ युद्ध में बन्दी बनाए हुए लोग भी शेष हैं। मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ कि उन्हें वही खिलाना जो तुम स्वयं खाते हो और वही पहनाना जो तुम स्वयं पहनते हो। यदि उन से कोई ऐसा अपराध हो जाए जो तुम क्षमा नहीं कर सकते तो उन्हें किसी अन्य को बेच दो क्योंकि वे ख़ुदा के बन्दे हैं, उन्हें कष्ट देना किसी भी अवस्था में उचित नहीं, हे लोगो ! मैं तुम से जो कुछ कहता हूँ सुनो और अच्छी तरह स्मरण रखो— प्रत्येक मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है, तुम सब एक ही श्रेणी के हो तुम लोग चाहे किसी जाति या किसी भी प्रतिष्ठा के हो मनुष्य होने की दृष्टि से एक ही श्रेणी रखते हो या यह कहते हुए आप ने अपने दोनों हाथ उठाए और दोनों हाथों की उंगलियां मिला दीं और कहा— जिस प्रकार दोनों हाथों की उंगलियां आपस में बराबर हैं इसी प्रकार तुम समस्त मानव आपस में समान हो। तुम्हें एक दूसरे पर श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं। तुम आपस में भाइयों की तरह हो। पुनः

फ़रमाया— क्या तुम्हें ज्ञात है आज कौन सा महीना है ? क्या तुम्हें ज्ञात है यह क्षेत्र कौन सा है? क्या तुम्हें ज्ञात है यह दिन कौन सा है? लोगों ने कहा— हाँ ! यह पवित्र महीना है, यह पवित्र क्षेत्र है तथा यह हज का दिन है। प्रत्येक उत्तर पर रसूलुल्लाह (स.अ-.व.) फ़रमाते थे— जिस प्रकार यह महीना पवित्र है, जिस प्रकार यह क्षेत्र पवित्र है, जिस प्रकार यह दिन पवित्र है, उसी प्रकार अल्लाह तआला ने प्रत्येक मनुष्य की जान (प्राण) और माल को पवित्र ठहराया है तथा किसी की जान (प्राण) और किसी माल पर आक्रमण करना उसी प्रकार अवैध है जिस प्रकार इस महीने इस क्षेत्र और इस दिन का अपमान करना। यह आदेश आज के लिए नहीं अपितु उस दिन तक के लिए है कि तुम ख़ुदा से जाकर मिलो। पुनः फ़रमाया— ये बातें जो मैं तुम से आज कहता हूँ उन्हें संसार के किनारों तक पुहँचा दो; क्योंकि संभव है कि जो लोग आज मुझ से सुन रहे हैं उन के बारे में वे लोग उन पर अधिक आचरण करने वाले हों जो मुझ से नहीं सुन रहे।"

यह संक्षिप्त सदुपदेश प्रकाश डालता है कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को प्रजा का कल्याण और उनकी शान्ति का कितना ध्यान था तथा स्त्रियों और निर्बलों के अधिकारों का आप कितना ध्यान रखते थे। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) महसूस कर रहे थे अब मृत्यु का समय निकट है। कदाचित ख़ुदा तआला आप को सूचित कर चुका था कि अब आप के जीवन के दिन थोड़े रह गए हैं। आप[स.] ने न चाहा कि वे स्त्रियां जो मानव-उत्पत्ति के प्रारम्भ से पुरुषों की दासियाँ ठहराई जाती थीं उनके अधिकारों की रक्षा का आदेश देने से पूर्व आप इस नश्वर संसार से परलोक सिधार जाएँ, वे युद्ध में बनाए गए क़ैदी जिन्हें लोग दास की संज्ञा

दिया करते थे और जिन पर नाना-प्रकार के अत्याचार किया करते थे। आप ने न चाहा कि उन के अधिकारों को सुरक्षित कर देने से पूर्व आप इस संसार से चल बसें। वह लोगों का परस्पर भेद-भाव जो मनुष्यों में से कुछ को तो आकाश पर चढ़ा देता था और कुछ को रसातल में गिरा देता था जो जातियों को जातियों के साथ तथा देशों को देशों के साथ भेदभाव और झगड़ों को जन्म देने और उन्हें जारी रखने का कारण बनता था, आप[स.] ने न चाहा कि इस भेदभाव और अन्तर को मिटाने से पूर्व इस संसार से गुज़र जाएँ। वह एक दूसरे के अधिकारों का हनन करना तथा एक दूसरे के प्राण लेने और धन हड़पने को अपने लिए वैध समझना जो हमेशा ही असभ्यता के युग में मनुष्य का सब से बड़ा अभिशाप होता है आप[स.] ने न चाहा कि जब तक उस भावना को कुचल न दें और जब तक लोगों के प्राणों और उनकी धन-सम्पत्तियों को वही पवित्रता और वही सम्मान प्रदान न कर दें जो ख़ुदा तआला के पवित्र महीनों और उसके पवित्र और पुनीत स्थानों को प्राप्त है आप इस संसार से कूच करें। क्या स्त्रियों से सहानुभूति, अधीन लोगों से हमदर्दी, प्रजा में अमन और शान्ति स्थापित करने की इच्छा तथा समस्त मनुष्यों में समानता की स्थापना की इतनी प्रबल अभिलाषा संसार में किस मनुष्य में पाई जाती है? क्या आदम (ADAM) से लेकर आज तक किसी मनुष्य ने भी प्रजा की सहानुभूति की ऐसी भावना और ऐसी उत्तेजना दिखाई है? यही कारण है कि इस्लाम में आज तक स्त्री अपनी जायदाद की स्वामिनी है जबकि यूरोप ने इस श्रेणी को इस्लाम के तेरह सौ वर्ष पश्चात प्राप्त किया है। यही कारण है कि इस्लाम में प्रवेश करने वाला प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के समान हो जाता है चाहे वह कैसी ही छोटी और दलित समझी जाने वाली जाति का हो। आज़ादी और समानता की भावना को केवल और केवल इस्लाम ने ही संसार में स्थापित किया है और इस प्रकार से स्थापित किया है कि आज तक संसार की अन्य जातियां

इसका उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकतीं। हमारी मस्जिद में एक राजा और एक अति सम्माननीय धार्मिक पेशवा और एक सामान्य मनुष्य बराबर हैं, उन में कोई अन्तर और भेद-भाव नहीं कर सकता जबकि अन्य धर्मों के उपासना-स्थल बड़ों और छोटे लोगों के अन्तर को अब तक प्रकट करते चले आए हैं। यद्यपि वे जातियां कदाचित आज़ादी और समानता का दावा मुसलमानों से भी अधिक उच्च स्वर से कर रही हैं।

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का निधन

आप[स.] जब इस यात्रा से वापस आ रहे थे तो आप ने मार्ग में अपने सहाबा को अपनी मृत्यु की सूचना दी। आप ने फ़रमाया— हे लोगो ! मैं तुम्हारे समान एक मनुष्य हूँ। निकट है कि ख़ुदा का संदेशवाहक मेरी ओर आए और मुझे उसका उत्तर देना पड़े। पुनः फ़रमाया— हे लोगो ! मुझे मेरे दयालु और हर बात का ज्ञान रखने वाले ख़ुदा ने सूचना दी है कि नबी अपने से पूर्व नबी की आधी आयु पाता है (मुहम्मद (स.अ.व.) को बताया गया था कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की आयु 120 वर्ष के लगभग थी और इस से आप ने तर्क लिया कि मेरी आयु साठ वर्ष के लगभग होगी। चूंकि उस समय आप की आयु बासठ-तिरेसठ वर्ष की थी। आप ने इस ओर संकेत किया कि अब मेरी आयु समाप्त होने वाली प्रतीत होती है। इस हदीस का यह अर्थ नहीं कि हर नबी अपने से पूर्व नबी से आधी आयु पाता है अपितु इस हदीस में आप[स.] ने केवल हज़रत ईसा[अ.] की आयु और अपनी आयु की तुलना की है) और मेरा विचार है कि अब मैं शीघ्र बुलाया जाऊँगा और मैं मृत्यु पा जाऊँगा। हे मेरे साथियो ! मुझ से भी ख़ुदा के समक्ष प्रश्न किया जाएगा, तुम उस समय क्या कहोगे? उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! हम कहेंगे कि आप ने बहुत उचित प्रकार से इस्लाम का प्रचार किया तथा आप[स.] ने अपने जीवन को ख़ुदा के धर्म की सेवा के

लिए पूर्णतया समर्पित कर दिया और आप[स.] ने समस्त लोगों की भलाई को चर्मोत्कर्ष तक पहुँचा दिया। अल्लाह आपको हमारी ओर से उत्तम से उत्तम प्रतिफल प्रदान करे। आप[स.] ने फ़रमाया— क्या तुम इस बात की गवाही नहीं देते कि अल्लाह एक ही है और मुहम्मद (स.अ.व.) उसके बन्दे और रसूल हैं तथा स्वर्ग भी सत्य है और नर्क भी सत्य है और यह कि मृत्यु भी प्रत्येक मनुष्य पर अवश्य आती है और मृत्योपरान्त जीवन भी प्रत्येक मनुष्य को अवश्य मिलेगा और प्रलय भी अवश्य आने वाली है और अल्लाह तआला समस्त लोगों को कब्रों से पुनः जीवित करके एकत्र करेगा। उन्होंने कहा— हाँ। हे अल्लाह के रसूल ! हम इसकी गवाही देते हैं। इस पर आप ने ख़ुदा तआला को सम्बोधित करते हुए कहा— हे अल्लाह ! तू भी गवाह रह कि मैंने इन्हें इस्लाम के सिद्धान्त पहुँचा दिए हैं।

मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) इस हज से वापस आने के पश्चात् मुसलमानों के शिष्टाचार और कर्मों के सुधार में व्यस्त रहे तथा मुसलमानों को अपने निधन पर पहुँचने वाले आघात को सहन करने के लिए तैयार करते रहे। एक दिन आप भाषण देने के लिए खड़े हुए और फ़रमाया— आज मुझे अल्लाह तआला की ओर से इल्हाम हुआ है कि उस दिन को स्मरण रखो जब ख़ुदा तआला की सहायता और उसकी ओर से विजयें पूर्वकालीन युग से भी अधिक तीव्रता से आएंगी तथा प्रत्येक धर्म और जाति के लोग इस्लाम में समूह के समूह प्रवेश करेंगे। अतः हे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अब तुम ख़ुदा की स्तुति में लग जाओ और उस से दुआ करो कि धर्म की नींव जो तुम ने रखी वह उसमें से हर प्रकार के दोषों को दूर कर दे। यदि तुम ये दुआएं करोगे तो ख़ुदा ताआला तुम्हारी दुआओं को अवश्य सुनेगा। इसी प्रकार आप ने फ़रमाया— ख़ुदा तआला ने अपने एक बन्दे से कहा कि चाहे तुम हमारे पास आ जाओ और चाहे तुम संसार को सुधारने का कार्य अभी कुछ और समय तक करो। ख़ुदा

के उस बन्दे ने इसके उत्तर में कहा कि मुझे आप के पास आना अधिक प्रिय है। जब आप ने सभा में यह बात सुनाई तो हज़रत अबू-बकर[रज़ि.] रो पड़े। सहाबा को आश्चर्य हुआ कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) तो इस्लाम की विजयों का समाचार सुना रहे हैं और अबू बकर[रज़ि.] रो रहे हैं। हज़रत उमर[रज़ि.] कहते है, मैंने कहा— इस वृद्धे को क्या हो गया कि यह ख़ुशी के समाचार पर रोता है परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) समझते थे कि आप की बात को अबू बकर ही सही समझता है और उस ने यह समझ लिया है कि इस सूरह में मेरी मृत्यु का समाचार है। आप[स.] ने फ़रमाया— अबू बकर[रज़ि.] मुझे बहुत ही प्रिय है। यदि अल्लाह तआला के अतिरिक्त किसी से असीम प्रेम करना वैध होता तो मैं अबू बकर[रज़ि.] से ऐसा ही प्रेम करता। हे लोगो ! मस्जिद में जितने लोगों के द्वार खुलते हैं आज से सब द्वार बन्द कर दिए जाएँ केवल अबू बकर[रज़ि.] का द्वार खुला रहे। इसमें यह भविष्यवाणी थी कि रसूले करीम (स.अ.व.) के बाद हज़रत अबू बकर[रज़ि.] खलीफ़ा होंगे और नमाज़ पढ़ाने के लिए मस्जिद में उस मार्ग से आना पड़ेगा। इस घटना के काफ़ी समय पश्चात् जब हज़रत उमर[रज़ि.] ख़लीफ़ा थे। एक बार आप सभा में बैठे हुए थे कि आप ने फ़रमाया— إِذَا جَآءَ نَصْرُ اللّٰهِ وَالْفَتْحُ वाली सूरह में किस संदर्भ की ओर संकेत है? कथित संदर्भ में आप ने अपने साथियों की परीक्षा ली जिसे समझने से वे इस सूरह के उतरने के समय असमर्थ रहे थे। इब्ने अब्बास[रज़ि.] जो इस घटना के समय दस ग्यारह वर्ष के थे। उस समय लगभग सत्रह-अठारह वर्ष के नवयुवक थे, शेष सहाबा तो न बता सके, इब्ने अब्बास ने कहा— हे अमीरुल मोमिनीन (मोमिनो के सरदार)! इस सूरह में रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की मृत्यु का समाचार दिया गया है क्योंकि नबी जब अपना काम कर लेता है तो फिर संसार में रहना पसन्द नहीं करता। हज़रत उमर[रज़ि.] ने कहा— सत्य है। मैं तुम्हारे विवेक की प्रशंसा करता हूँ। जब यह सूरह उतरी अबू बकर उसका मतलब समझे

परन्तु हम न समझ सके।

अन्ततः वह दिन आ गया जो प्रत्येक मनुष्य पर आता है। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अपना काम संसार में समाप्त कर चुके, ख़ुदा की वह्यी (ईशवाणी) पूर्ण रूप से आ चुकी, मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की पवित्र शक्ति से एक नई कौम और, नए आकाश और नई ज़मीन की नींव रख दी गई। बोने वाले ने ज़मीन में हल चलाया, पानी दिया, बीज बोया और फसल तैयार की। अब फसल के काटने का काम उसका दायित्त्व न था। वह एक मज़ूदर की तरह आया और उसे संसार से एक मज़ूदर की तरह ही जाना था, क्योंकि उसका इनाम सांसारिक वस्तुएं नहीं थीं अपितु उसका इनाम अपने सृजनकर्ता तथा अपने भेजने वाले की प्रसन्नता थी जब फ़सल कटने पर आई तो उसने अपने रब्ब से यही मनोकामना की कि अब वह उसे संसार से उठा ले और यह फसल बाद में दूसरे लोग काटें। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) बीमार हुए। कुछ दिन तो कष्ट उठा कर भी मस्जिद में नमाज़ पढ़ाने के लिए आते रहे; अन्त में यह शक्ति भी न रही कि आप मस्जिद में आ सकते। सहाबा कभी सोच भी नहीं सकते थे कि आप मृत्यु पा जाएंगे, परन्तु आप बार-बार उन्हें अपने मृत्यु का समय निकट आने का समाचार सुनाते। एक दिन सहाबा[रज़ि.] की सभा लगी हुई थी, आप[स.] ने फ़रमाया— यदि किसी व्यक्ति से ग़लती हो जाए तो उचित यही होता है कि संसार में उसका निवारण कर दे ताकि ख़ुदा के समक्ष लज्जित न हो। यदि मेरे हाथ से अनजान में किसी का हक़ मारा गया हो तो वह मुझ से अपना हक़ मांग ले और यदि मुझ से अनजाने में किसी को कष्ट पहुँचा हो तो वह आज मुझ से बदला ले ले; क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मुझे ख़ुदा तआला के सामने लज्जित होना पड़े। दूसरे सहाबा पर तो यह सुनकर आर्द्रता छा गई तथा उनके हृदय में यही विचार गुज़रने लगे कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) किस प्रकार कष्ट सहन

करके उनके आराम के साधन पैदा करते रहे हैं, आप किस प्रकार स्वयं भूखे रहकर उनको खिलाते रहे हैं, अपने कपड़ों में पैबन्द लगा कर उनको कपड़े पहनाते रहे हैं फिर भी आपको दूसरों के अधिकारों की इतनी चिन्ता है कि आप उन से मांग करते हैं कि अनजाने में मुझ से किसी को कष्ट पहुँचा हो तो आज मुझ से बदला ले ले। इस पर एक सहाबी आगे बढ़े और उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मुझे एक बार आप से कष्ट पहुँचा था। एक युद्ध में सेना को पंक्तिबद्ध किया जा रहा था कि आप पंक्ति में होकर आगे बढ़े; उस समय आप की कुहनी मेरे शरीर को लग गई थी। चूंकि आप ने फ़रमाया है कि अनजाने में भी यदि किसी को कष्ट पहुँचा हो तो मुझ से बदला ले ले। अत: मैं चाहता हूँ इस समय आप से उस कष्ट का बदला ले लूँ। सहाबा[रज़ि.] जो शोक-सागर में डूबे हुए थे, सहसा उन की अवस्था में परिवर्तन हुआ, उनकी आँखों से ज्वाला निकलने लगी और प्रत्येक व्यक्ति यह महसूम करता था कि यह व्यक्ति जिस ने ऐसे अवसर पर शिक्षा प्राप्त करने की बजाए ऐसी बात छेड़ दी है नितान्त कठोर दण्ड का पात्र है परन्तु उस सहाबी ने परवाह न की। आप[स.] ने फ़रमाया— तुम ठीक कहते हो। तुम्हारा अधिकार है कि बदला लो। आप ने करवट बदली और अपनी पीठ उसकी ओर कर दी तथा फ़रमाया— आओ मुझे कुहनी मार लो। उस सहाबी ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! जब मुझे कुहनी लगी थी उस समय मेरा शरीर नंगा था क्योंकि मेरे पास कुर्ता न था कि मैं उसे पहनता। आप ने फ़रमाया— मेरा कुर्ता उठा दो और नंगे शरीर पर कुहनी मार कर अपना बदला ले लो। उस सहाबी ने आप[स.] का कुर्ता उठाया तथा कांपते होठों और आँसू बहाती आँखों के साथ झुक कर आप[स.] की कमर का चुम्बन किया। आप[स.] ने फ़रमाया— यह क्या? उसने उत्तर में कहा— हे अल्लाह के रसूल ! जब आप फ़रमाते हैं कि आप की मृत्यु

①-बुख़ारी किताबुलमग़ाज़ी बाब मरज़ुन्नबिय्ये व वफ़ातोहू

निकट है तो आप को स्पर्श करने और आप को प्यार करने के अवसर हमें कब तक मिलेंगे। निःसंदेह युद्ध के अवसर पर मुझे आप की कुहनी लगी थी परन्तु कुहनी लगने का बदला लेने का विचार भी किसके हृदय में आ सकता है। मेरे हृदय में विचार आया कि जब आप[स.] फ़रमाते हैं कि आज मुझ से बदला ले लो तो चलो इस बहाने से मैं आप को प्यार कर लूँ[①]। वही सहाबा[रज़ि.] जिन के हृदय क्रोध से ख़ून हो रहे थे, इस बात को सुन कर उन्हीं के हृदय इस निराशा से भर गए कि काश यह अवसर हमें प्राप्त होता।

रोग बढ़ता गया, मृत्यु निकट आती गई। मदीना का सूर्य पहले की भांति पूर्ण आभा के साथ चमकने के बावजूद सहाबा की दृष्टि में पीला दिखाई देने लगा। दिन उदय होते थे परन्तु उनकी आँखों पर पर्दे पड़ते चले जाते थे। अन्ततः वह समय आ गया जब ख़ुदा के रसूल की आत्मा संसार को त्याग कर अपने सृजनकर्ता के समक्ष उपस्थित होने वाली थी। रसूले करीम (स.अ.व.) की श्वांस तेज चलने लगी तथा श्वांस प्रक्रिया में अवरोध आने लगा। आप[स.] ने हज़रत आइशा[रज़ि.] से फ़रमाया— मेरा सर उठा कर अपने सीने के साथ रख लो क्योंकि लेटे-लेटे साँस नहीं ली जाती। हज़रत आइशा[रज़ि.] ने आप[स.] का सर उठा कर अपने सीने के साथ लगा लिया और आप को सहारा देकर बैठ गईं। मृत्यु का कष्ट आप[स.] पर व्याप्त था, आप घबराहट से बैठे-बैठे कभी इस पहलू पर झुकते और कभी उस पहलू पर तथा फ़रमाते थे— ख़ुदा बुरा करे यहूद और नसारा का कि उन्होंने अपने नबियों के मरणोपरान्त उनकी क़ब्रों को मस्जिदें बना लिया[①]। यह आपकी अन्तिम वसीयत थी अपनी उम्मत के लिए, कि यद्यपि तुम मुझे समस्त नबियों से सर्वोत्तम देखोगे तथा सर्वाधिक सफल पाओगे परन्तु देखना मेरे मनुष्य होने को कभी न भूल जाना, ख़ुदा का स्थान ख़ुदा ही के लिए समझते रहना और मेरी क़ब्र को एक क़ब्र से

①-बुख़ारी किताबुल मग़ाज़ी बाब मरज़ुन्नबिय्ये व वफ़ातहू।

अधिक कभी कुछ न समझना। अन्य उम्मतें (क़ौमें) अपने नबियों की क़ब्रों को निःसंदेह मस्जिदें बना लें वहाँ बैठ कर चिल्ले किया करें और उन पर चढ़ावे चढ़ाएँ या भेटें प्रस्तुत करें, परन्तु तुम्हारा यह काम नहीं होना चाहिए। तुम एक ख़ुदा की उपासना को स्थापित करने के लिए खड़े किए गए हो। यह कहते-कहते आप की आँखे चढ़ गईं तथा आप की जीभ पर ये शब्द जारी हुए—

اِلَى الرَّفِيْقِ الْاَعْلٰى اِلَى الرَّفِيْقِ الْاَعْلٰى

मैं अपने सर्वोच्चतम से सर्वोच्चतम नितान्त दयालु मित्र (ख़ुदा) की ओर जाता हूँ। यह कहते-कहते आपकी आत्मा इस पार्थिव शरीर से पृथक हो गई।

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के निधन पर सहाबा[रज़ि] की दशा

सहाबा[रज़ि.] को जब यह समाचार मस्जिद में मिला, जिन में से अधिकांश अपने कार्यों को छोड़कर मस्जिद में आपके स्वास्थ्य के बारे में शुभ समाचार सुनने की प्रतीक्षा में थे तो उन पर एक पर्वत टूट पड़ा। हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] उस समय कुछ समय के लिए बाहर काम से गए हुए थे। हज़रत उमर[रज़ि.] मस्जिद में थे। जब उन्होंने लोगों को यह बात कहते सुना कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का निधन हो चुका है तो उन्होंने म्यान से तलवार निकाल ली और कहा— ख़ुदा की क़सम ! जो व्यक्ति यह कहेगा कि मुहम्मद (स.अ.व.) का निधन हो गया है मैं उसकी गर्दन उड़ा दूँगा। अभी तक संसार में मुनाफ़िक (कपटाचारी) मौजूद हैं, इसलिए हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का निधन हीं हो सकता। यदि उनकी आत्मा (रूह) शरीर से पृथक हो गई है तो वह केवल मूसा के समान ख़ुदा तआला की भेंट के लिए गई है वह पुनः वापस आएगी

और संसार से मुनाफ़िकों (कपटाचारियों) का विनाश करेगी। इतना कह कर नंगी तलवार लेकर इस प्राणघातक समाचार के आघात से पागलों के समान इधर-उधर टहलने लगे और साथ-साथ यह भी कहते जाते थे कि यदि कोई व्यक्ति यह कहेगा कि मुहम्मद (स.अ.व.) का निधन हो गया है तो मैं उसका वध कर दूँगा। सहाबा कहते हैं कि जब हम ने हज़रत उमर^रज़ि.^ को इस प्रकार टहलते देखा तो हमारे हृदयों को भी ढारस मिली और हमने कहा कि उमर^रज़ि.^ सत्य कहते हैं। मुहम्मद (स.अ.व.) का निधन नहीं हुआ। लोगों को इस बात में अवश्य ग़लती लगी है तथा उमर^रज़ि.^ के कथन के साथ हमने अपने हृदयों को सन्तुष्ट करना आरम्भ किया कि इतने में कुछ लोगों ने दौड़ कर हज़रत अबू बकर^रज़ि.^ को वस्तु स्थिति से अवगत किया। वह भी मस्जिद में पहुँच गए परन्तु किसी से बात न की। सीधे घर में चले गए और जाकर हज़रत आइशा^रज़ि^ से पूछा क्या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का निधन हो गया है? हज़रत आइशा ने उत्तर दिया— हाँ ! आप रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास गए, आप के मुख से कपड़ा उठाया, आप के मस्तक को चूमा और आपकी आखों से प्रेम के चमकते हुए आँसू गिरे। आपने फ़रमाया— ख़ुदा की क़सम ख़ुदा आप पर दो मौतें नहीं लाएगा अर्थात् यह नहीं होगा कि एक तो आप शारीरिक तौर पर मृत्यु पा जाएँ और दूसरी मृत्यु आप पर यह आए कि आप^स.^ की जमाअत ग़लत आस्थाओं और ग़लत विचारों में पड़ जाए। इतना कह कर आप बाहर आए तथा लोगों की भीड़ को चीरते हुए ख़ामोशी के साथ मंच की और बढ़े। जब आप मंच पर खड़े हुए तो हज़रत उमर^रज़ि.^ भी तलवार खींच कर आप के पास खड़े हो गए इस नीयत से कि यदि अबू बकर ने यह कहा कि मुहम्मद रसूलुल्लाह मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं तो उन का वध कर दूँगा। आप बोलने लगे तो हज़रत उमर^रज़ि.^ ने आप का कपड़ा खींचा और आपको ख़ामोश करना चाहा परन्तु आप ने कपड़े को झटका देकर हज़रत उमर के हाथ से छुड़ा लिया और

फिर क़ुर्आन शरीफ़ की यह आयत पढ़ी—

وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ ۚ قَدْ خَلَتْ مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ ؕ اَفَا۠ئِنْ مَّاتَ اَوْ قُتِلَ

انْقَلَبْتُمْ عَلٰۤى اَعْقَابِكُمْ (आले इमरान-145)

अर्थात् हे लोगो ! मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अल्लाह तआला के केवल एक रसूल थे, उन से पहले और बहुत से रसूल गुज़रे हैं और सब के सब मृत्यु पा चुके हैं। क्या यदि वह मृत्यु पा जाएँ या मारे जाएँ तो तुम लोग अपने धर्म को त्याग कर विमुख हो जाओगे? धर्म ख़ुदा का है, मुहम्मद रसूलुल्लाह का तो नहीं। यह आयत उहद के समय उतरी थी जबकि कुछ लोग यह सुन कर फिर मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) शहीद हो गए हैं, निराश होकर बैठ गए थे। इस आयत के पढ़ने के बाद आपने फ़रमाया— हे लोगों !

مَنْ كَانَ يَعْبُدُ اللّٰهَ فَاِنَّ اللّٰهَ حَيٌّ لَا يَمُوْتُ

जो तुम में से अल्लाह तआला की उपासना करता था उसे स्मरण रखना चाहिए कि अल्लाह तआला जीवित है उस पर कभी मौत नहीं आ सकती

وَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ يَعْبُدُ مُحَمَّدًا فَاِنَّ مُحَمَّدًا قَدْمَاتَ

और तुम में से जो व्यक्ति महुम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की उपासना करता था तो उसे मैं बताए देता हूँ कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) मृत्यु पा चुके हैं। हज़रत उमर[रज़ि.] कहते हैं कि जिस समय अबू बक्र[रज़ि.] ने وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ वाली आयत को पढ़ना आरम्भ किया तो मेरे होश ठीक होने लगे। इस आयत के समाप्त करने तक मेरे आध्यात्मिक नेत्र खुल गए और मैं समझ गया कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) वास्तव में मृत्यु पा चुके हैं। तब मेरे घुटने काँप गए और मैं निढाल हो कर पृथ्वी पर गिर गया। वह व्यक्ति जो तलवार से अबू बक्र[रज़ि] को मारना

चाहता था, वह अबू बक्र[रज़ि.] के सत्य से भरे शब्दों के साथ स्वयं क़त्ल हो गया। सहाबा कहते हैं— उस समय हमें यों विदित होता था कि यह आयत आज ही उतरी है। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के निधन के शोक में यह आयत हम भूल ही गए थे। उस समय 'हस्सान बिन साबित' ने जो मदीना के एक बहुत बड़े कवि थे यह शे'र कहा—

كُنْتَ السَّوَادَ لِنَاظِرِیْ فَعَمِیَ عَلَیْکَ النَّاظِرُ
مَنْ شَآءَ بَعْدَکَ فَلْیَمُتْ فَعَلَیْکَ کُنْتُ اُحَاذِرُ

हे मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.)! तू तो मेरी आँख की पुतली था। आज तेरे मरने से मेरी आँखें अंधी हो गईं, अब तेरे मरने के पश्चात् कोई मरे, मेरा बाप मरे, भाई मरे, मेरा बेटा मरे मेरी पत्नी मरे। मुझे उन में से किसी की मृत्यु की परवाह नहीं। मैं तो तेरी ही मृत्यु से भयभीत रहता था।

यह शे'र प्रत्येक मुसलमान के हृदय की आवाज़ थी। इसके बाद कई दिनों तक मदीना की गलियों में मुसलमान स्त्रियां और मुसलमान बच्चे यही शे'र पढ़ते फिरते थे कि हे मुहम्मद स.अ.व.! तू तो हमारी आँखों की पुतली था, तेरे मरने से हम तो अंधे हो गए, अब हमारा कोई प्रियजन या परिजन मरे हमें परवाह नहीं, हमें तो तेरी ही मौत का भय था।

اَللّٰھُمَّ صَلِّ عَلٰی مُحَمَّدٍ وَ عَلٰی اٰلِ مُحَمَّدٍ وَبَارِکْ وَسَلِّمْ

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का चरित्रांकन

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की जीवन घटनाएँ दर्शाने के पश्चात् अब मैं आप के चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूँ। आपके महान् चरित्र के सम्बन्ध में सर्वसम्मत गवाही वह है जो आप की जाति ने दी कि आप की नुबुव्वत के दावे से

पूर्व आप की जाति ने आप का नाम अमीन (अमानतदार) और सिद्दीक़ (सत्यनिष्ठ) रखा। *(सीरत इब्ने हिशाम)*

संसार में ऐसे बहुत से लोग होते हैं जिनके बेईमानी से कलुषित चरित्र के संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। ऐसे लोग भी बहुत होते हैं जिन्हें किसी कठोर परीक्षा में से गुज़रने का अवसर प्राप्त नहीं होता, हां वे साधारण परीक्षाओं से गुज़रते हैं और उनकी ईमानदारी बनी रहती है परन्तु इसके बावजूद उन की जाति उन्हें कोई विशेष नाम नहीं देती, इसलिए कि विशेष नाम उस समय दिए जाते हैं जब कोई व्यक्ति किसी विशेष गुण में अन्य समस्त लोंगों पर श्रेष्ठता प्राप्त करता है। युद्ध में भाग लेने वाला प्रत्येक सैनिक अपने प्राणों को ख़तरे में डालता है परन्तु न अंग्रेज़ सरकार प्रत्येक सैनिक को विक्टोरिया क्रास देती है न जर्मन जाति प्रत्येक सैनिक को आइरन क्रास प्रदान करती है। फ्रांस में ज्ञान संबंधित पेशा रखने वाले लाखों हैं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को लेजिन आफ़ आनर (LEGION OF HONOUR) का फ़ीता नहीं मिलता। अतः किसी व्यक्ति का मात्र अमानतदार और सत्यनिष्ठ होना उसकी श्रेष्ठता पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं डालता परन्तु किसी व्यक्ति को समस्त जाति का अमीन और सत्यनिष्ठ की उपाधि दे देना यह एक असाधारण बात है। यदि मक्का के लोग प्रत्येक वंश के लोगों में से किसी को अमीन और सत्यनिष्ठ की उपाधि दिया करते तब भी अमीन और सत्यनिष्ठ की उपाधि पाने वाला महापुरुष समझा जाता परन्तु अरब का इतिहास बताता है कि अरब लोग प्रत्येक वंश में कभी किसी व्यक्ति को यह उपाधि नहीं देते थे अपितु अरब के सैकड़ों वर्ष के इतिहास में केवल एक ही उदाहरण मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का मिलता है कि आपको अरब वालों ने अमीन और सत्यनिष्ठ की उपाधि दी। अतः सदियों पुराने अरब के इतिहास में क़ौम के एक ही व्यक्ति को अमीन और सत्यनिष्ठ की उपाधि देना इस

बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उसकी ईमानदारी और उसका सत्य दोनों इतने उच्चकोटि के आचरण थे कि उसका उदाहरण अरबों में किसी अन्य व्यक्ति में नहीं पाया जाता था। अरब अपनी सूक्ष्म दृष्टि के कारण संसार में प्रसिद्ध थे। अत: जिस वस्तु को वे अनुपम कहें वह निश्चय ही संसार में अनुपम समझी जाने योग्य थी।

इसके अतिरिक्त आप[स.] के चरित्र पर आप[स.] के अवतरित होने पर एक सर्वसम्मत साक्ष्य आपकी धर्म पत्नी हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] ने दी जिसका उल्लेख आप[स.] की जीवनी में किया जा चुका है। अब मैं समवेत रूप से आपके आदर्श चरित्र पर प्रकाश डालने के निमित कुछ उदाहरण उपस्थित करना चाहता हूँ ताकि आपके आदर्श महान् चरित्र के गुप्त पहलुओं पर भी इस पुस्तक के पाठकों की दृष्टि पड़ सके।

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) की बाह्य और आंतरिक स्वच्छता

हज़रत मुहम्मद (स.अ.व.) के संबंध में आता है कि न आप कभी अपशब्दों का प्रयोग करते थे और न व्यर्थ क़समें खाते थे। *(बुख़ारी किताबुलअदब)* अरब में रहते हुए इस प्रकार का चरित्र एक असाधारण बात थी। हम यह तो नहीं कह सकते कि अश्लीलता अरब लोगों का स्वभाव बन चुकी थी; नि:संदेह अरब लोग आदत के तौर पर क़समें अवश्य खाया करते थे और आज भी अरब में क़सम का प्रचलन अत्यधिक है परन्तु मुहम्मद (स.अ.व.) के मानसपटल में ख़ुदा तआला की मान-प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) उसका अकारण (व्यर्थ की क़समें खाने के लिए) नाम लेना कभी पसन्द न करते थे। आप को स्वच्छता का विशेष ध्यान रहता था। आप हमेशा दातुन करते थे और इस पर इतना बल देते थे कि कई बार फ़रमाते यदि मुझे इस बात का भय न

हो कि मुसलमान कष्ट में पड़ जाएँगे तो मैं प्रत्येक नमाज़ से पूर्व दातुन करने का आदेश दे दूँ। *(मिश्कात किताबुत्तहारत)*

आप[स.] भोजन करने से पूर्व भी हाथ धोते तथा भोजन करने के पश्चात् भी हाथ धोते और कुल्ली करते थे अपितु प्रत्येक पकी हुई वस्तु खाने के पश्चात् कुल्ली करते। आप पकी हुई वस्तु खाने के पश्चात् बिना कुल्ली किए नमाज़ पढ़ना पसन्द नहीं करते थे। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)*

मस्जिदें जो मुसलमानों के एकत्र होने का एक मात्र स्थान हैं— आप उनकी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखते थे तथा आप[स.] मुसलमानों को इस बात की प्रेरणा देते थे कि वे विशेष तौर पर समारोहों के दिनों में मस्जिदों की स्वच्छता का ध्यान रखा करें तथा उनमें सुगंधि की व्यवस्था किया करें ताकि वायु शुद्ध हो जाए। *(मिश्कात किताबुस्सलात)* इसी प्रकार आप सहाबा को सदैव नसीहत करते रहते थे कि समारोहों के अवसर पर दुर्गन्धि फैलाने वाली वस्तुएँ खाकर न आया करें। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)* आप[स.] सड़कों की सफाई की विशेष तौर पर नसीहत करते रहते थे। यदि सड़क पर कूड़ा कर्कट, ईंट-पत्थर अथवा अन्य कोई कष्टदायक वस्तु पड़ी होती तो आप स्वयं उसे उठा कर सड़क के एक ओर कर देते और फ़रमाते कि जो व्यक्ति सड़कों की स्वच्छता का ध्यान रखता है ख़ुदा उस से प्रसन्न होता तथा ऐसा व्यक्ति पुण्य प्राप्ति का पात्र बन जाता है। *(मुस्लिम किताबुलबिर्रि वस्सिलह)* इसी प्रकार आप फ़रमाते थे कि मार्ग को रोकना नहीं चाहिए, मार्गों पर बैठना अथवा उनमें कोई ऐसी वस्तु डाल देना जिस से यात्रियों को कष्ट हो, या मार्ग पर शौचादि करना आदि कृत्यों को ख़ुदा तआला पसन्द नहीं करता। *(मिश्कात किताबुत्तहारत)*

पानी की शुद्धता का भी आप को विशेष तौर पर ध्यान रहता था। आप अपने सहाबा को हमेशा यह नसीहत करते थे कि अवरुद्ध हुए पानी में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं डालना चाहिए। इसी प्रकार अवरुद्ध हुए पानी

में शौचादि करने से भी बड़ी सख़्ती के साथ रोकते थे। *(बुख़ारी किताबुलवुज़ू)*

खान-पान में सादगी और संतुलन

आप खान-पान में सादगी को हमेशा दृष्टिगत रखते थे। भोजन में कभी नमक अधिक हो जाए या नमक न हो या खाना अच्छा न पका हो तो आप कभी भी रुष्ट नहीं होते थे, यथासंभव आप ऐसा भोजन खा कर पकाने वाले के हृदय को कष्ट से बचाने का प्रयास करते थे परन्तु यदि बिल्कुल ही असहनीय होता तो आप केवल हाथ रोक लेते थे और यह प्रकट नहीं होने देते थे कि मुझे इस भोजन से कष्ट पहुँचता है। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह अन अबी हुरैरा)* जब आप भोजन करने लगते तो भोजन की ओर ध्यान देते हुए बैठते तथा फ़रमाते कि मुझे यह अहंकारपूर्ण आचरण पसन्द नहीं कि कुछ लोग टेक लगाकर भोजन करते हैं जैसे वे भोजन से निस्पृह हैं। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)* जब आपके पास कोई वस्तु आती तो अपने साथियों में बांटकर खाते। एक बार आप के पास कुछ खजूरें आईं। आप ने साथियों का अनुमान लगाया तो सात-सात खजूरें प्रति सदस्य आती थीं; आप ने सात-सात खजूरें समस्त साथियों में बांट दीं। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह अन अबी हुरैरा)* हज़रत अबू हुरैरा वर्णन करते हैं कि

मुहम्मद रसूसुल्लाह (स.अ.व.) ने जौ की रोटी भी कभी भर पेट नहीं खाई। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)*

एक बार आप मार्ग से गुज़र रहे थे कि आप ने देखा कि लोगों ने एक बकरी भून कर रखी हुई है और लोग दा'वत का आनन्द ले रहे हैं। आप[स.] को देखकर उन लोगों ने आपको भी बुलाया परन्तु आप[स.] ने इन्कार कर दिया। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)* इसका कारण यह न था कि आप भुना हुआ गोश्त खाना पसन्द नहीं करते थे अपितु आपको इस प्रकार का आडम्बर पसन्द न था कि पास ही निर्धन लोग तो भूख से व्याकुल हों तथा उनकी

आखों के सामने लोग बकरे भून-भून कर खा रहे हों अन्यथा दूसरी हदीसों से सिद्ध है कि आप भुना हुआ गोश्त भी खाया करते थे।

हज़रत आइशा[रज़ि.] भी वर्णन करती हैं कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने कभी निरन्तर तीन दिन भर पेट भोजन नहीं किया तथा रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का जीवन पर्यन्त यही आचरण रहा। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)* भोजन के बारे में आप इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि कोई व्यक्ति किसी दा'वत के अवसर पर बिना निमंत्रण दूसरे के घर भोजन करने न चला जाए। एक बार एक व्यक्ति ने आप की दा'वत की और यह भी निवेदन किया कि आप अपने साथ अन्य चार लोगों को ले आएं। जब आप[स.] उसके घर के द्वार पर पहुँचे तो आपको मालूम हुआ कि एक पांचवां व्यक्ति भी आप के साथ है। जब घर वाला बाहर निकला तो आप[स.] ने उस से कहा— आप[स.] ने हम पाँच लोगों को ही दा'वत के लिए आमंत्रित किया था, आप चाहें तो इसे भी अनुमति दे दें और चाहें तो वापस कर दें। घर वाले ने कहा, नहीं। मैं उनको भी दा'वत में सम्मिलित करता हूँ, यह भी अन्दर आ जाएं। *(बुख़ारी किताबुल अतइमह)*

जब आप[स.] भोजन करते तो हमेशा बिस्मिल्लाह कह कर भोजन आरम्भ करते थे और भोजन समाप्त करने के पश्चात् इन शब्दों में ख़ुदा तआला का यशोगान करते—

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ حَمْدًا كَثِيْرًا طَيِّباً مُبَارَكًا فيه غَيْر مكفى ولا مودع
وَلَا مستغنى عنه ربَّنا۔

अर्थात् मैं उस ख़ुदा का यशोगान करता हूँ जिसने मुझे खाना खिलाया, वही सब प्रकार की श्रेष्ठ प्रशंसाओं तथा यशोगान का पात्र है, जो हर प्रकार की न्यूनताओं और त्रुटियों से रहित, विशुद्ध तथा सदा-सर्वदा बढ़ती रहने वाली हैं। हे ख़ुदा ! मेरे मन में कभी यह कुविचार उत्पन्न न हो कि मैंने धन्यवाद स्वरूप तेरा जितना गुणगान कर लिया, वही पर्याप्त है और

इस से अधिक यशोगान की आवश्यकता नहीं अथवा तेरा ऐसा भी कार्य है जिसकी प्रशंसा की आवश्यकता नहीं अथवा जो प्रशंसा के योग्य नहीं। हे हमारे रब्ब ! हमें ऐसा ही बना दे। कुछ वर्णनों में आता है कि आप कभी इन शब्दों में दुआ करते थे—

الحمدُ لِلّٰهِ الَّذِی کَفانا وَاروانا غیر مَکفی ولا مکفور

(बुख़ारी किताबुल अतइमह) अर्थात् सब प्रशंसा परमेश्वर की है जिसने हमारी भूख और प्यास दूर की। हमारा हृदय उसकी प्रशंसा करने से कभी तृप्त न हो तथा हम उसके कभी कृतघ्न न बनें।

आप हमेशा अपने सहाबा को उपदेश दिया करते थे कि पेट भरने से पूर्व खाना छोड़ दो तथा एक मनुष्य का भोजन दो मनुष्यों के लिए पर्याप्त होना चाहिए। *(बुख़ारी किताबुल अतअमह)* जब भी आप के घर में कोई अच्छी वस्तु पकती तो आप हमेशा अपने घर में कहते थे कि अपने पड़ोसियों का भी ध्यान रखो। *(मुस्लिम किताबुलबिर्रिवस्सिल:)* इसी प्रकार अपने पड़ोसियों के घरों में आप अक्सर उपहार भिजवाते रहते थे। *(बुख़ारी किताबुल अदब)* आप अपने असहाय सहाबा के चेहरे देखकर मालूम करते रहते थे कि उनमें से कोई भूखा तो नहीं। हज़रत अबू हुरैरा वर्णन करते हैं कि एक बार वे कई दिन अनाहार रहे। एक दिन जब सात समय से भोजन नहीं मिला था तो वे भूख से व्याकुल होकर मस्जिद के द्वार के सामने खड़े हो गए। संयोगवश हज़रत अबू बकर[रज़ि.] वहाँ से गुज़रे तो उन्होंने उन से एक ऐसी आयत का अर्थ पूछा जिसमें निर्धनों को भोजन कराने का आदेश है। हज़रत अबू बकर ने उनकी बात से यह समझा कि शायद इस आयत का अर्थ उन्हें ज्ञात नहीं और वह उस आयत का अर्थ बता कर आगे चल दिए। हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] जब लोगों के सामने यह बात वर्णन करते तो क्रोध से कहा करते— क्या अबू बकर[रज़ि.] मुझ से अधिक क़ुर्आन जानता था, मैंने आयत का अर्थ इसलिए पूछा था कि इस आयत में निहित विषय की ओर उन का

ध्यान आकृष्ट हो जाए और मुझे भोजन करा दें। इतने में हज़रत उमर^रज़ि.^ वहाँ से गुज़रे। अबू हुरैरा^रज़ि.^ कहते हैं मैंने उन से भी इस आयत का अर्थ पूछा। हज़रत उमर^रज़ि.^ ने भी उस आयत का अर्थ बता दिया और आगे चल दिए। सहाबा^रज़ि.^ मांगने को बहुत बुरा समझते थे। जब अबू हुरैरा^रज़ि.^ ने देखा कि बिना मांगे भोजन प्राप्त होने का कोई उपाय नहीं। वह कहते हैं— मैं बिल्कुल निढाल होकर गिरने लगा, क्योंकि अब अधिक धैर्य की मुझ में शक्ति नहीं थी परन्तु अभी मैंने द्वार से मुंह नहीं फेरा था कि मेरे कान में एक अति मधुर एवं स्नेहसिक्त ध्वनि सुनाई दी, कोई मुझे बुला रहा था— अबू हुरैरा ! अबू हुरैरा ! मैंने मुड़ कर देखा तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अपने घर की खिड़की खोले खड़े थे और मुस्करा रहे थे। मुझे देख कर फ़रमाया— अबू हुरैरा भूखे हो? मैंने कहा हाँ ! हे अल्लाह के रसूल भूखा हूँ। आप^स.^ ने कहा हमारे घर में भी खाने के लिए कुछ नहीं था; अभी एक व्यक्ति ने दूध का प्याला भिजवाया है। तुम मस्जिद में जाओ और देखो कि शायद हमारे तुम्हारे समान कोई और भी मुसलमान हों जिन्हें भोजन की आवश्यकता हो। अबू हुरैरा कहते हैं — मैंने हृदय में कहा— मैं तो इतना भूखा हूँ कि अकेला ही इस प्याले को पी जाऊँगा, अब तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने अन्य लोगों को बुलाने के लिए भी कहा है तो फिर मुझे तो बहुत थोड़ा दूध मिल पाएगा परन्तु बहरहाल मुहम्मद (स.अ.व.) का आदेश था। मस्जिद के अन्दर गए तो देखा कि छः लोग और बैठे हैं; उन्होंने उन्हें भी साथ लिया और रसूले करीम (स.अ.व.) के द्वार के पास आए। आप^स.^ ने दूध का प्याला पहले उन नए आने वाले छः लोगों में से किसी के हाथ में दे दिया और कहा इसे पी जाओ। जब उसने दूध पीकर प्याला मुँह से पृथक किया तो आप^स.^ ने आग्रह किया कि और पियो, तीसरी बार भी आग्रह करके उसे दूध पिलाया। हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं— हर बार मैं कहता था कि अब मैं मरा, मेरा हिस्सा क्या शेष रहेगा परन्तु जब वे

सभी छः लोग पी चुके तो रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने वह प्याला मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा अभी प्याले में बहुत दूध शेष था। जब मैंने दूध पिया तो आप[स.] ने मुझे भी आग्रह करके तीन बार दूध पिलाया। फिर मेरा बचा हुआ दूध स्वयं भी पिया और ख़ुदा तआला का धन्यवाद करते हुए द्वार बन्द कर लिया। *(बुख़ारी किताबुर्रिक़ाक)*

कदाचित् रसूले करीम (स.अ.व.) ने अबू हुरैरा को सब से अन्त में दूध यही पाठ देने के लिए दिया था कि उन्हें ख़ुदा पर भरोसा करते हुए अनाहार बैठे रहना चाहिए और सांकेतिक तौर पर भी प्रश्न नहीं करना चाहिए था।

आप हमेशा दाएँ हाथ से खाना खाते थे और पानी भी दाएँ हाथ से पीते थे। पानी पीते समय मध्य में तीन बार साँस लेते थे। इसमें एक चिकित्सकीय रहस्य है। पानी यदि एक सांस में पी लिया जाए तो अधिक मात्रा में पी लिया जाता है जिस से आमाशय में दोष आ सकता है। खाने के बारे में आप[स.] का नियम यह था कि जो वस्तुएँ पवित्र और स्वभाव के अनुकूल हों उन्हीं को खाएँ परन्तु इस ढंग से नहीं कि निर्धनों का हक़ मारा जाए या मनुष्य को भोग-विलास की आदत पड़ जाए। अतः सामान्यतया जैसा कि वर्णन किया जा चुका है आप का भोजन बहुत सादा था परन्तु यदि कोई व्यक्ति अच्छी वस्तु बतौर उपहार ले आता था तो आप उसे खाने से इन्कार न करते परन्तु यों अपने खान-पान हेतु आप अच्छे भोजन की अभिलाषा कभी नहीं करते थे। शहद आप को पसन्द था, इसी प्रकार खजूर भी। आप का कथन था कि खजूर और मोमिन के मध्य एक संबंध है। खजूर के पत्ते भी और उसका छिलका भी और उस का कच्चा फल भी और उस का पक्का फल भी और उसकी गुठली भी सभी वस्तुएँ उपयोगी हैं, उसकी कोई वस्तु भी व्यर्थ नहीं। पूर्ण मोमिन भी ऐसा ही होता है, उसका कोई कार्य भी निरर्थक नहीं होता अपितु उस का प्रत्येक कार्य मानव समाज के लिए लाभप्रद होता है।

वस्त्राभूषण में संयम और सरलता

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) लिबास के बारे में सादगी को पसन्द करते थे। आप[स.] का सामान्य लिबास कुर्ता, धोती और पाजामा होता था। आप अपनी धोती या पाजामा टखनों से ऊपर और घुटनों से नीचे रखते थे। घुटनों और घुटनों से ऊपर शरीर के नंगे हो जाने को आप[स.] पसन्द नहीं करते थे। ऐसा वस्त्र जिस पर चित्रकारी हो सिवाए विवशता के पसन्द नहीं करते थे। न मानवीय वस्त्रों में न ही पर्दों आदि के रूप में, विशेषकर बड़े चित्र जो कि द्वैतवाद के लक्षणों में से हैं आप उनकी कभी अनुमति नहीं देते थे। एक बार आपके घर में ऐसा कपड़ा लटका हुआ था, आप ने देखा तो उसे उतरवा दिया। हाँ जिस वस्त्र पर छोटे-छोटे चित्र बने हों उस कपड़े में कोई हानि नहीं समझते थे; क्योंकि उन से द्वैतवादी विचारों की ओर संकेत नहीं होता। आप रेशमी कपड़ा कभी नहीं पहनते थे और न अन्य मुसलमान पुरुषों को रेशमी कपड़ा पहनने की अनुमति देते थे। बादशाहों के पत्र लिखने के समय आप ने अपने लिए एक मुहरवाली अंगूठी बनवाई थी परन्तु आप ने आदेश दिया कि सोने की अंगूठी न हो अपितु चांदी की हो क्योंकि ख़ुदा तआला ने मेरी उम्मत के पुरुषों के लिए सोना पहनना मना किया है, स्त्रियों को नि:संदेह रेशमी कपड़े और आभूषण पहनने की आज्ञा थी। इस बारे में आप नसीहत करते रहते थे कि आतिशयता न की जाए। एक बार निर्धनों के लिए आप ने चन्दा एकत्र किया, एक स्त्री ने एक कंगन उतार कर आप के आगे रख दिया। आप[स.] ने कहा— क्या दूसरा हाथ नर्क से सुरक्षित रहने का अधिकारी नहीं? उस स्त्री ने दूसरा कंगन भी उतार कर निर्धनों के लिए दे दिया। आपकी पत्नियों के आभूषण न होने के बराबर थे। आपकी सहाबी स्त्रियां आपकी शिक्षा का पालन

करते हुए आभूषण बनाने से बचती थीं। आप क़ुर्आनी शिक्षानुसार फ़रमाते थे— धन को संचित करके रखना निर्धनों के अधिकारों को नष्ट कर देता है इसलिए सोना-चांदी को किसी भी रूप में संचित कर लेना समाज की आर्थिक अवस्था को नष्ट करने वाला है और अपराध है। एक बार हज़रत उमर[रज़ि.] ने आप[स.] से विनयपूर्वक अनुरोध किया कि अब बड़े-बड़े राजाओं की ओर से राजदूत आने लगे हैं आप एक मूल्यवान अंगरखा ले लें और ऐसे अवसरों पर प्रयोग किया करें। आप[स.] हज़रत उमर[रज़ि.] की इस बात को सुन कर बहुत अप्रसन्न हुए और फ़रमाया ख़ुदा तआला ने मुझे इन बातों के लिए पैदा नहीं किया। ये आडम्बर की बातें हैं हमारा जैसा लिबास है हम उसी के साथ सब से मिलेंगे। एक बार आपके पास एक रेशमी अंगरखा लाया गया तो आप[स.] ने हज़रत उमर[रज़ि.] को उपहार स्वरूप दे दिया। दूसरे दिन देखा हज़रत उमर[रज़ि.] उसे पहने घूम रहे हैं। आपने इस पर नाराज़गी जताई। जब हज़रत उमर[रज़ि.] ने कहा कि हे अल्लाह के रसूल ! आप ने ही तो उपहार दिया था, तब आप[स.] ने फ़रमाया हर वस्तु अपने ही उपयोग के लिए तो नहीं होती अर्थात् यह अंगरखा चूंकि रेशम का था आपको चाहिए था कि यह अपनी पत्नी को दे देते या अपनी बेटी को दे देते अथवा किसी अन्य कार्य में ले आते। उसे अपने लिबास के तौर पर प्रयोग करना उचित नहीं था।

बिस्तर में सादगी

आप[स.] का बिस्तर भी बहुत सादा होता था. सामान्यतया एक चमड़ा या ऊँट के बालों का एक कपड़ा होता था। हज़रत आइशा[रज़ि.] फ़रमाती हैं कि हमारा बिस्तर इतना छोटा था कि जब मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) रात को इबादत (उपासना) के लिए उठते तो मैं एक ओर होकर लेट जाती थी और बिस्तर छोटा होने के कारण जब आप इबादत के लिए खड़े हो

जाते तो मैं टांगे लम्बी कर लिया करती और जब आप सज्दह करते तो मैं टांगें समेट लिया करती।

मकान और रहन-सहन में सादगी

आप[स.] रहने के मकान के संबंध में सादगी पसन्द करते थे। सामान्य रूप से आप के घरों में एक-एक कमरा होता था और छोटा सा आंगन। इस कमरे में एक रस्सी बंधी हुई थी जिस पर कपड़ा डाल कर पर्दा करके नियत समय पर मुलाकात करने वालों से पृथक बैठकर बात कर लिया करते थे। आप चारपाई प्रयोग नहीं करते थे अपितु धरती पर ही बिस्तर बिछाकर सोते थे। आप के रहन सहन में इतनी अधिक सादगी थी कि हज़रत आइशा[रज़ि.] ने आपके निधन के पश्चात् फ़रमाया— हमें रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के समय में कई बार मात्र पानी और खजूर पर ही गुज़ारा करना पड़ता था, यहां तक जिस दिन आप का निधन हुआ उस दिन भी हमारे घर में खाने के लिए पानी और खजूर के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

ईश्वर-प्रेम तथा उसकी उपासना

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का सारा जीवन ख़ुदा के प्रेम में लीन दिखाई देता है। आप इतने बड़े समाजिक उत्तरदायित्व के बावजूद दिन-रात इबादत में व्यस्त रहते थे। अर्धरात्रि व्यतीत होने पर आप ख़ुदा की इबादत के लिए खड़े हो जाते और प्रात:काल तक इबादत करते चले जाते, यहाँ तक कि कई बार आप के पैर सूज जाते थे और आप के देखने वालों को आप की दशा पर दया आती थी। हज़रत आइशा[रज़ि.] कहती हैं— एक बार मैंने ऐसे ही अवसर पर कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप को

ख़ुदा तआला का पहले ही सानिध्य प्राप्त है फिर आप स्वयं को इतना कष्ट क्यों देते हैं? आप ने फ़रमाया— हे आइशा ! اَفَلَا اَکُوْنُ عَبْدًا شَکُوْرًا जब यह बात सत्य है कि मुझे ख़ुदा तआला का सानिध्य प्राप्त है। यह उसकी मुझ पर महान् कृपा है तो क्या मेरा यह कर्त्तव्य नहीं कि मैं यथाशक्ति उस का धन्यवाद करूँ; क्योंकि धन्यवाद उपकार के मुकाबले पर ही हुआ करता है।

आप कोई महत्त्वपूर्ण कार्य ख़ुदा की आज्ञा के बिना नहीं करते थे। अतः आप की जीवनी में इसका उल्लेख किया जा चुका है कि मक्का के लोगों के भयंकर अत्याचारों के बावजूद आप[स.] ने मक्का को उस समय तक न छोड़ा जब तक कि ख़ुदा तआला की ओर से आप पर वह्यी (ईशवाणी) नहीं उतरी और आपको वह्यी द्वारा मक्का छोड़ने की आज्ञा न दी गई। मक्का वालों के भयंकर अत्याचारों को देखकर आप ने जब सहाबा के हबशा की ओर हिजरत (प्रवास) कर जाने की आज्ञा दी तथा उन्होंने आप से उनुरोध किया कि आप भी उनके साथ चलें तो आप ने फ़रमाया— मुझे अभी ख़ुदा तआला की ओर से आज्ञा प्राप्त नहीं हुई। अत्याचार और आतंक के समय जब लोग अपने मित्रों और परिजनों को अपने पास एकत्र कर लेते हैं आपने अपनी जमाअत को हबशा की ओर हिजरत करके जाने का निर्देश दिया और स्वयं अकेले मक्का में रह गए। इसलिए कि आप के ख़ुदा ने आप को अभी हिजरत करने की आज्ञा नहीं दी थी।

आप ख़ुदा की वाणी सुनते तो आपकी आँखों में स्वतः आँसू आ जाते, विशेष कर वे आयतें जिन में आप के दायित्त्वों की ओर ध्यान दिलाया गया है। अतः अब्दुल्लाह बिन मसऊद[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि एक बार रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— क़ुर्आन करीम की कुछ आयतें पढ़कर सुनाओ। मैंने उत्तर में कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क़ुर्आन तो आप पर उतरा है आप को क्या सुनाऊँ? आपने फ़रमाया— मैं चाहता हूँ कि दूसरे लोगों से भी क़ुर्आन पढ़वाकर सुनूं। इस पर मैंने सूरह 'अन्निसा'

पढ़कर सुनाना आरम्भ किया, जब पढ़ते-पढ़ते मैं इस आयत पर पहुँचा कि
فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍۭ بِشَهِيْدٍ وَّ جِئْنَا بِكَ عَلٰى هٰٓؤُلَآءِ شَهِيْدًا[①]

अर्थात् उस समय क्या दशा होगी जब हम प्रत्येक जाति में से उसके नबी को उसकी जाति के सामने खड़ा करके उस जाति का हिसाब लेंगे और तुझे भी तेरी जाति के सामने खड़ा करके उसका हिसाब लेंगे तो मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने फ़रमाया— "पर्याप्त है, पर्याप्त है"। मैंने आपकी ओर देखा तो आप की दोनों आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।

आप को नमाज़ की पाबन्दी का इतना ध्यान रहता था कि अत्यधिक बीमारी की अवस्था में जब कि ख़ुदा तआला की ओर से घर में नमाज़ पढ़ लेने तथा लेट कर पढ़ लेने तक की अनुमति होती है आप सहारा लेकर मस्जिद में नमाज़ पढ़ाने के लिए आते। एक दिन आप नमाज़ के लिए न आ सके तो हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] को नमाज़ पढ़ाने का आदेश दिया परन्तु इतने में तबियत में कुछ सुधार प्रतीत हुआ तो तुरन्त दो लोगों का सहारा लेकर मस्जिद की ओर चल पड़े परन्तु दुर्बलता की यह अवस्था थी कि हज़रत आइशा[रज़ि.] फ़रमाती हैं— आप के दोनों पैर पृथ्वी पर घसिटते जाते थे। संसार में प्रशंसा और ध्यानाकर्षण के लिए तालियां बजाई जाती हैं, अरबों में भी यही प्रचलन था परन्तु आप[स.] को ख़ुदा तआला का स्मरण और उसकी स्तुति इतनी पसन्द थी कि इस उद्देश्य के लिए भी ख़ुदा की स्तुति करने का ही आदेश दिया। अतः उल्लेख है कि एक बार आप[स.] किसी कार्य में व्यस्त थे कि नमाज़ का समय हो गया। आप ने फ़रमाया— अबू बकर[रज़ि.] नमाज़ पढ़ा दें। इतने में आप कार्य से निवृत्त हो गए और तुरन्त मस्जिद की ओर चल पड़े। जब आप मस्जिद में पहुँचे तो हज़रत अबू बकर[रज़ि.] नमाज़ पढ़ा रहे थे। जब लोगों को मालूम हुआ कि आप मस्जिद में आ गए हैं तो शीघ्रता से तालियां बजाना आरम्भ कर दिया, जिस

---

①-अन्निसा :40

से एक ओर तो यह बताना अभीष्ट था कि आप[स.] के आने से उनके हृदय बहुत प्रसन्न हो गए हैं तथा दूसरी ओर अबू बकर को यह ध्यान दिलाना भी अभीष्ट था कि अब आपकी इमामत समाप्त हुई, अब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पहुँच गए है। हज़रत अबू बकर पीछे हट गए और आप[स.] के लिए इमाम का स्थान खाली कर दिया। नमाज़ के पश्चात आप[स.] ने फ़रमाया— अबू बकर ! जब मैंने तुम्हें नमाज़ पढ़ाने का आदेश दिया था तो तुम पीछे क्यों हट गए? अबू बकर[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! अल्लाह के रसूल की उपस्थिति में अबू क़ुहाफ़ा के बेटे की क्या हैसियत थी कि वह नमाज़ पढ़ाए। फिर आप[स.] ने सहाबा को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया— तुम्हारा तालियां बजाने का क्या उद्देश्य था? ख़ुदा की स्तुति के समय में तो तालियां बजाना अनुचित मालूम होता है। जब नमाज़ के समय कोई ऐसी बात हो कि उसकी ओर ध्यान आकर्षित कराना आवश्यक हो तो तालियां बजाने के स्थान पर ख़ुदा का नाम ऊँचे स्वर में लिया करो, जब तुम ऐसा करोगे तो दूसरों का ध्यान स्वतः उस ओर हो जाएगा परन्तु इसके साथ ही आप दिखावे की इबादत भी पसन्द नहीं करते थे। एक बार आप घर में गए तो आप ने देखा कि दो स्तम्भों के मध्य एक रस्सी लटकी हुई है। आप[स.] ने पूछा यह रस्सी क्यों बंधी हुई है? लोगों ने कहा— यह हज़रत ज़ैनब की रस्सी है। जब वह इबादत करते-करते थक जाती हैं तो उस रस्सी को पकड़ कर सहारा ले लेती हैं। आप[स.] ने फ़रमाया— ऐसा नहीं करना चाहिए। यह रस्सी खोल दो। प्रत्येक को चाहिए कि इतनी देर इबादत करे जब तक उसके हृदय में उल्लास रहे जब वह थक जाए तो बैठ जाए। इस प्रकार कष्ट उठाकर की जाने वाली इबादत का कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती। शिर्क (द्वैतवाद) से आपको इतनी घृणा थी कि मृत्यु के समय मरणासन्न अवस्था में थे, आप कभी दायीं करवट लेटते, कभी बायीं करवट लेटते तथा यह फ़रमाते जाते— ख़ुदा उन यहूद और नसारा

पर ला'नत करे जिन्होंने अपने नबियों की क़ब्रों को मस्जिद बना लिया है अर्थात् वे नबियों की क़ब्रों पर सज्दे करते हैं और उन से दुआएँ करते हैं। आप का उद्देश्य यह था कि मेरी जाति यदि मेरे मरणोपरान्त ऐसा ही कार्य करेगी तो वह यह न समझे कि वह मेरी दुआओं की पात्र होगी अपितु मैं उससे पूर्णतया पृथक हूँगा। ख़ुदा तआला के प्रति आप की कोमल भावनाओं की चर्चा आपके जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं में आ चुकी है, जब मक्का के लोगों ने आप[स.] के समक्ष हर प्रकार की रिश्वतें प्रस्तुत कीं ताकि आप बुतों का खण्डन करना छोड़ दें। आप के चाचा अबू तालिब ने भी इस बात की सिफ़ारिश की और कहा— यदि तुम ने इतनी बात भी स्वीकार न की तो मेरी जाति, यदि मैंने तुम्हारा साथ न छोड़ा, मुझे छोड़ देगी। तब आप ने फ़रमाया— यदि ये लोग मेरे दाएँ हाथ पर सूर्य तथा बाएँ हाथ पर चन्द्रमा लाकर रख दें तब भी मैं ख़ुदा के एक होने की आस्था अर्थात् एकेश्वरवाद के सिद्धान्त का प्रचार करने से नहीं रुक सकता। इसी प्रकार उहद-युद्ध के अवसर पर मुसलमान घायल और अस्त-व्यस्त अवस्था में एक पहाड़ी के नीचे खड़े थे और शत्रु अपने समस्त संसाधनों के साथ इस प्रसन्नता में जयघोष लगा रहा था कि हम ने मुसलमानों की शक्ति को समाप्त कर दिया है। जब अबू सुफ़यान ने कहा اُعْلُ هُبُل۔اُعْلُ هُبُل अर्थात् हुबुल की जय हो, हुबुल की जय हो, तो आप[स.] ने अपने साथियों को जो शत्रु की दृष्टि से छुपे खड़े थे और इस छुपने में ही उनकी कुशलता थी, आदेश दिया कि उत्तर दो اَللّٰہُ اَعْلٰی وَاَجَلّ۔ اَللّٰہُ اَعْلٰی وَاَجَلّ अल्लाह ही सर्वोच्च, तेजवान एवं बड़ी शान वाला है। तेजिस्वता और प्रभुता उसी को प्राप्त है। आपके ख़ुदा के प्रति स्वाभिमान का एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण भी आपके जीवन में मिलता है। इस्लाम से पूर्व समस्त धर्मों में सामान्यतया यह विचार पाया जाता था कि नबियों की प्रसन्नता प्राप्ति अथवा कष्ट पहुँचने पर पृथ्वी और आकाश में परिवर्तन प्रकट होते

हैं तथा आकाशीय ग्रह उनके अधिकार में होते हैं। अत: किसी नबी के बारे में यह कहा जाता था कि उसने सूर्य को कहा कि स्थिर हो जा ! वह स्थिर हो गया। किसी नबी के बारे में यह आता था कि उस ने चन्द्रमा की परिक्रमा को रोक दिया तथा किसी के बारे में आता था कि उसने जल-प्रवाह को बन्द कर दिया परन्तु आपने इस प्रकार के विचारों के दोषों को प्रकट किया और यह बताया कि वास्तव में ये उपमाएँ हैं जिन से लोग लाभ प्राप्त करने के बजाए गलतियों और भ्रमों में पड़ जाते हैं। अस्तु, इन तथ्यों के स्पष्टीकरण-व्याख्याओं के बावजूद कुछ लोगों के हृदयों में इस प्रकार के विचारों का प्रभाव शेष रह गया था। जब मुहम्मद (स.अ.व.) की अन्तिम आयु में आप के इकलौते पुत्र इब्राहीम की ढ़ाई वर्ष की आयु में मृत्यु हुई तो संयोग से उस दिन सूर्य को भी ग्रहण लग गया। उस समय कुछ ऐसे ही लोगों ने मदीना में यह प्रसिद्ध कर दिया कि देखो मुहम्मद रसूलुल्लाह के पुत्र के निधन पर सूर्य अंधकारमय हो गया है। जब आप[स.] को यह समाचार मिला तो आप प्रसन्न न हुए और आप ख़ामोश भी न रहे अपितु बड़ी कठोरता से इसका खण्डन किया और कहा— चन्द्रमा और सूर्य तो ख़ुदा तआला के निर्धारित कानून को प्रकट करने वाले अस्तित्व हैं, इनका किसी महान् या तुच्छ मनुष्य के जीवन या मृत्यु के साथ क्या संबंध। *(बुख़ारी किताबुल कुसूफ़)* जब कोई मनुष्य अरब की परम्परानुगत यह कह देता कि अमुक नक्षत्र के अमुक राशि में होने के कारण हम पर वर्षा हुई है तो आप[स.] का चेहरा परिवर्तित हो जाता और आप फ़रमाते— हे लोगो ! ख़ुदा तआला की ने'मतों को दूसरों की ओर क्यों सम्बद्ध करते हो। वर्षा इत्यादि सब वस्तुएँ ख़ुदा तआला के निर्धारित कानून के अनुसार होती हैं किसी देवी-देवता अथवा किसी अन्य आध्यात्मिक शक्ति की अनुकम्पा और दान के फलस्वरूप नहीं होतीं। *(मुस्लिम किताबुल ईमान बाब बयान कुफ़रा मन क़ाला मतरोना बिनौइन)*।

ख़ुदा पर भरोसा

आप[स.] की ख़ुदा पर भरोसा करने की वह अवस्था थी कि जब एक व्यक्ति ने आप को अकेला पाकर तलवार उठाई और आप[स.] से पूछा— अब मुझ से तुम्हें कौन बचा सकता है? उस समय आप नि:शस्त्र होने के बावजूद तथा लेटे होने के कारण कोई कार्यवाही भी नहीं कर सकते थे सर्वथा सन्तोष और शान्ति भाव से उत्तर दिया— "अल्लाह"यह शब्द आप[स.] के मुख से इस विश्वास और दृढ़ता से निकले कि उस काफ़िर का हृदय भी आप के ईमान की दृढ़ता तथा आपके अटल विश्वास को स्वीकार किए बिना नहीं रह सका तथा उसके हाथ से तलवार गिर गई और वह जो आप का वध करने आया था आपके सामने अपराधियों के समान खड़ा हो गया। *(मुस्लिम जिल्द-2 किताबुल फ़ज़ायल)* ख़ुदा के समक्ष विनम्रता की अवस्था यह थी कि जब आप से लोगों ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! आप तो अपने कर्म के बल पर ख़ुदा तआला के कृपा-पात्र होंगे तो आप ने फ़रमाया— नहीं ! नहीं ! मैं भी ख़ुदा की कृपा से ही क्षमा किया जाऊँगा। अत: हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] वर्णन करते हैं; मैंने एक दिन मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) से सुना आप कह रहे थे कि कोई व्यक्ति अपने कर्मों से स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकेगा। मैंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या आप भी अपने कर्मों से स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकेंगे? आप ने फ़रमाया— मैं भी अपने कर्मों के परिणामस्वरूप स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकूँगा। हाँ, ख़ुदा की कृपा और उसकी करुणारूपी चादर मुझे ढक ले तो यही एक मार्ग है। *(बुख़ारी किताबुल रिक़ाक़)* आप[स.] ने पुन: फ़रमाया— अपने कर्मों में भलाई के पहलू को दृष्टिगत रखो, तथा सानिध्य प्राप्ति के मार्ग की खोज में लगे रहो तथा तुम में से कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु की इच्छा न किया करे क्योंकि यदि वह सदाचारी है तो जीवित रहकर अपने शुभ कर्मों में और भी उन्नति करेगा

और यदि वह दुराचारी है तो जीवित रह कर अपने पापों का प्रायश्चित करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। *(बुख़ारी किताबुत्तमन्ना व किताबुद्दा'वात)*।

- ख़ुदा से प्रेम की यह स्थिति थी कि जब एक समय के पश्चात् बादल आते तो आप अपनी जीभ पर वर्षा की बूंद ले लेते और कहते— देखो मेरे रब्ब की ताज़ा ने'मत।

- जब लोगों के साथ बैठते तो ख़ुदा की विनय करते रहते तथा यों भी विनय करते रहने में आपका अधिकांश समय व्यतीत होता ताकि आपकी उम्मत तथा आप के साथ संबंध रखने वाले ख़ुदा तआला के प्रकोप से सुरक्षित रहें और ख़ुदा की क्षमा की चादर सब को ढांप ले। *(बुख़ारी किताबुद्दा'वात तथा मुस्लिम किताबुज़्ज़िक्रवद्दुआ)*

- ख़ुदा तआला के समक्ष अपनी उपस्थिति को सदैव ताज़ा रखते। अत: जब आप सोते तो यह कहते हुए सोते—بِاسْمِکَ اللّٰھُمَّ اَمُوْتُ وَاَحیٰ हे ख़ुदा तेरा ही नाम लेते हुए मरूँ और तेरा ही नाम लेते हुए उठूँ। जब आप प्रात: उठते तो कहते— اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ الَّذِیْ اَحْیانا بَعْدَمَا اَمَاتَنَا وَاِلَیْہِ النُّشُور समस्त प्रशंसाएँ अल्लाह ही के लिए हैं जिसने मृत्योपरान्त हमें जीवित किया और फिर हम अपने रब्ब के सामने जाने वाले हैं। *(बुख़ारी किताबुद्दा'वात)*

- ख़दा तआला के साहचर्य की इतनी अभिलाषा थी कि हमेशा ख़ुदा तआला से दुआ करते रहते थे—

اَللّٰھُمَّ اجْعَلْ فِیْ قَلْبِیْ نُوْرًا وَفِیْ بَصِرَیْ نُوْرًا وَ فِیْ سَمْعِیْ نُوْرًا
وَعَنْ یَمِیْنِیْ لُوْرًا وَعَنْ یَّسَارِیْ نُوْرًا وَفَوْقِیْ نُوْرًاوَ تَحْتِیْ نُوْرًا وَ
اَمَامِیْ نُوْرًا وَخَلْفِیْ نُوْرًا وَاجْعَلْ لِّیْ نُوْرًا

(बुख़ारी किताबुद्दा'वात अनइब्ने अब्बास) अर्थात् **हे मेरे प्रतिपालक ! मेरे हृदय में भी अपना प्रकाश भर दे, मेरी आँखों में भी अपना प्रकाश भर दे, मेरे कानों में भी अपना प्रकाश भर दे, मेरे दाएँ भी तेरा प्रकाश हो और मेरे बाएँ भी तेरा प्रकाश हो, मेरे ऊपर भी तेरा**

प्रकाश हो और मेरे नीचे भी तेरा प्रकाश हो, मेरे आगे भी तेरा प्रकाश हो और मेरे पीछे भी तेरा प्रकाश हो। हे मेरे रब्ब ! मेरे समस्त अस्तित्व को प्रकाशमय बना दे।

● इब्ने अब्बास[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि आप[स.] के निधन के कुछ समय पूर्व मुसैलिमा कज़्ज़ाब आया। उसने कहा— यदि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) अपने पश्चात् मुझे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दें तो मैं उनका अनुयायी बन जाऊँगा। उस समय उसके साथ एक बड़ा जनसमूह था तथा जिस जाति से वह संबंध रखता था वह जाति समस्त अरब जातियों में संख्या की दृष्टि से सब से अधिक थी। जब रसूले करीम (स.अ.व.) को उसके मदीना में आने की सूचना मिली तो आप उसकी ओर गए। आप[स.] के साथ 'साबित बिन क़ैस बिन शमास' थे। मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के हाथ में खजूर की एक टहनी थी। आप उस जनसमूह तक आए और मुसैलिमा कज़्ज़ाब के सामने खड़े हो गए। इतने में और सहाबा भी एकत्र हो गए तथा आप[स.] के चारों ओर खड़े हो गए। आप[स.] ने मुसैलिमा को सम्बोधित करके फ़रमाया— तुम यह कहते हो कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) यदि अपने पश्चात् मुझे अपना ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) नियुक्त कर दें तो मैं उसका अनुयायी बनने के लिए तैयार हूँ परन्तु मैं तो ख़ुदा के आदेश के विपरीत यह खजूर की टहनी भी तुम्हें देने के लिए तैयार नहीं। तेरा अन्त वही होगा जो ख़ुदा ने तेरे लिए निश्चित कर रखा है। यदि तुम हमारे मन्तव्य से विमुख होकर चले जाओगे तो ख़ुदा तआला तुम्हारे पैर काट देगा तथा मैं देख रहा हूँ कि ख़ुदा ने जो कुछ मुझे (स्वप्नावस्था) में दिखाया था वही तेरे साथ होने वाला है। फिर कहा मैं जाता हूँ, तुम मेरी ओर से साबित बिन क़ैस बिन शमास के साथ बात करो। यह कह कर आप वापस आ गए। हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] भी आप के साथ थे। मार्ग में किसी ने आप[स.] से पूछा— हे अल्लाह के रसूल ! आप

ने यह क्या फ़रमाया है कि जो कुछ ख़ुदा ने मुझे दिखाया था मैं तुझे वैसा ही पाता हूँ आप[स.] ने फ़रमाया— मैंने स्वप्न में देखा था कि मेरे हाथ में दो कड़े हैं। मैंने उन कड़ों को देखकर पसन्द नहीं किया उस समय स्वप्न में ही वह्यी हुई कि मैं उन पर फूंक मारूँ, जब मैंने फूंका तो वे दोनों उड़ गए। मैंने उसकी यह व्याख्या की कि मेरे पश्चात् दो झूठे दावेदार प्रकट होंगे।

(बुख़ारी किताबुल मग़ाज़ी बाब क़िस्सतुल अस्वद अलअन्सी)

● हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) कि आयु का वह अन्तिम युग था। अरब की सब से बड़ी और अन्तिम जाति आप का अनुसरण करने के लिए तैयार थी और शर्त केवल इतनी थी कि रसूले करीम (स.अ.व.) उसके सरदार को अपने पश्चात् उत्तराधिकारी (ख़लीफ़ा) नियुक्त कर दें। यदि रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के हृदय में व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का कोई विचार भी होता तो ऐसी अवस्था में जब कि आपकी कोई नर-सन्तान न थी आपके लिए कुछ भी कठिन न था कि अरब की सबसे बड़ी जाति के सबसे बड़े सरदार को अपने उत्तराधिकारी के लिए नियुक्ति का वचन देकर समस्त अरब की एकता का मार्ग प्रशस्त कर देते परन्तु रसूले करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम जो किसी छोटी से छोटी वस्तु को भी अपनी वस्तु नहीं समझते थे वह इस्लामी शासन को अपनी सम्पत्ति कैसे ठहरा सकते थे। आप[स.] के निकट इस्लामी शासन ख़ुदा की अमानत थी और उस अमानत को तदवत् ख़ुदा तआला के ही सुपुर्द किया जाना चाहिए था। फिर वह जिसे चाहे दोबारा सुपुर्द कर दे। अतः आप ने इस प्रस्ताव को धिक्कारते हुए ठुकरा दिया तथा फ़रमाया— बादशाहत तो अलग रही ख़ुदा की आज्ञा के बिना मैं खजूर की एक टहनी भी तुम्हें देने के लिए तैयार नहीं।

● आप[स.] जब भी अल्लाह तआला के नाम का जाप करते, उसके प्रेम में तल्लीन हो जाते और इस प्रेमावेग में स्वभावतया आप का अन्तः

एवं बाह्य रूप ज्योतिर्मय हो जाता। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रभु-प्रेम ने आपके अन्तस एवं बाह्य रूप पर अपना आधिपत्य जमा लिया। परमेश्वर की उपासना में आपको सादगी इतनी पसन्द थी कि मस्जिद जिस में कोई फ़र्श नहीं था, जिस पर कोई कपड़ा भी नहीं था आप[स.] नमाज़ पढ़ते तथा दूसरों से भी पढ़वाते। कई बार ऐसा होता कि वर्षा के कारण छत टपकने लगती तथा रसूले करीम (स.अ.व.) का शरीर गारे और पानी से लथपथ हो जाता परन्तु आप[स.] इबादत में निरन्तर व्यस्त रहते तथा आप के हृदय में तनिक भी ऐसी भावना पैदा न होती कि अपने शरीर और कपड़ों की सुरक्षा के लिए उस समय की नमाज़ को स्थगित कर दें अथवा किसी अन्य स्थान पर जा कर नमाज़ पढ़ लें। *(बुख़ारी किताबुस्सौम, बाब फ़ज़्ल लैलतुलक़द्र)*

आप अपने सहाबा की उपासनाओं का भी ध्यान रखते थे। एक बार हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर[रज़ि.] के बारे में जो नितान्त सदाचारी तथा सद्स्वभाव रखने वाले व्यक्ति थे। आप ने फ़रमाया— अब्दुल्लाह बिन उमर कैसा अच्छा व्यक्ति होता यदि तहज्जुद (अर्धरात्रि के पश्चात् पढ़ी जाने वाली ऐच्छिक नमाज़) भी नियमित रूप से पढ़ता। (मुस्लिम किताब फ़ज़ाइलुस्सहाबा[रज़ि.]) जब हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर को यह ख़बर पहुँची तो आप ने उस दिन से तहज्जुद की नमाज़ आरम्भ कर दी। इसी प्रकार लिखा है कि एक बार आप रात को अपने दामाद हज़रत अली[रज़ि.] और अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा[रज़ि.] के घर गए तथा पूछा— क्या तहज्जुद (अर्धरात्रि के पश्चात् उठकर पढ़ी जाने वाली ऐच्छिक नमाज़) पढ़ा करते हो हज़रत अली[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! पढ़ने का प्रयास तो करते हैं परन्तु जब ख़ुदा तआला की इच्छा के अन्तर्गत किसी समय हमारी आँख बन्द रहती है तो फिर तहज्जुद रह जाती है। आप[स.] ने फ़रमाया— तहज्जुद पढ़ा करो तथा उठकर अपने घर की ओर चल पड़े, मार्ग में बार-

बार कहते जाते थे— وَكَانَ الْاِنْسَانُ اكثر شيءٍ جَدَلًا *(बुख़ारी किताबुलकुसूफ़ बाब अत्तहज्जुद फ़िल्लैल)* यह क़ुर्आन करीम की एक आयत है जिसके अर्थ ये हैं कि मनुष्य प्राय: अपनी ग़लती स्वीकार करने से घबराता है और विभिन्न प्रकार के तर्क देकर अपनी ग़लती पर पर्दा डालता है। तात्पर्य यह था कि हज़रत अली[रज़ि.] और हज़रत फ़ातिमा[रज़ि.] बजाए इसके कि यह कहते कि हम से कभी-कभी ग़लती भी हो जाती है उन्होंने यह क्यों कहा कि जब ईश्वरेच्छा होती है कि हम न जांगे तो हम सोए रहते हैं और अपनी ग़लती को अल्लाह तआला से क्यों सम्बद्ध किया परन्तु अल्लाह तआला से इतना प्रेम रखने के बावजूद आप दिखावे की उपासना और अटकल (अनुमान) से परोक्ष की बातें बताने के कार्य से बहुत घृणा करते थे। आप का सिद्धान्त यह था कि ख़ुदा तआला ने मनुष्य को जो शक्तियां प्रदान की हैं उन का यथास्थान प्रयोग ही इबादत है। आँखों के होते हुए आँखों को बन्द कर देना या उन को निकलवा देना इबादत (उपासना) नहीं अपितु धृष्टता है। हाँ उन का दुरुपयोग करना पाप है। कानों को किसी आप्रेशन द्वारा श्रवण-शक्ति से वंचित कर देना ख़ुदा तआला के प्रति धृष्टता है। हाँ लोगों की चुग़लियां और उनकी बुराइयाँ सुनना पाप है, भोजन का परित्याग (भूख हड़ताल), आत्महत्या तथा ख़ुदा के प्रति धृष्टता है। हाँ खाने-पीने में व्यस्त रहना तथा अवैध और अरुचिकर वस्तुओं का प्रयोग पाप है। यह एक बहुत बड़ा रहस्य था जिसे मुहम्मद (स.अ.व.) ने संसार के सामने प्रस्तुत किया जिसे आप से पूर्व किसी नबी ने प्रस्तुत नहीं किया। उच्चकोटि के शिष्टाचार नाम है स्वाभाविक शक्तियों का यथास्थान प्रयोग। स्वाभाविक शक्तियों को नष्ट कर देना मूर्खता है, उन्हें अवैध कार्यों में लगाना दुराचार है, उनका उचित प्रयोग वास्तविक सदाचार है। यह सार है रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की शिक्षा का और यह सार है मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के जीवन का तथा आप के कार्यों का। हज़रत आइशा[रज़ि.] आप के संबंध में फ़रमाती हैं—

مَا خُيِّرَ رَسُولُ اللّٰهِ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وسلَّم بَيْنَ اَمْرَيْنِ اِلَّا اَخَذَ
اَيْسَرَ هُمَا مَا لَمْ يَكُنْ اِثْمًا كَانَ اَبْعَدُ النَّاسِ مِنْهُ۔

(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुलफ़ज़ायल) रसूले करीम (स.अ.व.) के जीवन में कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि आपके सामने दो मार्ग खुले हों और आप ने उन दोनों मार्गों में से जो आसान मार्ग हो उसे न अपनाया हो परन्तु वह आसान मार्ग धारण करने में किसी पाप का पहलू न हो। यदि किंचिन्मात्र भी पाप का आभास होता तो आप उस मार्ग से समस्त लोगों की अपेक्षा अधिक दूर रहते। यह कैसा उत्तम और कैसा उच्चकोटि का आचरण है। संसार को धोखा देने के लिए लोग अकारण स्वयं को किस प्रकार दु:खों और कष्टों में डालते हैं। उनका स्वयं को दु:खों और कष्टों में डालना परमेश्वर के लिए नहीं होता; क्योंकि परमेश्वर के लिए कोई निरर्थक कार्य नहीं किया जाता, उनका स्वयं को दु:खों और कष्टों में डालना लोगों को धोखा देने के लिए होता है। उन की वास्तविक भलाई बहुत कम होती है। वे आडम्बर पूर्ण आचरणों से लोगों पर अपना प्रभाव डालना चाहते हैं तथा अपने दोषों को गुप्त रखने के लिए लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) का उद्देश्य तो ख़ुदा का यशोगान तथा यथार्थ सदाचार प्राप्ति था। आपको ऐसे कृत्रिम और आडम्बरपूर्ण सदाचारों की क्या आवश्यकता थी ! यदि संसार आप को बुरा समझता तब भी और यदि आप को सदाचारी समझता तब भी आप के लिए एक समान था। आप[स.] तो केवल यह देखते थे कि मेरा परमेश्वर मुझे क्या समझता है और मेरा हृदय मुझे कैसा पाता है। परमेश्वर और अपने हृदय की साक्ष्य के पश्चात् यदि लोग भी सच्ची साक्ष्य देते तो उनके कृतज्ञ होते थे और यदि वे टेढ़ी दृष्टि से देखते तो आप उनकी आँखों की ज्योति की कमी पर खेद करते तथा उनके मत को कोई महत्त्व न देते थे।

मुहम्मद (स.अ.व.) का मानव जाति से व्यवहार

पत्नियों के प्रति आप का आचरण नितान्त सहानुभूति पूर्ण एवं न्यायसंगत था। कई बार आप की पत्नियां आप से कठोरता का व्यवहार भी कर लेती थीं परन्तु आप खामोशी से हंस कर टाल देते थे। एक दिन आप[स.] ने हज़रत आइशा[रज़ि.] से कहा— हे आइशा ! जब तुम मुझ से रुष्ट होती हो तो मुझे मालूम हो जाता है कि तुम मुझ से रुष्ट हो। हज़रत आइशा[रज़ि.] ने फ़रमाया— आपको किस प्रकार मालूम हो जाता है? आप ने फ़रमाया— जब तुम मुझ से प्रसन्न होती हो और कोई क़सम खाने का मामला आ जाए तो तुम हमेशा यों कहती हो— "मुहम्मद के रब्ब की क़सम बात यों है" और जब तुम मुझ से रुष्ट होती हो और तुम्हें क़सम खाने की आवश्यकता पड़ जाए तो तुम कहा करती हो— "इब्राहीम के रब्ब की क़सम बात यों है"। हज़रत आइशा यह सुनकर हँस पड़ीं तथा आपकी बात की पुष्टि करते हुए कहा— आपने ठीक समझा। *(बुख़ारी किताबुन्निकाह बाब ग़ैरतुन्निसा व वज्दोहुन्ना)*

हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] जो आप की बड़ी पत्नी थी, जिन्होंने आप के लिए बड़े-बड़े त्याग किए थे, उनके मरणोपरान्त आप के विवाह में जवान पत्नियाँ आईं परन्तु आप ने इसके बावजूद हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] के सम्बन्ध को न भुलाया। हज़रत ख़दीजा की सहेलियां जब भी आतीं आप उनके स्वागत के लिए खड़े हो जाते *(मुस्लिम बाब फ़ज़ायल-ए-ख़दीजा[रज़ि.])*, हज़रत ख़दीजा की बनी हुई कोई वस्तु आप के सामने आ जाती तो आप की आँखों में आँसू आ जाते। बदर के युद्ध में जब आप के एक दामाद भी बन्धक हो कर आए तो आज़ाद होने का फ़िद्या☆ अदा करने के लिए उनके पास कोई धन न था। उनकी पत्नी अर्थात् रसूले करीम (स.अ.व.)

☆-नक़दी के रूप में आज़ाद होने का मूल्य। -अनुवादक।

की बेटी ने जब देखा कि मेरे पति को बचाने के लिए और कोई धन नहीं तो अपनी मां की अन्तिम निशानी एक हार उनके पास था, उन्होंने वह हार अपने पति के फ़िद्‌या के तौर पर मदीना भिजवा दिया। जब वह हार रसूले करीम (स.अ.व.) के सामने प्रस्तुत हुआ तो आप ने उसे पहचान लिया आपकी आँखों में आँसू आ गए। आपने सहाबा से कहा— मैं आप लोगों को आदेश तो नहीं देता; क्योंकि मुझे ऐसा आदेश देने का कोई अधिकार नहीं, परन्तु मैं जानता हूँ कि यह हार ज़ैनब के पास उसकी मां की अन्तिम यादगार है। यदि आप प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कर सकते हों तो मैं सिफ़ारिश करता हूँ कि बेटी को उसकी माँ की अन्तिम यादगार से वंचित न किया जाए। सहाबा ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! हमारे लिए इस से बढ़कर और क्या ख़ुशी हो सकती है। सहाबा ने वह हार हज़रत ज़ैनब को वापस कर दिया। *(अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-2 पृष्ठ-215)*। ख़दीजा के त्याग का आप के हृदय पर इतना प्रभाव था कि आप दूसरी पत्नियों के सामने प्रायः उनके शुभकर्मों की चर्चा करते रहते थे। इसी प्रकार एक दिन आप हज़रत आइशा[रज़ि.] के पास हज़रत ख़दीजा के किसी आचरण की चर्चा कर रहे थे कि हज़रत आइशा ने खीझ कर कहा— हे अल्लाह के रसूल ! अब उस बुढ़िया की चर्चा को जाने भी दें, अल्लाह तआला ने उससे उत्तम, जवान और सुन्दर पत्नियां आपको दी हैं। यह बात सुनकर रसूले करीम (स.अ.व.) की आँखें भर आईं और आप ने फ़रमाया— आइशा तुम्हें ज्ञात नहीं कि ख़दीजा ने मेरी कितनी सेवा की है। *(बुख़ारी किताब बदउलख़ल्क़ बाब तज़्वीजुन्नबिय्य सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ख़दीजा व फ़ज़्लुहा रज़ियल्लाहो अन्हा)*।

आदर्श चरित्र

आप[स.] का स्वभाव बहुत सरल था। किसी कष्ट पर घबराते नहीं थे कभी किसी इच्छा के प्रति अत्यधिक प्रभावित नहीं होते थे। आपके जीवन

चरित्र में बताया जा चुका है कि आप के जन्म से पूर्व आप के पिता और बाल्यकाल में आपकी माता का निधन हो गया था। प्रारम्भिक आठ वर्ष आप ने अपने दादा अब्दुल मुत्तलिब के संरक्षण में गुज़ारे। तत्पश्चात् आप का पालन-पोषण आप के चाचा अबू तालिब की छत्रछाया में हुआ। चाचा का रक्त-संबंध भी था तथा उनके पिता ने मरते समय रसूले करीम (स.अ.व.) के पक्ष में विशेष तौर पर वसीयत की थी। इसलिए वह रसूले करीम (स.अ.व.) पर विशेषरूप से स्नेह की दृष्टि रखते थे। आप का विशेष ध्यान भी रखते थे परन्तु चाची में वह सहानुभूति की भावना न थी और न ही घरेलू दायित्वों का आभास। जब घर में कोई वस्तु आती तो प्रायः वह अपने बच्चों को पहले देतीं तथा आप[स.] की उपेक्षा करती। अबू तालिब घर में आते तो बजाए इसके कि अपने छोटे भतीजे को रोते हुए या शिकायत करते हुए पाते, वे देखते कि उनके बच्चे तो कोई वस्तु खा रहे हैं परन्तु उन का छोटा सा भतीजा साक्षात गरिमा का स्तम्भ बना एक ओर बैठा था। चाचा का प्रेम और पारिवारिक दायित्व उनके सामने आ जाते वह दौड़कर अपने भतीजे को गोद में ले लेते और कहते मेरे बेटे का भी तो ध्यान रखो, मेरे बेटे का भी तो ध्यान रखो। ऐसा प्रायः होता रहता था परन्तु देखने वाले बताते हैं कि रसूले करीम (स.अ.व.) ने न कभी शिकायत की और न कभी आपके चेहरे पर उदासीनता और विषाद प्रकट हुआ और न इस कारण कभी स्वभाव में झुंझलाहट ने जन्म लिया और न अपने चचेरे भाइयों से ईर्ष्या पैदा हुई इस तथ्य की पुष्टि आपके जीवनादर्शों से हो जाती है कि आपने बाद की परिवर्तित परिस्थितियों में किस प्रकार हज़रत अली और हज़रत जा'फ़र को अपने संरक्षण में लेकर उनके हर प्रकार से जीवनोत्कर्ष के लिए हर प्रकार से उपाय किए।

रसूले करीम (स.अ.व.) का भौतिक जीवन भी बहुत सी कटुताओं से भरा है। जन्म से पूर्व ही पिता का निधन फिर माता और दादा का एक के

बाद एक निधन। फिर जब विवाह हुआ तो आप के बच्चे निरंतर गुज़रते चले गए, इसके बाद आप की कई पत्नियों का निधन हुआ, जिनमें हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] जैसी वफ़ादार और सेवा करने वाली पत्नी भी थीं परन्तु आपने इन समस्त संकटों को प्रसन्नतापूर्वक सहन किया और ये कष्ट न आप को हताश कर सके और न आप की विनोद प्रियता पर कोई प्रभाव डाल सके, हृदय के घाव कभी नेत्रों में नहीं फूटे, चेहरा हर एक के लिए उल्लासपूर्ण रहता तथा बहुत कम ही किसी अवसर पर आपने इस दर्द को प्रकट किया। एक बार एक स्त्री जिसके लड़के का निधन हो गया था वह अपने बेटे की क़ब्र पर रो रही थी। रसूले करीम (स.अ.व.) वहाँ से गुज़रे तो आप ने फ़रमाया— हे स्त्री ! धैर्य धारण कर। ईश्वरेच्छा महान् और सर्वोपरि है। वह स्त्री आप[स.] को पहचानती न थी न थी, उसने उत्तर में कहा— जिस प्रकार मेरा बच्चा मरा है तुम्हारा बच्चा भी मरता तो तुम्हें मालूम होता कि धैर्य क्या होता है। रसूले करीम (स.अ.व.) वहाँ से यह कह कर चल पड़े एक नहीं सात बच्चों की मृत्यु हो चुकी है। अस्तु इस प्रकार ऐसे अवसर पर अपने हृदय की पीड़ा दर्शा दिया करते थे, अन्यथा प्रजा की भलाई और कल्याण में न कोई कमी हुई न आप के उल्लास में कोई अन्तर आया।

सहनशीलता

आप में इतनी सहनशीलता थी कि ख़ुदा तआला ने आपको उस युग में भी बादशाहत प्रदान कर दी थी। आप प्रत्येक की बात सुनते, यदि वह कठोर वाणी का प्रयोग करता तो आप मौन हो जाते तथा कभी कठोर वचन बोलने वाले व्यक्ति का उत्तर कठोर शब्दों में न देते। मुसलमान रसूले करीम (स.अ.व.) को आप के नाम के स्थान पर आपकी आध्यात्मिक उपाधि द्वारा अर्थात् हे रसूलुल्लाह कह कर बुलाते थे तथा दूसरे धर्मावलंबी एशियाई नियम के अनुसार आप[स.] का आदर-सम्मान इस प्रकार करते

कि आपको मुहम्मद कह कर पुकारने की बजाए अबू क़ासिम कह कर बुलाते थे जो आप की उपाधि थी। (अबू क़ासिम का अर्थ है क़ासिम का बाप। क़ासिम आपके एक बेटे का नाम था) एक बार एक यहूदी मदीना में आया और आकर आप[स.] से बहस करने लगा। बहस के मध्य में वह बार-बार कहता था— हे मुहम्मद ! बात यों है। हे मुहम्मद ! बात यों है। रसूले करीम (स.अ.व.) उसकी बातों का उत्तर बिना किसी संकोच के देते थे परन्तु सहाबा उसकी यह धृष्टता देखकर व्याकुल हो रहे थे। अन्ततः एक सहाबी से न रहा गया और उसने यहूदी से कहा कि ख़बरदार ! आप का नाम लेकर बात न करो। तुम रसूलुल्लाह नहीं कह सकते तो कम से कम अबू क़ासिम कहो। यहूदी ने कहा मैं तो वही नाम लूँगा जो उनके माता-पिता ने उन का रखा था। रसूले करीम (स.अ.व.) मुस्कराए और अपने सहाबा से कहा— देखो यह ठीक कहता है— मेरे माता-पिता ने मेरा नाम मुहम्मद ही रखा था यह जो नाम लेना चाहता है उसे लेने दो तथा उस पर क्रोध न करो।

आप जब बाहर काम के लिए निकलते तो कुछ लोग आप का मार्ग रोक कर खड़े हो जाते और अपनी आवश्यकताएँ बताने लग जाते। जब तक वे लोग अपनी आवश्यकताओं का वर्णन न कर लेते आप खड़े रहते। जब वे बात समाप्त कर लेते तो आप आगे चल पड़ते। इसी प्रकार कुछ लोग हाथ मिलाते समय देर तक आपका हाथ पकड़े रखते, यद्यपि यह ढंग अप्रिय है और कार्य में रोक पैदा करने का कारण है परन्तु आप कभी अपने हाथ को उनके हाथ से न छुड़ाते अपितु जब तक वह हाथ मिलाने वाला आपके हाथ को पकड़े रखता आप अपना हाथ उसके हाथ में रहने देते। आप के पास हर प्रकार की आवश्यकताओं वाले लोग आते तथा अपनी आवश्यकताएँ प्रस्तुत करते। कई बार आप माँगने वाले को उसकी आवश्यकतानुसार कुछ दे देते तो वे अपनी लालसावश और अधिक की

मांग करता और आप पुनः भी उसकी इच्छापूर्ति कर देते। कुछ लोग कई बार मांगते चले जाते और आप उन्हें हर बार कुछ न कुछ देते चले जाते। जो व्यक्ति विशेष तौर पर निश्छल दिखाई देता उसे उसके माँगने के अनुसार दे देने के पश्चात् केवल इतना कह देते कि क्या ही अच्छा होता यदि तुम ख़ुदा पर भरोसा करते। अतः एक बार एक वफ़ादार सहाबी ने निरन्तर आग्रह करके आप से कई बार अपनी आवश्यकताओं के लिए रुपया मांगा। आप ने उसकी इच्छापूर्ति तो कर दी परन्तु अन्त में कहा— सब से अच्छा स्थान तो यही है कि मनुष्य ख़ुदा पर भरोसा करे। उस सहाबी के अन्दर निष्कपटता थी और सभ्यता भी थी जो कुछ वह ले चुका उसे सम्मानपूर्वक वापस न किया परन्तु भविष्य के बारे में उसने कहा हे अल्लाह के रसूल ! यह मेरी अन्तिम बात है अब मैं भविष्य में कभी किसी से किसी अवस्था में भी प्रश्न नहीं करूँगा।

एक बार युद्ध हो रहा था बड़ा भीषण युद्ध था। बर्छे चल रहे थे, तलवारें परस्पर टकरा रही थीं, सैनिक पर सैनिक टूटा पड़ रहा था कि उसी सहाबी के हाथ से ठीक उस समय जब कि वह शत्रु के घेरे में फंसे हुए थे उनके हाथ से कोड़ा गिर गया। एक साथी पैदल सैनिक ने इस विचार से कि यदि अफ़सर नीचे उतरा तो ऐसा न हो कि कोई हानि पहुँच जाए झुक कर कोड़ा उठाना चाहा ताकि उसके हाथ में दे दे। उस सहाबी की दृष्टि उस सैनिक पर पड़ गई। उन्होंने कहा— हे मेरे भाई ! तुझे ख़ुदा ही की क़सम तू कोड़े को हाथ न लगा। यह कहते हुए वह घोड़े से कूद पड़े और कोड़ा उठा लिया फिर अपने उस पैदल चलने वाले साथी से कहा— मैंने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को वचन दिया था कि मैं किसी से मांगने के लिए हाथ नहीं फैलाऊँगा। यदि मैं तुम्हें कोड़ा उठाने देता तो यद्यपि मैंने इस के लिए तुम से आग्रह नहीं किया था परन्तु इस में संभावना थी कि कदाचित् वर्तमान समय की स्थिति में मेरा यह कृत्य भिक्षावृत्ति बन जाता और मुझे

वचन भंग करने वाला बना देता। यद्यपि यह रणभूमि है तथापि मैं अपना कार्य स्वयं ही करूँगा।

न्याय

आप[स.] के अन्दर न्याय और इन्साफ़ इतना पाया जाता था कि जिसका उदाहरण संसार में कहीं नहीं पाया जाता। अरबों में पक्षपात और सिफ़ारिशों को स्वीकार करने का एक सामान्य रोग था। अरब ही नहीं आधुनिक युग के सभ्य देशों में भी देखा जाता है कि बड़े लोगों को दण्ड देते समय संकोच करते हैं और ग़रीबों को दण्ड देते समय नहीं घबराते। एक बार आप के पास एक मुक़द्दमा पेश हुआ। एक प्रतिष्ठित वंश की किसी स्त्री ने किसी अन्य के माल को हड़प लिया था। जब वास्तविकता प्रकट हो गई तो अरबों में बहुत जोश पैदा हुआ क्योंकि एक बहुत पड़े प्रतिष्ठित वंश का अपमान होता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने चाहा कि रसूले करीम (स.अ.व.) के सामने निवेदन करें कि इस स्त्री को क्षमा कर दिया जाए। अन्य किसी व्यक्ति ने तो आगे होने का साहस न किया परन्तु लोगों ने रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के प्रिय उसामा[रज़ि.] बिन ज़ैद को चुना कि वह आप[स.] से उस स्त्री की सिफ़ारिश करें। उसामा[रज़ि.] ने आप[स.] से बात आरम्भ ही की थी कि आप के चेहरे पर क्रोध के लक्षण प्रकट हुए तथा आप ने फ़रमाया— उसामा ! यह क्या कह रहे हो, पूर्वकालीन जातियां इसी प्रकार नष्ट हुईं कि बड़े लोगों के साथ व्यवहार में कोमलता तथा छोटे लोगों के साथ अन्याय करती थीं। इस्लाम इस बात की आज्ञा नहीं देता और मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता। ख़ुदा की क़सम यदि मेरी बेटी फ़ातिमा भी इस प्रकार का अपराध करती तो मैं उसे दण्ड दिए बिना न छोड़ता। वह वृत्तान्त पहले वर्णन किया जा चुका है कि बदर-युद्ध में जब हज़रत अब्बास[रज़ि.] क़ैद हुए तो उन के कराहने से आप को कष्ट महसूस हुआ परन्तु जब

सहाबा ने आपका कष्ट देख कर हज़रत अब्बास के बन्धनों की रस्सियां खोल दीं और रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को यह बात मालूम हो गई तो आप ने फ़रमाया— जैसे मेरे परिजन वैसे ही दूसरों के परिजन। या तो मेरे चाचा अब्बास को भी पुनः रस्सियों से बांध दो अथवा समस्त क़ैदियों की रस्सियां खोल दो। सहाबा को चूंकि रसूले करीम (स.अ.व.) के कष्ट का आभास था, उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! हम सभी क़ैदियों की रस्सियां खोल देते हैं। अतः उन्होंने समस्त क़ैदियों की रस्सियां खोल दीं।

आप[स.] युद्ध के अवसर पर भी न्याय को दृष्टिगत रखते थे। एक बार आप[स.] ने कुछ सहाबा को बाहर शत्रुओं की सूचनाएं लाने के लिए भेजा। शत्रु के कुछ लोग उन्हें हरम (विशेष पवित्र स्थान) की सीमा में मिल गए। इन्होंने सोचा कि यदि हमने उन्हें जीवित छोड़ दिया तो ये जाकर मक्का वालों को सूचित कर देंगे और हम मारे जाएँगे, इन्होंने उन पर आक्रमण कर दिया, परिणामस्वरूप एक उनमें से मारा गया। जब यह शत्रुओं की सूचनाएँ मालूम करने वाला दल मदीना वापस पहुँचा तो पीछे-पीछे मक्का वालों की ओर से भी एक दल शिकायत लेकर आया कि इन्होंने हरम के अन्दर हमारे दो लोग मार दिए हैं। जो लोग हरम की सीमा में मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) पर अत्याचार करते रहते थे उन्हें उत्तर तो यह मिलना चाहिए था कि तुम ने कब 'हरम' का सम्मान किया कि तुम हम से 'हरम' के सम्मान की आशा रखते हो परन्तु मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने यह उत्तर तो न दिया अपितु फ़रमाया— हाँ, अन्याय हुआ है; क्योंकि संभव है इस विचार से कि 'हरम' में वे सुरक्षित हैं उन्होंने अपने बचाव का पूरा प्रयास न किया हो, इसलिए आप लोगों को वध का फ़िद्या (नक़द राशि के रूप में बदला) दिया जाएगा। अतः आप[स.] ने क़त्ल का वह फ़िदया जिसका अरबों में प्रचलन था उनके उत्तराधिकारियों को अदा कर दिया।

भावनाओं का आदर

स्वजन तो स्वजन आप[स.] दूसरों की भावनाओं का भी अत्यधिक सम्मान करते थे। एक बार आप के पास यहूदी आया और शिकायत की कि देखिए हज़रत ! अबू बकर ने मेरा दिल दुखाया है तथा यह कहा है कि मैं मुहम्मद (स.अ.व.) की सौगन्ध खाकर कहता हूँ जिसे ख़ुदा ने मूसा से श्रेष्ठ बनाया है। इस बात से मेरे हृदय को कष्ट पहुँचा है। आप[स.] ने हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] को बुलाकर उनसे पूछा कि यह क्या बात है? हज़रत अबू बकर[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! वार्ता का आरम्भ इस व्यक्ति ने किया था कि मैं मूसा की सौगंध खाकर कहता हूँ जिसे ख़ुदा ने समस्त संसार पर श्रेष्ठता प्रदान की है। इस पर मैंने कहा— मैं मुहम्मद रसूलुल्लाह की सौगन्ध खा कर कहता हूँ जिसे ख़ुदा ने मूसा से श्रेष्ठतर बनाया है। आपने कहा— ऐसा नहीं करना चाहिए। दूसरों की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए। मुझे मूसा पर श्रेष्ठता न दिया करो। इसका तात्पर्य यह न था कि आप स्वयं को मूसा से श्रेष्ठ न समझते थे अपितु तात्पर्य यह था कि यह वाक्य कहने से कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को ख़ुदा ने मूसा पर श्रेष्ठता प्रदान की है यहूदियों के हृदयों को कष्ट पहुँचता है।

निर्धनों से सहानुभूति तथा उनकी भावनाओं का आदर

आप[स.] निर्धनों की दशा सुधारने के लिए हमेशा प्रयास करते रहते तथा उन्हें समाज में उचित स्थान देने का प्रयत्न करते। एक बार आप बैठे हुए थे कि आप के सामने से एक धनाढ्य व्यक्ति गुज़रा। आप ने एक साथी से पूछा— इस व्यक्ति के बारे में तुम्हारी क्या राय है? उसने कहा— यह व्यक्ति प्रतिष्ठित और धनाढ्य लोगों में से है, यदि यह किसी लड़की से निकाह की इच्छा करे तो उसकी बात स्वीकार की जाएगी, और यदि यह

किसी की सिफ़ारिश करे तो इसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जाएगी। आप[स.] यह बात सुनकर ख़ामोश रहे, तत्पश्चात् एक अन्य व्यक्ति गुज़रा जो निर्धन और दरिद्र प्रतीत होता था। रसूले करीम (स.अ.व.) ने उस साथी से पूछा— इसके बारे में तुम्हारी क्या राय है? उस ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह निर्धन व्यक्ति है और इस योग्य है कि यदि यह किसी लड़की से निकाह का निवेदन करे तो उसके निवेदन को अस्वीकार कर दिया जाए और यदि सिफ़ारिश करे तो उसकी सिफ़ारिश अस्वीकार कर दी जाए और यदि यह बातें सुनाना चाहे तो इसकी बातों की ओर ध्यान न दिया जाए। यह सुनकर रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— इस निर्धन व्यक्ति का महत्व इस से भी अधिक है कि समस्त संसार सोने से भर दिया जाए।

(बुख़ारी किताबुर्रिक़ाक़ बाब फ़ज़्लुलफ़क़्र)

एक निर्धन स्त्री मस्जिद की सफ़ाई किया करती थी। रसूले करीम (स.अ.व.) ने उसे कुछ दिनों तक न देखा तो आप ने पूछा— वह स्त्री दिखाई नहीं देती। लोगों ने कहा— उसका निधन हो चुका है। आप ने कहा— जब उसका निधन हो गया था तो तुम ने मुझे क्यों सूचना न दी कि मैं भी उसके जनाज़े में सम्मिलित हो जाता। पुनः कहा— कदाचित् तुम ने उसे निर्धन देखकर हीन समझा। ऐसा करना उचित नहीं था। मुझे बताओ उसकी क़ब्र कहाँ है। आप उसकी क़ब्र पर गए और जाकर उसके लिए दुआ की। *(बुख़ारी किताबुस्सलात बाब कन्सुल मस्जिद)*

आप[स.] कहा करते थे कि बहुत से लोग ऐसे होते हैं कि उनके सर के बाल बिखरे हुए होते हैं, उन के शरीरों पर मिट्टी पड़ी होती है, यदि वे लोगों से मिलने जाएँ तो लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं परन्तु ऐसे लोग यदि अल्लाह तआला की क़सम खा बैठें तो ख़ुदा तआला को उन का इतना सम्मान होता है कि वह उनकी क़सम पूरी करके छोड़ता है।

(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुलबिर्रेवस्सिलह बाब फ़ज़्लुज़्ज़ुअफ़ा)

एक बार रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के कुछ निर्धन सहाबा जो किसी समय में दास होते थे बैठे हुए थे अबू सुफ़यान उन के सामने से गुज़रे तो उन्होंने उसके सामने इस्लाम की विजय की कुछ चर्चा की। हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] सुन रहे थे, उन्हें यह बात अप्रिय महसूस हुई कि क़ुरैश के सरदार का अपमान किया गया है। उन्होंने उन लोगों से कहा— क्या तुम क़ुरैश के सरदार और उनके अफ़सर का इस प्रकार अपमान करते हो। फिर हज़रत अबू बक्र[रज़ि.] ने हज़रत रसूले करीम (स.अ.व.) के पास आकर यही बात शिकायत के रूप में प्रस्तुत की। आप[स.] ने फ़रमाया— हे अबू बकर ! शायद तुम ने अल्लाह तआला के इन विशेष लोगों को नाराज़ कर दिया है। यदि ऐसा हुआ तो स्मरण रखो कि तुम्हारा रब्ब भी तुम से नाराज़ हो जाएगा। हज़रत अबू बकर उसी समय उठे तथा उन लोगों के पास वापस आए और कहा— हे मेरे भाइयो ! क्या मेरी बात से तुम नाराज़ हो गए हो? उस पर उन दासों ने उत्तर दिया— हे हमारे भाई ! हम नाराज़ नहीं हुए, ख़ुदा आप की भूल क्षमा करे।

(मुस्लिम किताबुल फ़ज़ायल बाब मिन फ़ज़ायले सलमान व सुहैब व बिलाल[रज़ि.])

परन्तु जहाँ आप[स.] निर्धनों का मान-सम्मान करते और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते थे वहाँ आप उन्हें आत्मसम्मान की शिक्षा देते थे और माँगने से मना करते थे। अतः आप सदैव कहा करते थे कि दरिद्र वह नहीं जिसे एक खजूर या दो खजूरें या एक ग्रास या दो ग्रास सन्तुष्ट कर दें। दरिद्र वह है जो चाहे कितने ही संकटों से गुज़रे किसी से न मांगे। *(बुख़ारी किताबुलकुरूब बाबो क़ौलिल्लाहि तआला* لَا يَسْئَلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا*)* आप[स.] अपनी जमाअत को यह भी उपदेश देते रहते थे कि हर वह प्रीतिभोज जिसमें निर्धनों को आमंत्रित न किया जाए वह सर्वथा अमान्य प्रीतिभोज है। *(बुख़ारी किताबुन्निकाह बाब मन तरकद्दा'वता फ़क़द असल्लाह व रसूलहू)*

हज़रत आइशा[रज़ि.] कहती हैं— एक बार एक निर्धन स्त्री मेरे पास

आई। उसके साथ दो बेटियां भी थीं। उस समय हमारे घर में एक खजूर के अतिरिक्त कुछ भी न था। मैंने उसे वही खजूर दे दी। उसने वह खजूर आधी-आधी करके दोनों लड़कियों को खिला दी और फिर उठकर चली गई। जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) घर में आए तो मैंने आप[स.] को यह घटना सुनाई। आप[स.] ने कहा— जिस निर्धन के घर में बेटियां हों और वह उनके साथ सद्व्यवहार करे, ख़ुदा तआला उसे प्रलय के दिन नर्क के अज़ाब से सुरक्षित रखेगा। फिर फ़रमाया— अल्लाह तआला उस स्त्री को इस कर्म के फलस्वरूप स्वर्ग का अधिकारी बनाएगा। *(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुल फ़ज़ायल, बाब फ़ज़्लुइहसान इलल बनात)* मालूम हुआ कि इसी प्रकार एक बार आप को आप के एक सहाबी सअद[रज़ि] जो धनाढ्य थे तथा कुछ अन्य लोगों पर अपनी बड़ाई प्रकट कर रहे थे, रसूले करीम (स.अ.व.) ने यह बात सुनी तो कहा— क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी यह समृद्धि और शक्ति तुम्हें अपने बल पर प्राप्त हुई हैं? ऐसा कदापि नहीं है। तुम्हारी सामाजिक शक्ति तथा तुम्हारे धन सब निर्धनों के द्वारा ही आते हैं।

आप[स.] यह दुआ किया करते थे—

اَللّٰهُمَّ احْيِنِىْ مِسْكِيْنًا وَ اَمِتْنِىْ مِسكِيْنًا وَاحْشُرْنِىْ فِىْ زُمْرَةِ
الْمَسَاكِيْنِ يَوْمَ الْقِيامَةِ- *(तिरमिज़ी जिल्द-2, अब्वाबुज़्ज़ुहद)*

अर्थात् हे अल्लाह ! मुझे दीन होने की अवस्था में जीवित रख, दीन-अवस्था में ही मृत्यु दे तथा मुझे प्रलय के दिन दीनों के साथ ही उठा।

एक बार आप[स.] बाज़ार में जा रहे थे तो आप के एक निर्धन सहाबी जो संयोगवश नितान्त कुरूप भी थे ग्रीष्म ऋतु में भार उठा-उठा कर एक ओर से दूसरी ओर ले जा रहे थे। एक तो उनका चेहरा कुरूप था दूसरी ओर मिट्टी-धूल तथा पसीने के कारण वह और भी अधिक कुरूप दिखाई दे रहा था, ठीक उसी समय आप[स.] बाज़ार से गुज़रे तथा आप[स.] ने उसके चेहरे पर उदासीनता के लक्षण देखे। आप ख़ामोशी से उनके पीछे चले गए

और जिस प्रकार बच्चे आपस में खेलते समय चोरी-छुपे पीछे की ओर से जाकर किसी साथी की आँखों पर हाथ रख देते हैं और फिर यह आशा करते हैं वह अनुमान लगाकर बताए कि किस व्यक्ति ने उसकी आँखें बन्द की हैं। इसी प्रकार आप[स.] ने जाकर उनकी आँखों पर हाथ रख दिए। उसने अपने हाथ से आप के बाज़ू और शरीर को टटोलना आरम्भ किया और समझ लिया कि यह रसूलुल्लाह (स.अ.व.) हैं। यों भी वह समझता था कि इतने निर्धन, इतने कुरूप तथा इतने दुर्दशाग्रस्त व्यक्ति के साथ आप[स.] के अतिरिक्त अपने प्रेम को अन्य कौन प्रकट कर सकता था। यह मालूम करके कि रसूले करीम (स.अ.व.) ही उसके साथ प्रेम प्रकट कर रहे हैं उसने अपना मिट्टी और पसीने से भरा शरीर आप[स.] के लिबास के साथ मलना आरम्भ किया। कदाचित् वह यह देखना चाहता था कि रसूले करीम (स.अ.व.) का प्रेम और सहनशीलता कितनी है। आप मुस्कराते रहे और उसे इस हरकत से रोका नहीं। जब वह जी भर कर आप[स.] के कपड़ों को ख़राब कर चुका तो आप[स.] ने हास्य रूप में कहा, मेरे पास एक दास है, कोई उसका खरीदार है? आप के इस वाक्य ने उस हीनभावना ग्रस्त मनुष्य का ध्यान इस ओर फेर दिया कि मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के अतिरिक्त मुझे कौन सम्मान की दृष्टि से देख सकता है और मैं किस योग्य हूँ कि मुझे दास के तौर पर ही ख़रीदे। उसने उदासीनता के साथ कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरा ख़रीदार संसार में कोई नहीं। आप[स.] ने फ़रमाया— नहीं ! नहीं ! ऐसा मत कहो तुम्हारा महत्त्व ख़ुदा की दृष्टि में बहुत अधिक है। निर्धनों पर न केवल आपकी ही कृपा दृष्टि होती अपितु अपने अनुयायियों को भी असहायों और निर्धनों पर कृपा दृष्टि रखने की हमेशा नसीहत करते रहते थे। अतः हज़रत अबू मूसा अश्अरी[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास कोई मुहताज आता तो आप अपनी सभा में बैठे हुए लोगों से कहते कि आप लोग भी इसकी

सिफ़ारिश करें ताकि शुभ कर्म की सिफ़ारिश के पुण्य फल में सम्मिलित हो जाएँ। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

इसी प्रकार एक ओर तो अपनी जमाअत के लोगों के हृदयों में निर्धनों की सहायता भी भावना जागृत करते थे तथा दूसरी ओर स्वयं मांगने वाले के हृदय में दूसरे मुसलमानों के प्रति प्रेम-भावना को बल देने का प्रयास करते थे।

निर्धनों की सम्पत्ति की सुरक्षा

इस्लाम की विजय के पश्चात् रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास बहुत सी धन सम्पत्ति आती और आप उसे मुहताजों में बांट देते। एक बार बहुत सी धन सम्पत्ति आई तो आप की बेटी हज़रत फ़ातिमा[रज़ि.] आपकी सेवा में उपस्थित हुईं और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह देखिए मेरे हाथ चक्की पीस-पीस कर घायल हो गए हैं, यदि आप मुझे इस सम्पत्ति में से कोई दासी या दास दे दें तो वह मेरी सहायता कर दिया करें तो आप ने कहा— फ़ातिमा मेरी बेटी ! मैं तुम्हें दासी या सेवक रखने से अधिक मूल्यवान वस्तु बताता हूँ— (जब तुम सोने लगो तो तेतीस बार सुब्हान अल्लाह, तेतीस बार 'अलहम्दो लिल्लाह' और चौंतीस बार 'अल्लाहो अकबर' पढ़ लिया करो। यह तुम्हारे लिए दासी ओर सेवक से अधिक उत्तम होगा। *(बुख़ारी किताबु द्दा'वात बाब अत्तक्बीर वत्तस्बीह इन्दल मनाम)*

एक बार कुछ धन राशि आई और आप ने उसको वितरित कर दिया। वितरण करते समय आप के हाथ से एक दीनार गिर गया तथा किसी वस्तु की ओट में आ गया। धन-वितरण करते-करते आप के मस्तिष्क से यह बात निकल गई। सारा धन बांटने के पश्चात् आप मस्जिद में आए और नमाज़ पढ़ाई। नमाज़ के पश्चात् बजाए इसके कि ख़ुदा की स्तुति में व्यस्त हो जाते जैसी कि आपकी आदत थी या लोगों को अपनी आवश्यकताओं को प्रस्तुत करने अथवा कुछ प्रश्न पूछने का अवसर देते आप बड़ी शीघ्रता

से अपने घर की ओर गए ऐसी शीघ्रता के साथ कि कुछ सहाबा कहते हैं कि हमें फलांगते हुए आप अन्दर की ओर चले गए और दीनार तलाश किया फिर वापस आए और बाहर जाकर वह दीनार किसी मुहताज को देते हुए फ़रमाया— यह दीनार गिर गया था और मैं भूल गया था, मुझे नमाज़ पढ़ाते हुए याद आया मेरा हृदय इस विचार से व्याकुल हो गया कि यदि मेरी मृत्यु हो गई और लोगों का यह धन मेरे घर में पड़ा रहा तो मैं ख़ुदा को क्या उत्तर दूँगा। इसलिए मैं तुरन्त अन्दर गया और यह निकाल लाया। (बुख़ारी किताबुल कुसूफ़ باب من احب تعجيل الصدقه من يومها)

इस से भी बढ़कर यह कि आपने सदक़ा(निर्धनों तथा मुहताजों के निमित्त दिया गया दान) लेना अपनी संतान के लिए निषिद्ध कर दिया ताकि ऐसा न हो कि आप[स.] के सम्मान और प्रतिष्ठा के कारण ऐसे ही दान और ख़ैरात में आए हुए धन का लोग आप[स.] की सन्तान में ही वितरण कर दिया करें और अन्य निर्धन वंचित रह जाएँ।

एक बार आप के सामने ऐसे ही दान में आई कुछ खजूरें लाई गईं। हज़रत इमाम हसन[रज़ि.] ने जो आप के दोहते (धेवते) थे जिनकी आयु उस समय दो-ढाई वर्ष की थी। उस समय आप के पास बैठे हुए थे, उन्होंने एक खजूर मुँह में डाल ली। रसूले करीम (स.अ.व.) ने तुरन्त उंगली डालकर उनके मुँह से खजूर निकाल ली और कहा— इस पर हमारा अधिकार नहीं, इस पर ख़ुदा के निर्धन लोगों का अधिकार है। *(बुख़ारी किताबुलकुसूफ़ बाब अख्ज़ो सदक़ातित्तम्र)*

दासों से सद्व्यवहार

आप[स.] दासों से सद्व्यवहार का सदैव ही उपदेश देते रहते। आप का आदेश था कि यदि किसी व्यक्ति के पास दास हो और वह उसे आज़ाद करने की सामर्थ्य न रखता हो तो यदि वह किसी समय क्रोध में उसे मार

बैठे अथवा गाली दे तो उसका पश्चाताप यही है कि उसे आज़ाद कर दे। *(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुल ईमान)*

इसी प्रकार आप दासों को आज़ाद करने पर इतना बल देते थे कि हमेशा कहा करते थे कि जो व्यक्ति किसी दास को आज़ाद करता है अल्लाह तआला उस दास के प्रत्येक अंग के बदले में आज़ाद करने वाले के हर अंग पर नर्काग्नि को शान्त कर देगा। आप फ़रमाया करते थे— दास से उसकी सामर्थ्य से बढ़कर काम न लो तथा जब उससे कोई काम लो तो उसके साथ मिलकर काम किया करो ताकि उसे अपमान का आभास न हो *(मुस्लिम जिल्द-2 किताबुल ईमान)*

जब यात्रा करो तो उसे सवारी पर अपने साथ बिठाओ अथवा उसके साथ बारी निश्चित करके सवारी पर बैठो। इस सम्बन्ध में आप इतना बल देते थे कि हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] जो इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात् हर समय आप के साथ रहते थे और आप[स.] की इस शिक्षा को प्रायः सुनते रहते थे और कहा करते थे, उस ख़ुदा की क़सम जिसके हाथ में अबू हुरैरा के प्राण हैं यदि ख़ुदा के मार्ग में मुझे जिहाद* करने का अवसर मिल रहा होता तथा हज करने का अवसर न मिल रहा होता और मेरी बूढ़ी माँ जीवित न होती जिसकी सेवा मुझ पर अनिवार्य है तो मैं चाहता कि मेरी मृत्यु दासता की अवस्था में हो; क्योंकि आप[स.] दास के प्रति सदैव हितकारी बातों का उपदेश देते थे। *(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुल ईमान)*

मा'रूर बिन सुवैद[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि मैंने रसूले करीम (स.अ.व.) के सहाबी हज़रत अबू ज़र ग़फ़्फ़ारी[रज़ि.] को देखा कि जैसे उनके कपड़े थे वैसे ही उन के दास के थे। इसका कारण पूछा कि आप के और आप के दास के कपड़े एक समान क्यों हैं? तो उन्होंने बताया कि मैंने एक बार

---

* इस्लाम धर्म को मिटाने के लिए शस्त्रों द्वारा युद्ध करने वाले विधर्मियों के विरुद्ध रक्षात्मक युद्ध करना। (अनुवादक)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के युग में एक व्यक्ति को उसकी माँ पर कटाक्ष करते हुए कहा कि वह दासी थी। इस पर रसूले करीम (स.अ.व.) ने फ़रमाया— तू तो ऐसा व्यक्ति है जिसमें अभी तक कुफ्र की बातें विद्यमान हैं। दास क्या हैं, तुम्हारे भाई हैं और तुम्हारी शक्ति का साधन हैं। ख़ुदा तआला की किसी रहस्यमय नीति के अधीन वे कुछ समय के लिए तुम्हारे अधिकार (क़ब्ज़े) में आ जाते हैं। अत: आवश्यक है कि जिसका भाई उसकी सेवा के अधीन आ जाए तो वह जो कुछ स्वयं खाता है उसे खिलाए और जो कुछ स्वयं पहनता है उसे पहनाए तथा तुम में से कोई व्यक्ति किसी दास से ऐसा काम न ले जिसकी उस में शक्ति न हो तथा जब तुम उन्हें कोई काम बताओ तो स्वयं भी उनके साथ मिलकर काम किया करो। *(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुल ईमान)*

इसी प्रकार आप कहा करते थे कि जब तुम्हारा नौकर जब तुम्हारे लिए खाना लाए तो उसे अपने साथ बैठाकर कम से कम थोड़ा सा खाना अवश्य खिलाओ; क्योंकि उसने खाना पका कर अपना स्वत्व भी निश्चित कर लिया है। *(मुस्लिम जिल्द-2, किताबुल ईमान)*

मानव समाज की सेवा करने वालों का सम्मान

आप[स.] उन लोगों का विशेष ध्यान रखते थे जो मानव-सेवा में अपना समय खर्च करते थे। जब 'तय' क़बीले के लोगों ने रसूले-करीम (स.अ.व.) से लड़ाई की और उन में से कुछ लोग बन्धक बना कर लाए गए तो उनमें हातिम जो अरब का प्रसिद्ध दानशील हुआ है उसकी बेटी भी थी। जब उसने आप[स.] को यह बताया कि वह हातिम की बेटी है तो आप ने उससे उसका यथावश्यक आदर और सम्मान किया तथा उसकी सिफ़ारिश पर उसके कबीले के लोगों के दण्ड क्षमा कर दिए। *(अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-227 सरियह अली बिन अबी तालिब कर्रमल्लाहो वज्हहू)*

स्त्रियों से सद्व्यवहार

आपस॰ स्त्रियों से सद्व्यवहार पर बहुत बल देते थे। आप ने संसार में सब से पहले स्त्रियों के रिक्थाधिकार (विरसे के अधिकार) को मान्यता दी। अतः क़ुर्आन करीम में लड़कों और लड़कियों को पिता और माता के मृत्योपरान्त उनकी सम्पत्ति (रिक्थ) का उत्तराधिकारी ठहराया गया है। इसी प्रकार माताओं और पत्नियों को बेटियों और पतियों की सम्पत्ति (रिक्थ) में उत्तराधिकारी बनाया गया है तथा कुछ परिस्थितियों में बहनों को भी भाइयों की सम्पत्ति (रिक्थ) में बहनों का भी अधिकार स्वीकार किया गया है। इस्लाम से पूर्व संसार के किसी धर्म ने भी इस प्रकार के अधिकारों की मान्यता नहीं दी। इसी प्रकार आपने स्त्री को उसके धन का स्थायी मालिक ठहराया है। पति को अधिकार नहीं कि पति होने के कारण पत्नी के धन में हस्तक्षेप कर सके। पत्नी अपने धन को व्यय करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। पत्नियों के साथ सद्व्यवहार में आप ऐसे बढ़े हुए थे कि अरब के लोग जो इस बात के अभ्यस्त न थे— उन्हें यह बात देखकर ठोकर लगती थी। अस्तु, हज़रत उमररज़ि॰ वर्णन करते हैं कि मेरी पत्नी कई बार मेरी बातों में हस्तक्षेप करती तो मैं उसे डांटा करता था और कहा करता था कि अरब के लोगों ने स्त्रियों का यह अधिकार स्वीकार नहीं किया कि वे पुरुषों को उनके कार्यों में परामर्श दें। इस पर मेरी पत्नी कहती— जाओ, जाओ मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) को उनकी पत्नियां परामर्श देती हैं और आपस॰ उन्हें कभी नहीं रोकते तो तुम ऐसा क्यों कहते हो? इस पर मैं उस से कहता था कि आइशारज़ि॰ तो आपस॰ की बहुत लाड़ली है उसकी बात न करे, शेष रही तुम्हारी बेटी, तो यदि वह ऐसा करती है तो अपनी धृष्टता का परिणाम कभी भुगतेगी।

एक बार जब रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने किसी बात से नाराज़ होकर

निर्णय कर लिया कि कुछ दिन घर से बाहर रहेंगे तथा पत्नियों के पास नहीं जाएँगे। मुझे इसकी सूचना मिली तो मैंने कहा— देखो जो मैं कहता था वही हो गया। मैं अपनी बेटी हफ़्सा[रज़ि.] के घर गया तो वह रो रही थीं। मैंने कहा हफ़्सा[रज़ि.] क्या हुआ? क्या रसूलुल्लाह (स.अ.व.) ने तुम्हें तलाक़ दे दी है। उन्होंने कहा— यह तो मुझे मालूम नहीं परन्तु रसूले करीम (स.अ.व.) ने किसी बात पर यह निर्णय कर लिया है कि वह कुछ समय तक घर में नहीं आएंगे। हज़रत उमर[रज़ि.] कहते हैं— मैंने कहा— हफ़्सा ! मैं तुझे पहले नहीं समझाया करता था कि तू आइशा[रज़ि.] की नक़लें करती है हालांकि आइशा तो रसूले करीम (स.अ.व.) को विशेष तौर पर प्रिय है। देख अन्ततः तूने वही संकट सर पर ले लिया जिसका मुझे भय था। यह कह कर मैं रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास गया। आप[स.] एक ख़ुरदरी चटाई पर लेटे हुए थे, आपके शरीर पर कुर्ता न था तथा आप के सीने और कमर पर चटाई के निशान लगे हुए थे। मैं आपके पास बैठ गया और कहा— हे अल्लाह के रसूल ! ये क़ैसर तथा किस्रा कहां अधिकार रखते हैं इस बात का कि उन्हें ख़ुदा की ने'मतें मिलें परन्तु वे तो किस आराम से जीवन व्यतीत कर रहे हैं और ख़ुदा के रसूल को यह कष्ट है। आप[स.] ने फ़रमाया— उमर[रज़ि.] यह उचित नहीं। इस प्रकार के जीवन ख़ुदा के रसूलों के नहीं होते, यह सांसारिक राजे महाराजाओं का काम है। फिर मैंने आप[स.] को वह पूरा वृत्तान्त सुनाया जो मेरी पत्नी और बेटी के साथ गुज़रा था। आप[स.] मेरी बात सुनकर हंस पड़े और कहा— उमर[रज़ि.] यह बात सही नहीं कि मैंने अपनी पत्नियों को तलाक़ दे दी है। मैंने तो एक हित को दृष्टिगत रखते हुए अपने घर से बाहर रहने का निर्णय किया है।

(बुख़ारी किताबुन्निकाह बाब मौइज़तुर्रजुले अम्बतहू लिहाले ज़ौजिहा)

आप[स.] को पत्नियों की भावनाओं का बहुत अधिक ध्यान रहता था कि एक बार नमाज़ में एक बच्चे के होने का स्वर सुनाई दिया तो आपने

नमाज़ जल्दी-जल्दी पढ़ा कर समाप्त कर दी। फिर कहा— एक बच्चे के रोने की आवाज़ आई थी। मैंने सोचा कि उसकी मां को कितना कष्ट हो रहा होगा। अतः मैंने नमाज़ जल्दी समाप्त कर दी ताकि मां अपने बच्चे की देखभाल कर सके।

(बुख़ारी किताबुस्सलात बाब मन अख़फ़्फ़स्सलात इन्दा बुकाइस्सबिय्ये)

जब आप[स.] ऐसी यात्रा पर जाते जिसमें स्त्रियां भी साथ होतीं तो हमेशा धीरे चलने का आदेश देते। एक बार ऐसे ही अवसर पर जबकि सिपाहियों ने अपने घोड़ों की बागें और ऊँटों की नेकेलें ढीली छोड़ दीं। आप ने फ़रमाया— رِفْقًا بِالْقَوَارِيْرِ अरे क्या करते हो स्त्रियां भी साथ है। यदि तुम इस प्रकार ऊँट दौड़ाओगे तो शीशे चकनाचूर हो जाएँगे। *(बुख़ारी किताबुलअदब)* एक बार युद्ध-भूमि में किसी गड़बड़ के कारण सवारियां बिदक गईं, आप[स.] भी घोड़े से गिर गए और कुछ स्त्रियां भी गिर गईं, एक सहाबी जिन का ऊँट रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पीछे था आप को गिरते हुए देख कर आवेग में आ गए तथा कूदकर यह कहते हुए रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की ओर दौड़े, हे अल्लाह के रसूल ! मैं मर जाऊँ आप सुरक्षित रहें आप[स.] के पैर रकाब में उलझे हुए थे, आप ने बड़ी शीघ्रता से अपने पैरों को रकाब से निकाला तथा उस सहाबी की ओर मुख करते हुए कहा— "मुझे छोड़ो और स्त्रियों की ओर जाओ।"

जब रसूले करीम (स.अ.व.) की मृत्यु का समय निकट आया तो उस समय समस्त मुसलमानों को एकत्र करके जो वसीयतें कीं उनमें एक बात यह भी थी कि मैं तुम्हें अपनी अन्तिम वसीयत यह करता हूँ कि स्त्रियों से हमेशा सद्व्यवहार करते रहना। आप[स.] प्रायः कहा करते थे कि जिसके घर में लड़कियां हों और वह उन्हें शिक्षित करे तथा उनका ठीक प्रकार से प्रशिक्षण करे तो ख़ुदा तआला प्रलय के दिन उस के लिए नर्क का निषेध (हराम) कर देगा।

(तिरमिज़ी जिल्द-2, अब्वाबुलबिर्रे वस्सिलते, बाब मा जाआ फ़िन्नफ़क़तिलबनात)

अरबों में यह कुप्रथा थी कि यदि स्त्रियों से कोई ग़लती हो जाती तो मारते-पीटते थे। रसूले करीम (स.अ.व.) को जब इस बात का ज्ञान हुआ तो आप ने कहा— स्त्रियां ख़ुदा की दासियां हैं तुम्हारी दासियां नहीं। उन्हें न मारा करो परन्तु स्त्रियां चूंकि अभी तक पूर्ण रूप से प्रशिक्षित नहीं हुई थी, वे इस बात का ग़लत अर्थ लेते हुए निर्भीक होकर पुरुषों से मुक़ाबला करने लगीं तथा घरों में लड़ाई-झगड़े होने लगे। अन्ततः हज़रत उमररज़ि. ने रसूलुल्लाह से शिकायत की कि आपस. ने हमें स्त्रियों को मारने से रोक दिया है और वे बहुत निर्भीक हो गई हैं। ऐसी अवस्था में तो हमें आज्ञा मिलनी चाहिए कि हम उन्हें मार-पीट लिया करें। चूंकि अभी तक स्त्रियों के संबंध में विस्तार के साथ आदेश नहीं आए थे। आपस. ने फ़रमाया— यदि कोई स्त्री सीमा का उल्लंघन करती है तो तुम अपने रिवाज के अनुसार कोई दण्ड दे सकते हो। इसका परिणाम यह हुआ कि इसकी बजाए कि पुरुष किसी अपवादस्वरूप अपनी पत्नियों को शारीरिक दण्ड देते उन्होंने वही पुरानी अरबी प्रथा प्रचलित कर ली। स्त्रियों ने रसूले करीम (स.अ.व.) की पत्नियों के पास आकर शिकायत की तो आप ने अपने सहाबारज़ि. से फ़रमाया— जो लोग अपनी पत्नियों से अच्छा व्यवहार नहीं करते या उन्हें मारते पीटते हैं मैं तुम्हें बता देता हूँ कि वे लोग ख़ुदा के निकट अच्छे नहीं समझे जाते। इसके पश्चात् स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा को नियमबद्ध कर दिया गया और स्त्री जाति ने मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की कृपा से पहली बार आज़ादी से साँस लिया। *(अबू दाऊद किताबुन्निकाह)*

मुआविया बिन हिन्दा फ़रमाते हैं कि मैंने रसूल करीम (स.अ.व.) से पूछा— हे अल्लाह के रसूल ! पत्नी का हम पर क्या अधिकार है? आपस. ने फ़रमाया— ख़ुदा जो तुम्हें खाने के लिए दे वह उसे खिलाओ, ख़ुदा जो तुम्हें पहनने के लिए दे वह उसे पहनाओ, उसे थप्पड़ न मारो, गालियां न दो और उसे घर से न निकालो। (अबू दाऊद)

आप[स.] स्त्रियों की भावनाओं का इतना अधिक ध्यान रखते थे कि जो लोग बाहर यात्रा पर जाते हैं उन्हें जल्दी घर आना चाहिए ताकि उनके परिवार को कष्ट न हो। अतः हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने उन कार्यों को पूर्ण कर ले जिसके लिए यात्रा की गई थी तो उसे चाहिए कि अपने परिजनों का ध्यान रखते हुए जल्दी वापस आए। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

आप[स.] का अपना आचरण यह था कि जब यात्रा से वापस आते थे तो दिन के समय नगर में प्रवेश करते थे। यदि रात आ जाती तो नगर के बाहर डेरा डाल देते थे, प्रातःकाल नगर में प्रवेश करते थे तथा अपने सहाबा को हमेशा मना करते थे कि घर में अचानक आकर अपने परिवार वालों को कष्ट नहीं देना चाहिए। *(बुख़ारी व मुस्लिम)* इसमें आपकी दृष्टि में यह हित निहित था कि स्त्री और पुरुष के संबंध बड़े कोमल होते हैं। यदि पति की अनुपस्थिति में पत्नी ने अपने शरीर और लिबास की स्वच्छता का पूरा ध्यान न रखा हो और पति अकस्मात् आ कर घर में प्रवेश करे तो आशंका होती है कि वे प्रेम भावनाएं जो पति-पत्नी के मध्य होती हैं उन्हें कोई आघात न पहुँचे। अतः आप ने निर्देश दिया कि मनुष्य जब भी यात्रा से वापस आए दिन के समय घर में प्रवेश करे तथा पत्नी और बच्चों को सूचना देने के पश्चात् प्रवेश करे ताकि वे उसके स्वागत के लिए पूर्णरूप से तैयारी कर लें।

मृत्यु प्राप्त लोगों के संबंध में आपका आदर्शाचरण

आप[स.] हमेशा यह भी नसीहत करते रहते थे कि मरने वाले को मृत्यु से पूर्व वसीयत कर देना चाहिए ताकि बाद में उसके परिजनों को कष्ट न पहुँचे। मरने वालों के संबंध में आप का यह भी निर्देश था कि जब कोई व्यक्ति नगर में मर जाए तो लोगों को चाहिए कि उसकी बुराइयों का वर्णन

न करें अपितु उसकी अच्छी बातों और अच्छे कर्मों का वर्णन किया जाए क्योंकि उसकी बुराई वर्णन करने में कोई लाभ नहीं परन्तु उसके सत्कर्मो के वर्णन करने का लाभ यह है कि लोगों के हृदयों में उसके लिए दुआ की प्रेरणा उत्पन्न होगी। *(बुख़ारी)*

आप[स.] इस बात का भी विशेष तौर पर ध्यान रखते थे कि जिन लोगों का निधन हो जाए उनके क़र्ज़े (ऋण) शत प्रतिशत अदा किए जाएँ। अत: जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती और उस पर क़र्ज़ होता तो आप[स.] या तो स्वयं उसका क़र्ज़ अदा कर देते और यदि आप[स.] में उसकी अदायगी की सामर्थ्य न होती तो उस कर्ज़ की आदायगी के लिए उसके परिजनों को कहते और उसका जनाज़ा उस समय तक नहीं पढ़ते थे जब तक उसका क़र्ज़ अदा न कर दिया जाता।

पड़ोसियों से सद्व्यवहार

पड़ोसियों के साथ आप[स.] का व्यवहार बहुत ही अच्छा होता था। आप कहते थे कि जिब्राईल (फ़रिश्ता) मुझे पड़ोसियों के साथ सद्व्यवहार करने का बार-बार आदेश देता है, यहां तक कि मैं सोचता हूँ कि कदाचित् पड़ोसी को उत्तराधिकारी ही बना दिया जाएगा। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

हज़रत अबूज़र[रज़ि.] कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम मुझ से कहा करते थे— हे अबू ज़र ! जब कभी शोरबा (रसा) बनाओ तो पानी अधिक डाल दिया करो तथा अपने पड़ोसियों का भी ख्याल रखा करो। *(मुस्लिम)* इसका तात्पर्य यह नहीं कि दूसरी वस्तुएँ देने की आवश्यकता नहीं अपितु अरब लोग ख़ाना-बदोश (यायावर) थे और उन का सर्वश्रेष्ठ भोजन शोरबा (रसा) होता था। आप ने पड़ोसी की सहायता की दृष्टि से उसी खाने के बारे में फ़रमाया— अपने स्वाद की परवाह न करो अपितु इस बात की परवाह करो कि तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारे

खाने में सम्मिलित हो सके।

हज़रत अबूहुरैरा[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि एक बार रसूलुल्लाह (स.अ.व.) बैठे हुए थे कि आपने फ़रमाया— ख़ुदा की क़सम वह कदापि मोमिन नहीं, ख़ुदा की क़सम वह कदापि मोमिन नहीं, ख़ुदा की क़सम वह कदापि मोमिन नहीं। सहाबा ने पूछा- हे अल्लाह के रसूल ! कौन मोमिन नहीं। आपने फ़रमाया— वह, जिसका पड़ोसी उसके हानि पहुँचाने और दुर्व्यवहार से सुरक्षित नहीं। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)* स्त्रियों को भी आप नसीहत करते अपने पड़ोसिनों का ध्यान रखा करो।

एक बार महिलाओं की सभा में उपदेश दे रहे थे। आप ने कहा— यदि किसी को बकरी का एक पाया (पैर) भी मिले तो उसमें भी वह पड़ोसी को भागीदार बनाए। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

आप सहाबा को सदैव नसीहत करते थे कि यदि तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारी दीवार में ख़ूंटी आदि गाड़ता है या तुम्हारी दीवार से कोई ऐसा काम लेता है जिसमें तुम्हारी कोई हानि नहीं तो उसे रोका न करो। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] कहते हैं कि रसूले करीम (स.अ.व.) फ़रमाया करते थे— जो व्यक्ति ख़ुदा और प्रलय के दिन पर विश्वास रखता है वह अपने पड़ोसी को कष्ट न पहुँचाए, तथा जो कोई अल्लाह और प्रलय के दिन पर विश्वास रखता है वह या तो अच्छी बात कहे या फिर मौन रहे। *(मुस्लिम)*

माता-पिता एवं अन्य परिजनों से सद्व्यवहार

संसार में अधिकांश लोग जब वयस्क हो जाते हैं तो माता-पिता से सद्व्यवहार करने से पीछे हटने लगते हैं। हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स.अ.व.) इस दोष का निवारण करने के लिए माता-पिता के साथ सद्व्यवहार के महत्व को बार-बार स्पष्ट करते रहते थे। अतः अबू हुरैरा[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि एक व्यक्ति रसूले करीम (स.अ.व.) के पास

आया और उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मेरे सद्व्यवहार का कौन सब से अधिक पात्र है ? आपने कहा— तेरी मां। उसने कहा— इसके पश्चात्? आपने कहा— फिर भी तेरी मां। उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! इसके पश्चात् ? आपने कहा— इसके पश्चात् भी तेरी मां। उसने चौथी बार कहा—हे अल्लाह के रसूल ! उसके पश्चात्? तो आप[स.] ने कहा — फिर तेरा पिता, फिर जो उसके नातेदार हों फिर जो उनके नातेदार हों। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

रसूले करीम (स.अ.व.) के बुज़ुर्गों का तो आप के बचपन में ही निधन हो चुका था, पत्नियों के बुज़ुर्ग मौजूद थे। आप सदैव उनका सम्मान करते थे। जब मक्का-विजय के अवसर पर आप ने एक विजेता सेनापति के रूप में मक्का में प्रवेश किया तो हज़रत अबू बक़र[रज़ि.] अपने पिता को आप[स.] की मुलाक़ात कराने के लिए लाए। उस समय आप[स.] ने हज़रत अबू बकर[रज़ि.] से कहा, आप ने इन्हें क्यों कष्ट दिया। मैं स्वयं उनके पास उपस्थित होता। *(अस्सीरतुल हलबिय्यह जिल्द-3, पृष्ठ-99)*

आप सदैव अपने सहाबा से कहते थे कि जो व्यक्ति अपने माता-पिता की वृद्धावस्था के समय मौजूद हो फिर भी स्वर्ग का अधिकारी न बन सके तो उसका बड़ा है दुर्भाग्य है। तात्पर्य यह कि वृद्ध माता-पिता की सेवा मनुष्य को अल्लाह तआला के अनुग्रह का ऐसा पात्र बना देती है कि जिसे अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा का अवसर प्राप्त हो जाए वह अवश्य ही शुभकर्मों में सुदृढ़ और ख़ुदा तआला के अनुग्रह का भागी हो जाता है। *(मुस्लिम)*

एक बार मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) के पास एक व्यक्ति आया और शिकायत की कि हे अल्लाह के रसूल ! मेरे परिजन ऐसे हैं कि मैं उन से सद्व्यवहार करता हूँ और वे मुझ से दुर्व्यवहार करते हैं, मैं उन से उपकार का व्यवहार करता हूँ और वे मुझ पर अन्याय का व्यवहार

करते हैं, मैं उनसे प्रेम-व्यवहार करता हूँ वे मुझ से कटुतापूर्ण आचरण करते हैं। आप[स.] ने फ़रमाया— यदि यह बात है तो फिर तो तुम्हारा सौभाग्य है; क्योंकि ख़ुदा की सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी। *(मुस्लिम किताबुलबिर्रेवस्सिलह)*

एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) दान-पुण्य का उपदेश दे रहे थे तो आप[स.] के एक सहाबी अबू तल्हा[रज़ि.] अन्सारी आए तथा उन्होंने अपना एक बाग़ दान-स्वरूप समर्पित किया। इस पर आप[स.] बहुत प्रसन्न हुए और कहा— अत्युत्तम दान है, बहुत अच्छा दान है, बहुत अच्छा दान है। पुनः कहा— लीजिए अब तो तुम इसे समर्पित कर चुके अब मेरा हृदय चाहता है कि तुम इसका वितरण अपने रिश्तेदारों में कर दो। *(बुख़ारी किताबुत्तफ़्सीर)*

एक बार एक व्यक्ति ने आपके पास आ कर कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं आप से हिजरत की बैअत करता हूँ और मैं आप से ख़ुदा के मार्ग में जिहाद करने की बैअत करता हूँ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरा परमेश्वर मुझ से प्रसन्न हो जाए। आप ने फ़रमाया— क्या तुम्हारे माता-पिता में से कोई जीवित है? उसने कहा— दोनों जीवित हैं। आप[स.] ने कहा— क्या तुम चाहते हो कि ख़ुदा तुम से प्रसन्न हो जाए? उसने कहा— हाँ हे अल्लाह के रसूल। आप[स.] ने फ़रमाया— फिर श्रेयस्कर यह है कि वापस जाओ और अपने माता-पिता की सेवा करो तथा भरसक सेवा करो। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

आप सदैव इस बात का उपदेश देते थे कि सद्व्यवहार में धर्म की कोई शर्त नहीं। निर्धन परिजन चाहे किसी भी धर्म के हों उन से सद्व्यवहार करना शुभ कर्म है। हज़रत अबू बकर की एक पत्नी मुश्रिकों (द्वैतवादी) में से थी, हज़रत अबू बकर[रज़ि.] की बेटी अस्मा[रज़ि.] ने रसूले करीम (स.अ.व.) से पूछा— हे अल्लाह के रसूल ! क्या मैं उस से सद्व्यवहार कर सकती हूँ? आपने उत्तर दिया— अवश्य। वह तेरी माँ है, तू उस से सद्व्यवहार

कर। *(बुख़ारी किताबुलअदब)*

परिजन तो अलग रहे आप[स.] अपने परिजनों के परिजनों तथा उनके मित्रों तक का भी बहुत ध्यान रखते थे। आप[स.] जब कभी क़ुर्बानी करते तो आप हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] की सहेलियों को गोश्त अवश्य भिजवाते तथा हमेशा कहते थे कि ख़दीजा[रज़ि.] की सहेलियों को न भूलना, उनकी ओर गोश्त अवश्य भिजवाना। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

एक बार हज़रत ख़दीजा के निधन के कई वर्षोपरान्त आप सभा में बैठे हुए थे कि हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] की बहन हाला[रज़ि.] आप[स.] से मिलने आईं तथा द्वार पर खड़े हो कर कहा— "क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ?" हाला[रज़ि.] की आवाज़ में उस समय अपनी स्वर्गीय बहन हज़रत ख़दीजा[रज़ि.] की आवाज़ से अत्यधिक समानता पैदा हो गई। इस आवाज़ के कान में पड़ते ही रसूले करीम (स.अ.व.) के शरीर में कम्पन पैदा हुआ फिर आप संभल गए और भरे हुए स्वर में फ़रमाया— हे मेरे ख़ुदा यह तो ख़दीजा[रज़ि.] की बहन हाला[रज़ि.] हैं। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

वास्तव में सच्चे प्रेम का नियम ही यही है कि जिस से प्रेम हो और जिसका सम्मान हो उसके निकटवर्ती संबंधियों तथा उस के हितैषियों से भी प्रेम और प्यार पैदा हो जाता है।

हज़रत अनस बिन मालिक[रज़ि.] कहते हैं कि मैं एक बार यात्रा पर था, जुरैर बिन अब्दुल्लाह[रज़ि.] एक दूसरे सहाबी भी यात्रा में थे। वह यात्रा में मेरे कार्य नौकरों की भांति किया करते थे। जुरैर[रज़ि.] बड़े थे और हज़रत अनस[रज़ि.] उनका सम्मान करना आवश्यक समझते थे। इसलिए वह कहते हैं कि मैं उन्हें मना करता था कि ऐसा न करें। मेरे इस प्रकार कहने पर जुरैर[रज़ि.] उत्तर में कहते थे कि मैंने अन्सार को रसूले करीम (स.अ.व.) की अत्यधिक सेवा करते देखा है मैंने उनका रसूले करीम (स.अ.व.) के साथ प्रेम-भाव देख कर अपने हृदय में यह संकल्प किया था कि मुझे जब

किसी अन्सारी के साथ यात्रा करने का अवसर प्राप्त होगा तो मैं उसकी सेवा करूँगा। इसलिए आप मुझे न रोकें। मैं अपनी क़सम पूरी कर रहा हूँ। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

इस वृत्तान्त से स्पष्ट रूप से यह बात सिद्ध होती है कि अपने प्रियतम की सेवा करने वाला भी मनुष्य का प्रिय हो जाता है। अतः जिन लोगों के हृदयों में माता-पिता का सच्चा आदर-सम्मान होता है वह अपने माता-पिता के अतिरिक्त उनके परिजनों तथा मित्रों का भी सम्मान करते हैं।

एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) की सभा में स्वजनों की सेवा की चर्चा चल रही थी आप[स.] ने फ़रमाया— सर्वोत्तम शुभ कर्म यह है कि मनुष्य अपने माता-पिता के मित्रों का भी ध्यान रखे। आप[स.] ने यह बात हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर[रज़ि.] से कही थी और उस पर उन्होंने ऐसा आचरण किया कि एक बार वह हज के लिए जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें एक व्यक्ति दिखाई दिया। आप ने अपनी सवारी का गधा उसे दे दिया तथा अपने सर की सुन्दर पगड़ी भी उसे दे दी। उनके साथियों ने उन्हें कहा— आपने यह क्या काम किया है। ये तो ग्रामीण लोग हैं इन्हें बहुत थोड़ी सी वस्तु दे दी जाए तो प्रसन्न हो जाते हैं। अब्दुल्लाह बिन उमर[रज़ि.] ने कहा— इस व्यक्ति का पिता हज़रत उमर[रज़ि.] का मित्र था और मैंने रसूले करीम (स.अ.व.) से सुना है कि आप फ़रमाते थे कि सर्वोत्तम सत्कर्म प्रदर्शन यह है कि मनुष्य अपने पिता के मित्रों का भी ध्यान रखे। *(मुस्लिम)*

सत्संग

आप[स.] अपने आस-पास सदाचारी लोगों का रहना पसन्द करते थे और यदि किसी में कोई कमी होती थी तो उसे बड़े अच्छे ढंग से तथा उस कमी को अनदेखा करते हुए नसीहत करते थे। हज़रत अबू मूसा अशअरी[रज़ि.] कहते हैं कि रसूले करीम (स.अ.व.) फ़रमाया करते थे—

अच्छे मित्र तथा अच्छी संगति और बुरे मित्र तथा बुरी संगति का उदाहरण ऐसा ही है जैसे एक व्यक्ति कस्तूरी उठाए फिर रहा हो। कस्तूरी उठाने वाला उसे खाएगा तो लाभ प्राप्त करेगा तथा रख छोड़ेगा तब भी सुगन्ध प्राप्त करेगा और जिसके साथी बुरे हों उसका उदाहरण ऐसा है जैसे कोई भट्टी की आग में फूंकें मारता है। वह इतनी ही आशा रख सकता है कि कोई चिन्गारी उड़ कर उसके कपड़ों को जला दे या कोयलों की दुर्गन्ध से उसका मस्तिष्क ख़राब हो जाए।

आप[स.] अपने सहाबा को बार-बार कहा करते थे कि मनुष्य के आचरण उसी प्रकार के हो जाते हैं जिस प्रकार की सभा में वह बैठता है। इसलिए सत्संगति को ग्रहण किया करो। (बुख़ारी तथा मुस्लिम)

लोगों के ईमान की सुरक्षा के प्रति आचरण

रसूले करीम (स.अ.व.) इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि किसी व्यक्ति को किसी बात से ठोकर न लगे। एक बार आप की एक पत्नी सफ़िया[रज़ि.] पुत्री हुय्यी आप से मिलने आईं। बातें करते-करते देर हो गई तो आप ने उचित समझा कि उन्हें घर तक पहुँचा दें। जब आप उन्हें घर छोड़ने के लिए जा रहे थे तो मार्ग में दो व्यक्ति मिले जिन के बारे में आपको सन्देह था कि कदाचित् उनके हृदय में कोई भ्रम पैदा न हो कि रसूले करीम (स.अ.व.) किसी स्त्री के साथ रात के समय कहां जा रहे हैं। आप[स.] ने उन दोनों को रोक लिया और कहा— देखो यह मेरी पत्नी सफ़िया हैं। उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल हमारे हृदय में आपके प्रति कुविचार पैदा ही कैसे हो सकता है। आप ने कहा— शैतान मनुष्य के रक्त में फिरता है। मुझे भय हुआ कि तुम्हारे ईमान को आघात न पहुँच जाए। *(बुख़ारी अब्वाबुल एतिकाफ़)*

दूसरों के दोषों को छुपाना

आप को यदि किसी का दोष मालूम हो जाता तो आप उसे छुपाते थे और यदि कोई अपना दोष प्रकट करता था तो उसे भी दोष प्रकट करने से मना करते थे। आप का कहना था कि जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का पाप संसार में छुपाता है अल्लाह तआला उसके पाप प्रलय के दिन छुपाएगा। *(मुस्लिम)*

आप[स.] यह भी फरमाते थे कि मेरी उम्मत में से प्रत्येक व्यक्ति का पाप मिट सकता है (अर्थात् पश्चाताप से) परन्तु जो अपने पापों को स्वयं प्रकट करते फिरते हैं उन का कोई इलाज नहीं। पुनः फ़रमाते कि स्वयं प्रकट करने का अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति रात्रि के समय पाप करता है तथा अल्लाह तआला उस पर पर्दा डाल देता है परन्तु प्रातः वह अपने मित्रों से मिलता है तो कहता है— हे अमुक ! मैंने रात को यह कार्य किया था। हे अमुक ! मैंने रात को यह कार्य किया था। हे अमुक ! मैंने रात को यह कार्य किया था। रात को ख़ुदा उस के पाप पर पर्दा डाल रहा था, प्रातः यह अपने पाप को स्वयं नंगा करता है। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

कुछ लोग मूर्खतावश यह समझते हैं कि पाप का प्रकट करना तौबा (पश्चात) को जन्म देता है। वास्तविकता यह है कि पाप का प्रकट करना पश्चाताप की भावना पैदा नहीं करता अपितु निर्लज्जता की भावना को जन्म देता है। पाप बहरहाल बुरा है परन्तु जो लोग पाप करते हैं और हृदय में शर्म और लज्जा महसूस होती है उनके लिए तौबा का मार्ग खुला रहता है और संयम उनके पीछे-पीछे चला आ रहा होता है। कोई न कोई शुभ अवसर ऐसा आ जाता है कि संयम विजयी हो जाता है और पाप पलायन कर जाता है परन्तु जो लोग अपने पापों को फैलाते और उस पर गर्व करते हैं। उनके हृदय से पाप का अहसास मिट जाता है और जब पाप करके

पाप का अहसास ही जाता रहे तो फिर तौबा (पापों से पश्चाताप) का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) की सेवा में एक व्यक्ति उपस्थित हुआ और उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैंने व्यभिचार किया है। व्यभिचार इस्लाम में दण्डनीय अपराधों में से है अर्थात् जहां इस्लामी शरीअत लागू हो वहाँ ऐसे व्यक्ति को जिसका व्यभिचार इस्लामी नियमों के अनुसार सिद्ध हो जाए शारीरिक दण्ड दिया जाता है। जब उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैंने व्यभिचार किया है तो आप[स.] ने उसकी ओर से मुख फेर लिया तथा दूसरी ओर बातों में व्यस्त हो गए। वास्तव में आप उसे यह बता रहे थे कि जिस पाप पर ख़ुदा ने पर्दा डाल दिया है उसका उपचार तौबा है उसका इलाज पाप की घोषणा नहीं परन्तु उस ने इस बात को न समझा और विचार किया कि पदाचित् आप[स.] ने मेरी बात को सुना नहीं तथा जिस ओर रसूल करीम (स.अ.व.) का मुख था उधर खड़ा हो गया और उसने पुनः कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैंने व्यभिचार किया है। आप ने फिर दूसरी ओर मुख कर लिया, वह फिर भी नहीं समझा और दूसरी ओर आकर उसने पुनः अपनी बात को दुहराया। आपने फिर उसकी ओर ध्यान न दिया और दूसरी ओर मुख फेर लिया। फिर वह व्यक्ति उस ओर आ खड़ा हुआ जिस ओर आपका मुख था और फिर उसने चौथी बार उस बात को दुहराया। तब आप[स.] ने फ़रमाया— मैं तो चाहता था कि यह अपने पाप को प्रकट न करे, जब तक ख़ुदा उस की पकड़ का निर्णय नहीं करता परन्तु उसने चार बार स्वयं अपने बारे में गवाही दी है इसलिए अब मैं विवश हूँ। *(तिरमिज़ी अब्वाबुल हुदूद)* फिर आप ने फ़रमाया— इस व्यक्ति ने स्वयं पर आरोप लगाया है उस स्त्री ने नहीं जिस स्त्री के संबंध में यह व्यभिचार को स्वीकार करता है। उस स्त्री से पूछो यदि वह इन्कार करे तो उसे कुछ मत कहो, केवल इसे इसकी अपनी स्वीकृति के अनुसार दण्ड

दो परन्तु यदि स्त्री भी स्वीकार करे तो फिर उसे भी दण्ड दो। आपका नियम था कि जिन बातों के संबंध में क़ुर्आन की शिक्षा अभी नहीं आई थी उनके बारे में आप तौरात की शिक्षा के अनुसार कार्यवाही करते थे। तौरात के आदेशानुसार व्यभिचारी के बारे में संगसार करने का आदेश है। अत: आप[स.] ने भी उसे संगसार* करने का आदेश दिया। जब लोग उस पर पत्थर फेंकने लगे तो उसने भागना चाहा परन्तु लोगों ने दौड़ कर उसका पीछा किया और तौरात की शिक्षानुसार उस का वध (संगसार) कर दिया गया। जब रसूले करीम (स.अ.व.) को सूचना मिली तो आप ने इस बात को पसन्द न किया। आप ने कहा उसे दण्ड उस के इक़रार के अनुसार दिया गया, जब वह भागा था तो उसने अपना इक़रार वापस ले लिया था। अत: तुम्हारा कोई अधिकार न था कि उसके पश्चात् उसका वध करते। उसे छोड़ देना चाहिए था।

आप[स.] हमेशा आदेश देते थे कि शरीअत का आदेश प्रत्यक्ष पर लागू होना चाहिए। एक बार कुछ सहाबा एक युद्ध पर गए हुए थे। मार्ग में उन्हें एक मुश्रिक (द्वैतवादी) ऐसा मिला जो जंगल में इधर-उधर छुपता फिर रहा था और उसे जब कोई अकेला मुसलमान मिल जाता तो उस पर आक्रमण करके वह उसका वध कर देता। उसामा बिन ज़ैद[रज़ि.] ने उसका पीछा किया और एक स्थान पर जाकर उसे पकड़ लिया और उसे मारने के लिए तलवार उठाई। जब उसने देखा कि अब मैं पकड़ा जा चुका हूँ तो उसने कहा— لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ (ला इल्हा इल्लल्लाह) जिससे उसका उद्देश्य यह था कि मैं मुसलमान होता हूँ परन्तु उसामा[रज़ि.] ने उस की इस स्वीकृति की परवाह न की और उस का वध कर दिया। जब एक व्यक्ति इस युद्ध की सूचना देने के लिए रसूले करीम (स.अ.व.) के पास मदीना पहुँचा

---

* अपराधी को तौरात (BIBLE) की शिक्षानुसार कमर तक पृथ्वी में गाड़ कर पथराव करके वध कर देना (अनुवादक)

तो उसने युद्ध का सारा वृतान्त सुनाते-सुनाते इस घटना का भी वर्णन कर दिया। इस पर आप[स.] ने उसामा[रज़ि.] को बुलवाया तथा उन से पूछा— क्या तुम ने उस व्यक्ति का वध कर दिया था? उसामा ने कहा— हाँ, आप ने फ़रमाया— प्रलय के दिन क्या करोगे जब ला इलाहा इल्लल्लाह तुम्हारे विरुद्ध गवाही देगा। अर्थात् ख़ुदा तआला की ओर से यह प्रश्न किया जाएगा कि जब उस व्यक्ति ने ला इलाहा इल्लल्लाह कहा था तो फिर तुम ने क्यों मारा? यद्यपि वह हत्यारा था परन्तु तौबा (पश्चात्) कर चुका था। हज़रत उसामा ने कई बार उत्तर में कहा हे अल्लाह के रसूल ! वह तो भय के कारण ईमान प्रकट कर रहा था। इस पर आप[स.] ने फ़रमाया— तू ने उसका हृदय चीर कर देख लिया था कि वह झूठ बोल रहा था? और फिर निरन्तर यही कहते चले गए कि तुम प्रलय के दिन क्या उत्तर दोगे जब उसका ला इलाहा इल्लल्लाह तुम्हारे सामने प्रस्तुत किया जाएगा। उसामा[रज़ि.] कहते हैं— उस समय मेरे हृदय में इच्छा पैदा हुई कि काश ! मैं आज ही इस्लाम लाया होता और मेरे द्वारा यह घटना न घटती। *(मुस्लिम)*

रसूले करीम (स.अ.व.) को पापों की क्षमा का इतना अहसास था कि जब कुछ लोगों ने आप[स.] की पत्नी हज़रत आइशा[रज़ि.] पर आरोप लगाया तथा उन आरोप लगाने वालों में एक व्यक्ति ऐसा भी था जिस का पालन-पोषण हज़रत अबू बकर[रज़ि.] कर रहे थे। जब यह आरोप झूठा सिद्ध हुआ, हज़रत अबू बकर[रज़ि.] ने क्रोध में आकर उस व्यक्ति का पालन-पोषण बन्द कर दया जिसने आपकी बेटी पर आरोप लगाया था। संसार में उस व्यक्ति के अतिरिक्त ऐसा कौन सा व्यक्ति था जो यह निर्णय कर सकता था। अधिकांश लोग तो ऐसे व्यक्ति का वध कर देते हैं परन्तु हज़रत अबू बकर ने केवल इतना किया कि उस व्यक्ति का भविष्य में पालन-पोषण बन्द कर दिया। जब रसूले करीम (स.अ.व.) को ज्ञात हुआ तो आप[स.] ने हज़रत अबू बकर[रज़ि.] को समझाया और फ़रमाया— उस व्यक्ति से ग़लती हुई और

उसने पाप किया परन्तु आप की शान उससे ऊपर है कि एक व्यक्ति के पाप के कारण उसको उसकी आजीविका से वंचित कर दें। अतः हज़रत अबू बकर[रज़ि.] आप के उपदेशानुसार पुनः उसका पालन-पोषण करने लगे। *(बुख़ारी किताबुत्तफ़्सीर)*

धैर्य

आप[स.] का कहना था कि मोमिन के लिए तो संसार में भलाई ही भलाई है और मोमिन के अतिरिक्त यह स्थान किसी को प्राप्त नहीं होता। यदि उसे कोई सफलता प्राप्त होती है तो वह ख़ुदा का धन्यवाद करता है और ख़ुदा के पुरस्कार का पात्र हो जाता है और यदि उसे कोई कष्ट पहुँचता है तो वह धैर्य धारण करता है तथा इस प्रकार से भी वह ख़ुदा के पुरस्कार का पात्र हो जाता है। *(मुस्लिम)*

जब आप के निधन का समय आया और आप रोग की पीड़ा के कारण कराह रहे थे तो आप की बेटी फ़तिमा[रज़ि.] ने एक बार बेचैन होकर कहा— आह ! मुझ से अपने पिता का कष्ट देखा नहीं जाता। रसूले करीम (स.अ.व.) ने सुना तो कहा— धैर्य करो, आज के पश्चात् तुम्हारे पिता को कोई कष्ट नहीं पहुँचेगा। (बुख़ारी) अर्थात् मेरे कष्ट इस सांसारिक जीवन तक सीमित हैं, आज मैं अपने रब्ब के पास चला जाऊँगा जिसके बाद मेरे लिए कष्ट का कोई समय नहीं आएगा।

इसी सन्दर्भ में इस घटना का भी वर्णन किया जा सकता है कि आप सदैव संक्रामक रोगों में एक नगर से दूसरे नगर में पलायन करना भी पसन्द नहीं करते थे क्योंकि इस प्रकार एक क्षेत्र का रोग दूसरे क्षेत्रों में रोग फैलाने का कारण न बने तो यदि उसे मृत्यु आएगी तो वह शहीद होगा। *(बुख़ारी किताबुत्तिब्ब)*

परस्पर सहयोग

आप[स.] अपने सहाबा[रज़ि.] को सदैव इस बात की नसीहत करते थे कि परस्पर सहयोग के साथ कार्य किया करो। अत: आपने अपनी जमाअत के लोगों के लिए यह नियम निश्चित कर दिया था कि यदि किसी व्यक्ति से कोई ऐसा अपराध हो जाए जिसके बदले में कोई धन राशि अदा करना पड़े और वह राशि उसकी सामर्थ्य से अधिक हो तो उसके मुहल्ले या नगर वाले अथवा समस्त लोग मिलकर सामूहिक रूप से उसका बदला अदा करें।

कुछ लोग जो धर्मार्थ सेवाभाव आपके पास आते-जाते रहते थे आप उनके सम्बन्धियों को नसीहत करते थे कि उनका भार वहन करें तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग दें। हज़रत अनस[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि नबी करीम (स.अ.व.) के युग में दो भाई मुसलमान हुए। एक भाई रसूले (स.अ.व.)की सत्संग में रहने लगा तथा दूसरा अपने काम-काज में व्यस्त रहा। काम करने वाले भाई ने एक दिन रसूले करीम (स.अ.व.) के पास अपने भाई की शिकायत की कि यह बेकार बैठा रहता है तथा कोई कार्य नहीं करता। आप[स.] ने फ़रमाया— ऐसा मत कहो। ख़ुदा तआला उसी के द्वारा तुम्हें आजीविका प्रदान करता है इसलिए उसकी सेवा करो और उसे धार्मिक कार्यों के लिए स्वतन्त्र छोड़ दो। *(तिरमिज़ी)*

एक बार आप[स.] यात्रा पर जा रहे थे कि मार्ग में कुछ दूरी तय करने के पश्चात् डेरे लगाए गए और सहाबा मैदान में फैल गए ताकि शिविर लगाएं तथा दूसरे कार्य जो शिविर लगाने के लिए आवश्यक होते हैं उन्हें पूरा करें। उन्होंने परस्पर समस्त कार्य बांट लिए तथा रसूले करीम (स.अ.व.) को कोई कार्य न सौंपा गया। आप ने फ़रमाया— तुम ने मेरे सुपुर्द कोई कार्य नहीं किया। मैं लड़कियां एकत्र करूँगा ताकि उन से भोजन तैयार किया

जा सके। सहाबा[रज़ि.] ने कहा—हे अल्लाह के रसूल ! हम जो हैं काम करने वाले, आपको क्या आवश्यकता है। आप ने फ़रमाया— नहीं, नहीं, मेरा भी कर्तव्य है कि काम में हाथ बटाऊँ । अत: आपने जंगल में से लकड़ियां एकत्र कीं ताकि सहाबा[रज़ि.] उन से खाना पका सकें।
(ज़रकानी जिल्द-4 जिल्द-4, पृष्ठ-304)

दोषों को अनदेखा करना

आप[स.] हमेशा इस बात की नसीहत करते रहते थे कि अकारण दूसरे के कार्यों पर आक्षेप न किया करो तथा ऐसी बातों में हस्तक्षेप न किया करो जिनका तुम से कोई संबंध नहीं क्योंकि इस प्रकार फसाद पैदा होता है। आप का कहना था कि मनुष्य के इस्लाम का सर्वश्रेष्ठ आदर्श यह है कि जिस बात का उससे सीधे तौर पर कोई सम्बन्ध न हो उसमें अकारण हस्तक्षेप न किया करे। आप का यह आचरण ऐसा है कि जिस पर चल कर विश्व-शान्ति को बल मिल सकता है। संसार में सहस्रों ख़राबियां इस कारण उत्पन्न होती हैं कि लोग आपदा-ग्रस्त की सहायता के लिए तो तैयार नहीं होते परन्तु अकारण लोगों के मामलों पर आपत्तियां उठाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

सत्य

रसूले करीम (स.अ.व.) का सत्य के सम्बन्ध में व्यक्तिगत स्थान तो इतना उच्च था कि आप की जाति ने तो आप का नाम ही सिद्दीक (सदात्मा) रख दिया था। आप अपनी जमाअत को भी हमेशा सत्य पर दृढ़ रहने की नसीहत करते रहते थे और सत्य के उस स्तर पर खड़ा करने का प्रयास करते थे जो हर प्रकार के झूठ की मिलौनी से पवित्र हो। आप का कहना

था कि सत्य ही सत्कर्म की प्रेरणा देता है और सत्कर्म ही मनुष्य को स्वर्ग का अधिकारी बनाता है तथा सत्य का वास्तविक स्वरूप यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी झलक हो यहां तक कि परमेश्वर के समक्ष वह सच्चा समझा जाए। *(बुख़ारी तथा मुस्लिम)*

एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) के पास एक व्यक्ति क़ैद होकर आया जो बहुत से मसलमनों की हत्याओं का अपराधी था। हज़रत उमर[रज़ि.] समझते थे कि इस व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए और वह बार-बार आप[स.] के चेहरे की ओर देखते थे कि यदि आप संकेत करें तो वह उसका वध कर दें। जब वह व्यक्ति उठकर चला गया तो हज़रत उमर[रज़ि.] ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यह व्यक्ति मृत्यु-दण्ड का अधिकारी था। आप[स.] ने फ़रमाया— वध करना अनिवार्य था तो तुमने उस का वध क्यों नहीं किया। उन्होंने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! यदि आप आँख से संकेत कर देते तो मैं ऐसा कर देता। आप ने फ़रमाया— नबी धोखेबाज़ नहीं होता। किस प्रकार हो सकता था कि मैं मुख से तो प्यार की बातें कर रहा होता और आँख से उस के वध करने का संकेत करता। *(सीरत इब्ने हिशाम जिल्द-2, पृष्ठ-217)*

एक बार एक व्यक्ति आप[स.] के पास आया और उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मुझ में तीन दोष हैं— झूठ, मदिरापान और व्यभिचार। मैंने बहुत प्रयास किया कि ये दोष मुझ से किसी प्रकार दूर हो जाएँ परन्तु मैं अपने प्रयास में सफल नहीं हो सका। आप कोई उपाय बताएं। आप ने कहा— तुम मुझे एक दोष त्यागने का वचन दो, शेष, दो मैं छुड़ा दूँगा। उसने कहा— मैं वचन देता हूँ। बताएं मैं कौन सा दोष त्याग दूँ? आपने कहा— झूठ को त्याग दो। कुछ दिनों के पश्चात् वह आया और उसने कहा— आप की नसीहत का मैंने पालन किया, अब मेरे सभी दोष छूट गए हैं। आपने पूछा बताओ क्या हुआ? उसने कहा— मेरे हृदय में एक

दिन मदिरा का विचार आया। मैं मदिरापान के लिए उठा तो मैंने सोचा कि यदि मेरे मित्र मुझ से पूछेंगे कि क्या तुम ने मदिरापान किया है? तो पहले मैं झूठ बोल दिया करता था और कह दिया करता था कि नहीं किया परन्तु अब मैंने सत्य बोलने का वचन दिया है। यदि मैंने कहा कि शराब पी है तो मेरे मित्र मुझ से पृथक हो जाएंगे और यदि कहूँगा कि नहीं पी है तो झूठ बोलने का पाप करूँगा जिससे पृथक रहने का मैंने वचन दिया है। अतः मैंने हृदय में कहा कि इस समय नहीं पीता फिर बाद में पियूँगा, इसी प्रकार मेरे हृदय में व्यभिचार का विचार पैदा हुआ। इसके संबंध में भी मेरे हृदय में यही विचार विमर्श हुए कि यदि मेरे मित्र मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा। यदि यह कहूँगा कि मैंने व्यभिचार किया है तो मेरे मित्र मुझ से छूट जाएँगे और यदि यह कहूँगा कि नहीं किया तो झूठ होगा और झूठ न बोलने का मैं वचन दे चुका हूँ। इसी प्रकार मेरे और मेरे हृदय के मध्य कई दिन तक यह द्वन्द्व युद्ध होता रहा। अन्ततः कुछ समय तक इन दोनों पापों से बचने के कारण मेरे हृदय से इन के प्रति आकर्षण भी समाप्त हो गया तथा सत्य को स्वीकार करने के कारण मैं शेष दोषों से सुरक्षित हो गया।

दूसरों के दोष ढूंढते रहने की कुप्रवृत्ति का निषेध तथा सद्भावनाओं का आदेश

रसूले करीम (स.अ.व.) दूसरों के दोषों पर गुप्त रूप से दृष्टि रखने से मना करते थे तथा परस्पर सद्भावनाओं का आदेश देते रहते थे। हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] कहते हैं— कि रसूले करीम (स.अ.व.) फ़रमाते थे कि कुधारणा से बचो क्योंकि कुधारणा सब से बड़ा झूठ है तथा दूसरों के दोषों पर गुप्त रूप से दृष्टि न रखो तथा लोगों के तिरस्कारपूर्वक अन्य नाम (उन के मूल नाम से हटकर) न रखा करो, गर्व न किया करो तथा

आपस में द्वेष न रखा करो तथा सब के सब स्वयं को ख़ुदा तआला के बन्दे समझो ओर स्वयं को परस्पर भाई-भाई समझा जिस प्रकार कि ख़ुदा का आदेश है। फिर फ़रमाते हैं— स्मरण रखो कि प्रत्येक मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है। न वह उस पर अत्याचार करता है और न संकट के समय उस का साथ छोड़ता है। न धन या ज्ञान अथवा किसी अन्य वस्तु के अभाव के कारण उसे हीन समझता है। संयम मनुष्य के हृदय से पैदा होता है और मनुष्य की मानसिकता को मलिन करने के लिए यह पर्याप्त है कि वह अपने भाई को अधम समझे तथा प्रत्येक मुसलमान पर उसके दूसरे मुसलमान भाई के प्राण, सम्मान और धन पर प्रहार करना अवैध है। ख़ुदा तआला बाह्य शारीरिक आवरणों तथा उनके रंग रूपों को नहीं देखता और न ही तुम्हारे कर्मों की बाह्य अवस्था को देखता है अपितु उसकी दृष्टि तुम्हारे हृदयों पर है। (मुस्लिम किताबुलबिर्रेवस्सिलह:)

व्यापार में धोखेबाज़ी के प्रति घृणा

आप[स.] इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते थे कि मुसलमानों में धोखेबाज़ी और छल-कपट की कोई बात न पाई जाए। एक बार आप बाज़ार से गुज़र रहे थे कि आप ने अनाज का एक ढेर देखा जो नीलाम हो रहा था। आप ने अपना हाथ अनाज के ढेर में डाला तो मालूम हुआ कि बाहर से तो अनाज सूखा हुआ है परन्तु अन्दर से गीला है। आप ने अपना हाथ निकाल कर अनाज वाले से कहा— यह क्या बात है? उसने कहा— हे अल्लाह के रसूल वर्षा का छींटा पड़ गया है जिस से अनाज गीला हो गया है। आप ने फ़रमाया— ठीक है परन्तु तुम ने गीला भाग बाहर क्यों न रखा ताकि लोगों को मालूम हो जाता। फिर फ़रमाया— जो व्यक्ति अन्य लोगों को धोखा देता है वह जमाअत का लाभप्रद अंश नहीं हो सकता।

(मुस्लिम) आप ज़ोर दे कर फ़रमाते थे कि व्यापार में धोखा बिल्कुल नहीं होना चाहिए तथा बिना देखे कोई वस्तु नहीं लेना चाहिए, सौदे पर सौदा नहीं करना चाहिए तथा सामान को इसलिए रोक कर नहीं रखना चाहिए कि जब उसका मूल्य बढ़ जाएगा तो उसका विक्रय करेंगे अपितु जिन लोगों को उन वस्तुओं की आवश्यकता है साथ के साथ वस्तुएँ देते रहना चाहिए।

निराशा

आप निराशा की भावना के कट्टर विरोधी थे। आप का कहना था कि जो व्यक्ति लोगों में निराशा की बातें करता है वह लोगों के विनाश का उत्तरदायी होता है, क्योंकि कुछ ऐसी बातों के फैलने से लोगों का साहस टूट जाता है तथा अवनति का प्रारम्भ हो जाता है इसी प्रकार आप गर्व और अहंकार से रोकते थे कि ये बातें भी वास्तव में लोगों को अवनति की ओर ले जाती हैं। आप का आदेश था इन दोनों के मध्य का मार्ग होना चाहिए। न तो मनुष्य गर्व और अहंकार का मार्ग ग्रहण करे और न निराशा-कर्म करता रहे परन्तु परिणाम और फल की आशा ख़ुदा तआला पर छोड़े। अपनी जमाअत की उन्नति की इच्छा उसके हृदय में हो परन्तु गर्व और अहंकार पैदा न हो।

पशुओं पर दया

आप[स.] पशुओं पर भी अत्याचार को पसन्द नहीं करते थे। आप फ़रमाते थे कि बनी इस्राईल में एक स्त्री को इसलिए अज़ाब मिला कि उसने अपनी बिल्ली को भूखा मार दिया था। इसी प्रकार फ़रमाते थे—

पूर्वकालीन जातियों में से एक व्यक्ति इसलिए क्षमा कर दिया गया कि उसने एक प्यासा कुत्ता देखा, पास में ही एक पानी का गड्ढ़ा था जिसमें कुत्ता पानी नहीं पी सकता था। उस व्यक्ति ने अपना जूता पाँव से उतारा और उसे गड्ढ़े में लटका कर उसके द्वारा पानी निकाला और कुत्ते को पिला दिया। इस सत्कर्म के कारण ख़ुदा ने उसके समस्त पापों को क्षमा कर दिया।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद[रज़ि.] कहते हैं— एक बार हम आप[स.] के साथ यात्रा पर थे कि हम ने एक फ़ाख़्ता (पंडुक पक्षी) के दो बच्चे देखे अभी छोटे थे। हमने वे बच्चे पकड़ लिए। जब फ़ाख़्ता वापस आई तो वह घबराकर चारों ओर उड़ने लगी इतने में रसूले करीम (स.अ.व.) भी वहाँ आ गए तथा आप ने फ़रमाया— इस प्राणी को उसके बच्चों के कारण किस ने कष्ट पहुँचाया है? उसके बच्चों को तुरन्त छोड़ दो ताकि उसको सांत्वना मिले। (अबू दाऊद) इसी प्रकार हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद[रज़ि.] कहते हैं कि एक बार हम ने चींटियों की एक छोटी सी गुफ़ा देखी और हम ने उसे घास-फूस डाल कर जला दिया। इस पर आप[स.] ने फ़रमाया— तुम ने ऐसा क्यों किया? ऐसा करना उचित न था।

एक बार रसूले करीम (स.अ.व.) ने देखा कि एक गधे के मुख पर निशान क्यों लगा रहे हो? लोगों ने कहा— रूमी लोगों में उच्च स्तरीय गधों की पहचान के लिए निशान लगाया जाता है। आप[स.] ने फ़रमाया— यदि निशान लगाया जा रहा है। आपने पूछा-ऐसा निशान लगाना ही पड़े तो पशु की पीठ पर लगाया करो। (अबू दाऊद तथा तिरमिज़ी) अतः मुसलमान उसी समय से पशु की पीठ पर निशान लगाते हैं। अब उनकी नकल करते हुए यूरोपीय लोग पीठ कर ही निशान लगाते हैं।

धार्मिक सहिष्णुता

आप[स.] धार्मिक सहिष्णुता पर बहुत बल देते थे और इस बारे में स्वयं भी उच्चकोटि का आदर्श प्रदर्शित करते थे। आप के पास यमन का एक ईसाई क़बीला धार्मिक विचार विनिमय करने के उद्देश्य से आया जिसमें उनके बड़े-बड़े पादरी भी थे। मस्जिद में बैठ कर बात-चीत का आरम्भ हुआ तथा यह वार्तालाप लम्बा हो गया। इस पर उस दल के पादरी ने कहा— अब हमारी नमाज़ का समय है, हम बाहर जाकर नमाज़ अदा कर आएं। आप[स.] ने कहा— बाहर जाने की क्या आवश्यकता है हमारी मस्जिद में ही अपनी नमाज़ अदा कर लें ।हमारी मस्जिद ख़ुदा की स्तुति के लिए ही बनाई गई है। (ज़रक़ानी)

वीरता

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह (स.अ.व.) की वीरता की अनेक घटनाओं का वर्णन आपके जीवन चरित्र में हो चुका है। एक घटना का यहां भी उल्लेख किया जाता है। जब मदीना में यह समाचार फैलने लगे कि रोम की सरकार मदीना पर आक्रमण करने के लिए एक विशाल सेना भिजवा रही है तो मुसलमान रातों को विशेष तौर पर सतर्क रहते और जागते रहते। एक बार बाहर जंगल की ओर से शोर का स्वर सुनाई दिया। सहाबा बड़ी शीघ्रता के साथ अपने घरों से निकले, कुछ इधर-उधर भागने लगे और कुछ मस्जिद में आकर एकत्र हो गए और इस प्रतीक्षा में बैठ गए कि आप[स.] बाहर निकलें तो आप के आदेशानुसार आचरण करें जब वे लोग इस प्रतीक्षा में थे कि रसूले करीम (स.अ.व.) अपने घर से निकलें तो उन्होंने देखा कि आप अकेले घोड़े पर सवार बाहर से आ रहे हैं। ज्ञात

हुआ कि शोर के आरम्भ होते ही आप[स.] घोड़े पर सवार होकर जंगल में यह देखने के लिए चले गए थे कि कोई ख़तरे की बात तो नहीं, आप ने इस बात की प्रतीक्षा न की कि सहाबा एकत्र हो जाएं तो उनके साथ मिलकर बाहर जाएँ अपितु अकेले ही बाहर गए तथा वस्तु स्थिति से अवगत हो कर वापस आए तथा सहाबा को ढारस दिया कि भय की कोई बात नहीं, तुम आराम से अपने घरों में जाकर सो जाओ। *(बुख़ारी बाबुश्शुजाअत फिलहर्ब)*

अल्प बुद्धि लोगों से प्रेम-व्यवहार

आप[स.] अल्प बुद्धि रखने वाले लोगों के साथ गहरे प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करते थे। एक बार एक ग्रामीण नया-नया मुसलमान हुआ था, आपकी मस्जिद में बैठे-बैठे उसे पेशाब करने की आवश्यकता महसूस हुई। वह उठकर मस्जिद के एक कोने में ही पेशाब करने लगा। सहाबा उसे मना करने लगे तो आप ने उन्हें रोक दिया और फ़रमाया— इस से उसे हानि पहुँचेगी तुम ऐसा न करो। जब वह पेशाब कर चुके तो वहां पानी डालकर उस स्थान को धो देना। (बुख़ारी)

वचन का पालन

आप को वचन पालन का इतना ध्यान रहता था कि एक बार सरकारी दूत आप के पास कोई सन्देश लेकर आया तथा आपके सत्संग में कुछ दिन रह कर इस्लाम की सच्चाई को स्वीकार कर लिया। उस ने कहा— हे अल्लाह के रसूल ! मैं तो हृदय से मुसलमान हो चुका हूँ मैं अपने इस्लाम को प्रकट करना चाहता हूँ। आप[स.] ने कहा— यह उचित नहीं, तुम अपनी सरकार की ओर से एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हो कर आए हो यथावत्

वापस जाओ तथा वहाँ जाकर यदि तुम्हारे हृदय में इस्लाम-प्रेम फिर भी बना रहे तो दोबारा आकर इस्लाम स्वीकार करो। *(अबू दाऊद बाब अलवफ़ा बिलअहद)*

रसूले करीम (स.अ.व.) के जीवन-चरित्र का विषय कोई ऐसा विषय नहीं जिसे मात्र कुछ पन्नों में समाप्त किया जा सके अथवा जिसका केवल कुछ दृष्टिकोणों से अनुमान लगाया जाए परन्तु चूंकि न यह जीवन-चरित्र की एक यथेष्ट पुस्तक है और न इस भूमिका में लम्बी बात के लिए स्थान है। इसलिए मैं इतने को ही पर्याप्त समझता हूँ।

اَللّٰهُمَّ صَلِّ عَلٰى مُحَمَّدٍ وَ عَلٰى اٰلِ مُحَمَّدٍ وَبَارِكْ وَسَلِّم